भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य सभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों का प्रभाव–एक परीक्षण

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

की

पीएच.डी. (राजनीति विज्ञान) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

सामाजिक विज्ञान संकाय

शोधार्थी

श्रीमती दीप्ति चतुर्वेदी

शोध पर्यवेक्षक

डॉ. पद्मश्री पटनायक

सह आचार्य

सामाजिक विज्ञान विभाग

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)

2018

Certificate

It is certified that :-

I feel great pleasure in certifying that the thesis entitled **"भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य सभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों का प्रभाव–एक परीक्षण"**{**Impact of Regional Parties on the Evolution of Rajya Sabha in the context of Federal System–An Evaluation** } By DEEPTI CHATURVEDI under my guidance. He/She has completed the following requirements as per Ph.D regulations of the University.

(a) Course work as per the university rules.

(b) Residential requirements of the university (200 days)

(c) Regularly submitted annual progress report.

(d) Presented his work in the departmental committee.

(e) Published/accepted minimum of one research paper in referred research journal,

I recommend the submission of thesis.

Date : **Signature of Supervisor**

With date

(शोध सार)

राज्य सभा भारतीय संसद का द्वितीय व उच्च सदन है। संविधान निर्माताओं द्वारा राज्य सभा की संकल्पना राज्यों को प्रतिनिधित्व देने के उद्देश्य से संघीय सदन के रूप में की गई थी। राज्य सभा हेतु विशिष्ट निर्वाचन प्रणाली के चयन का उद्देश्य भी यही था कि राज्यों में अवस्थित सभी स्वरों को संघीय सदन में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके। इसी क्रम में क्षेत्रीय दलों द्वारा भारतीय संसद में सक्रिय सहभागिता का प्रदर्शन किया गया। क्षेत्रीय दल सीमित कार्यक्षेत्र व विचारधारा की पृष्ठभूमि के साथ राष्ट्रीय व्यवस्थापिका में प्रवेश करते है। उनकी सहभागिता तथा कार्यकरण किस प्रकार राज्य सभा के विकास को प्रभावित कर रहा है यही प्रस्तुत अध्ययन का केन्द्रीय प्रश्न है।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों की मात्रात्मक तथा गुणात्मक सहभागिता का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया हैं। इस हेतु सम्पूर्ण अध्ययन को 7 अध्यायों में विभाजित किया गया है।

प्रथम अध्याय विषय के सैद्धान्तिक पक्ष से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत विषय का परिचय, शोध प्रविधि, अध्ययन हेतु चयनित अवधारणाओं एवं परिकल्पनाओं का परिचय तथा उपलब्ध साहित्य की विवेचना प्रस्तुत की गई है।

अध्ययन का **द्वितीय अध्याय** संघात्मक व्यवस्था तथा द्वितीय सदनों का विवरण प्रस्तुत करता है। द्विसदनात्मक प्रणाली के माध्यम से व्यवस्थापिका शक्ति का विकेन्द्रीकरण सम्भव होता है तथा संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत द्वितीय सदन संघीभूत इकाइयों को प्रतिनिधित्व प्रदान करता है। विश्व की प्रतिनिधिक संघात्मक व्यवस्थाओं तथा उनके द्वितीय सदनों के विवेचन को अध्ययन में शामिल किया गया है साथ ही राज्य सभा के विकास क्रम को भी **द्वितीय अध्याय** में शामिल किया गया है।

अध्ययन के **तीसरे अध्याय** के अन्तर्गत राज्य सभा की संरचना पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव का आकलन किया गया है। क्षेत्रीय दल राज्य सभा में लगभग 31% स्थानों पर उपस्थित हैं तथा यह प्रतिशत समकालीन लोकसभा के लगभग समकक्ष है।

अध्ययन का **चतुर्थ अध्याय** मूलत: इस बिन्दु पर केन्द्रित है कि राज्य सम्बन्धी हितों को स्वर प्रदान करने की दृष्टि से क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य सभा में किस प्रकार की सक्रियता का प्रदर्शन किया गया है। इस हेतु विधेयक प्रस्तुतिकरण, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, विशेष उल्लेख, अल्पकालीन चर्चा, विशेष अनुमति से उठाये गये विषय आदि विधायी प्रक्रियाओं का चयन किया गया है।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ का **पांचवा अध्याय** राज्य सभा के कार्यकरण में क्षेत्रीय दलों की सहभागिता का अध्ययन राष्ट्र स्तरीय हितों के दृष्टिकोण से करता है। यह इसलिये महत्वपूर्ण है क्योंकि राज्य सभा संघीय सदन होने के साथ राष्ट्रीय व्यवस्थापिका का द्वितीय सदन भी है। अतः राज्य सभा सांसदों को राज्य स्तरीय हितों के साथ, राष्ट्र स्तरीय हितों को भी स्वर प्रदान करना होता है।

छठा अध्याय राज्य सभा के विकास में नवीन प्रवृत्तियों के विश्लेषणात्मक अध्ययन पर आधारित है। इन प्रवृत्तियों का उदय राजनीतिक–सामाजिक पर्यावरण में आये परिवर्तनों के फलस्वरूप होता है। राज्य सभा व लोक सभा में व्याप्त दलगत विषमरूपता, राज्य सभा निर्वाचन में भ्रष्टाचार, राज्य सभा के विधायी व्यवहार में आया परिवर्तन वे नवीन प्रवृत्तियाँ हैं जिनका अध्ययन न सिर्फ शोध को पूर्णता प्रदान करता है बल्कि भविष्य के संकेतों की ओर भी इंगित करता है।

अध्ययन के अंतिम तथा **सातवें अध्याय** में अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है। संघीय इकाईयों का समुचित समावेशन तथा अनुकूलन ही राज्य सभा के विकास का समुचित मापदण्ड है तथा अध्ययन से प्राप्त परिणाम व तथ्य दर्शाते है कि राज्य सभा का विकास, क्षेत्रीय दलों के प्रभावस्वरूप भारतीय संघात्मक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में सकारात्मक दिशा में हो रहा है।

≈≈≈≈

Candidate Declaration

I hereby certify that the work, which is being presented in this thesis, entitled **"भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य सभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों का प्रभाव–एक परीक्षण"** in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of philosophy, carried under the supervision of Dr. Padamshree Pattnaik and submitted to the research center University of Kota, University of kota, kota represents my ideas in my own words and whenever other ideas or words have been included I have adequately cited and referenced the original sources. The work presented in this thesis has not been submitted else where for the award any other degree or diploma from any institution. I also declare that I have adhered to all principles of academics honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/date/fact/source in my submission. I understand that violation of the above will be a cause for disciplinary action by the university and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited from whom proper permission has not been taken when needed

Date **Deepti Chaturvedi**

This is to certify that the above statement made by Deepti Chaturvedi (Registration No. RS/746/10) is correct to the best of my knowledge

Date **Dr. Padmashree Pattnaik**

Associate Professor

Supervisor

आमुख

किसी भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था की गत्यात्मकता व सजीवता को बनाये रखने के लिये मात्र संस्थात्मक व प्रक्रियात्मक व्यवस्थाओं की स्थापना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु इन संस्थाओं और प्रक्रियाओं में पर्यावरण के माध्यम से निरन्तर पुनर्निवेशन व सहभागिता ही व्यवस्था के विकास का मापदण्ड है। भारत की संघात्मक व्यवस्था में क्षेत्रीय दलों का उद्‌भव, विकास और विधायिकाओं में प्रवेश इसी प्रकार के विकास का प्रतिमान है। कार्ल जे. फ्रेडरिक ने भी माना है कि संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राजनीतिक समुदाय समाधान हेतु व्यवस्था में प्रवेश करते हैं। इसी प्रकार पृथक–पृथक विचारधारा के आधार पर संगठित क्षेत्रीय दल, स्थानीय हितों को स्वर प्रदान करने के उद्‌देश्य से, भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में प्रत्येक स्तर पर अपनी सुदृढ़ उपस्थिति दर्ज करवा रहे हैं।

1990 के दशक से भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में सक्रिय ये क्षेत्रीय दल 2004 के आम निर्वाचन तक गठबन्धन संस्कृति के माध्यम से संस्थागत स्वरूप प्राप्त कर चुके थे तथा 2009 के निर्वाचन परिणाम भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में क्षेत्रीय दलों की स्थायी प्रवृत्ति के रूप में उपस्थिति को पुष्ट करते है यही कारण है कि अध्ययन हेतु वर्ष 2004 से 2010 तक के काल का चयन किया गया है। पुन: आम निर्वाचन के माध्यम से प्रतिनिधि सदन में उपस्थित क्षेत्रीय दल जिस प्रकार दलीय समीकरणों के द्वारा लोक सभा के कार्यकरण को प्रभावित करते दृष्टिगोचर हो रहे है, यह स्वत: ही निम्न प्रश्न को जन्म देता है कि “संघीय सदन (राज्य सभा) के कार्यव्यवहार को राज्य राजनीति के ये परिवृत्य किस प्रकार निर्देशित कर रहे हैं।”

उक्त प्रश्न का प्रमुख आधार राज्य सभा की विशिष्ट निर्वाचन प्रक्रिया में ही समाहित है, जो कि राज्य विधायिकाओं के माध्यम से संचालित होती है, तथा जिसके कारण राज्य सभा के राज्य स्तरीय राजनीति में सक्रिय तत्वों से प्रभावित होने की सम्भावना अभिवृद्ध हो जाती है।

उपरोक्त विवेचन ही प्रस्तुत अध्ययन का केन्द्र है। राज्य सभा के संगठन में क्षेत्रीय दलों का अनुपात, संघीय सदन की विधायी प्रक्रिया में क्षेत्रीय दलों की मात्रात्मक व गुणात्मक सहभागिता का विश्लेषण तथा संघीय सदन के आचरण व चरित्र में परिलक्षित नवीन परिवर्तनों को उद्‌घाटित करना तथा अंतत: उक्त तथ्यों के आलोक में राज्य सभा के विकास का आकलन ही प्रस्तुत शोध कार्य का मुख्य उद्‌देश्य है।

अध्ययन हेतु चयनित काल वर्ष 2004–2010 है तथापि उसके बाद भी जिस प्रकार राज्य सभा के विधायी व्यवहार में नवीन परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे है, दोनों सदनों की सांगठनिक विषमता जिस प्रकार लोक सभा व राज्य सभा के अन्तर्सम्बन्धों को पुनर्परिभाषित कर रही है तथा राज्य सभा के दलीय समीकरण अपने पक्ष में करने हेतु राजनीतिक दलों द्वारा जिस व्यग्रता का प्रदर्शन किया जा रहा है, वह स्वत: ही अध्ययन हेतु चयनित विषय के महत्व को रेखांकित करता है।

शोधार्थी द्वारा चयनित विषय से सम्बन्धित विद्वानजनों की महत्वपूर्ण रचनाओं, कृत्तियों से प्रभूत सहायता ली गई है। इस सन्दर्भ में प्रकाशित शोध पत्र–पत्रिकायें, प्रशासकीय रिपोर्ट, राष्ट्रीय स्तर की पत्र–पत्रिकाओं से शोध सामग्री प्राप्त की गई है। मैं अपनी शोध निर्देशिका डॉ. पद्मश्री पटनायक (एसो. प्रोफेसर) के प्रति ह्रदय से आभारी हूं जिनके स्नेह, निरन्तर सहयोग एवं कुशल निर्देशन से ही मैं अपने शोध प्रबन्ध के प्रस्तुतिकरण में सक्षम हो सकी हूं। इस शोध कार्य की परिपूर्णता डॉ. पटनायक के योग्य मार्गदर्शन के बिना असम्भव थी।

इसके साथ ही मैं राज्य सभा सचिवालय के संयुक्त सचिव श्री सुनील नौटियाल जी को तथा PRS लेजिस्लेटिव रिसर्च संस्था की निर्देशिका कुसुम मलिक जी को धन्यवाद ज्ञापित करती हूं जिनके सहयोग से शोध सामग्री प्राप्त हो सकी।

मैं संसदीय पुस्तकालय दिल्ली, कोटा विश्वविद्यालय, वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा, राजकीय महाविद्यालय कोटा के पुस्तकालय–अध्यक्षों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूं।

अंत में परिजनों को भी धन्यवाद देना चाहूंगी जिनके सहयोग से ही शोध कार्य पूर्ण करने की प्रेरणा प्राप्त हुई साथ ही मैं टंकण कार्य व शोध–प्रबन्ध सज्जा के लिये शबनम खान को धन्यवाद देती हूँ।

शोधार्थी

दीप्ति चतुर्वेदी

अनुक्रमणिका

अध्याय विवरण	पृष्ठ सं.
आमुख	i - ii
प्रथम अध्याय : भूमिका	**1—58**
1.1 विषय परिचय	
1.2 शोध के उद्देश्य	
1.3 काल का परिचय	
1.4 शोध—प्रविधि	
1.5 संघवाद की अवधारणा	
1.6 क्षेत्रीयतावाद की अवधारणा	
1.7 आमण्ड—पावेल का संरचनात्मक—प्रकार्यात्मक सिद्धान्त	
1.8 उपलब्ध साहित्य की विवेचना	
द्वितीय अध्याय : संघात्मक व्यवस्था तथा द्वितीय सदन	**59—92**
2.1 विश्व के प्रमुख संघों का तुलनात्मक विवेचन	
2.2 भारतीय संघात्मक व्यवस्था का विकास व राज्य सभा	
2.3 प्रमुख संघीय शासन प्रणालियों में द्विसदनात्मकता	
2.4 विश्व के प्रमुख संघात्मक व प्रजातान्त्रिक राष्ट्रों में द्वितीय सदन	
तृतीय अध्याय : भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य सभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों का प्रभाव—राज्यों के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से	**93—130**
3.1 संरचना के आधार पर विश्लेषण	
3.2 दलीय प्रतिनिधित्व के आधार पर विश्लेषण	
3.3 इकाईयों के आकार के आधार पर विश्लेषण	

अध्याय चतुर्थ : भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य सभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों का प्रभाव – राज्यों के हितों की दृष्टि से 131–176

4.1 विधि निर्माण में भागीदारी

4.1.1 विधेयक प्रस्तुतिकरण

4.2 विशेष उल्लेख

4.3 प्रश्न पूछने की प्रक्रिया

4.4 ध्यानाकर्षण प्रस्ताव

4.5 अल्पकालीन चर्चायें

4.6 विषय प्रस्तुतिकरण के आधार पर क्षेत्रीय दलों का परीक्षण

अध्याय पंचम : भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य सभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों का प्रभाव– संघीय अखण्डता व राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से 177–218

अध्याय षष्ठम : राज्य सभा के विकास के सम्बन्ध में नवीन प्रवृत्तियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन 219–253

6.1 जन प्रतिनिधित्व कानून में संशोधन का दुरूपयोग

6.2 लोक सभा व राज्य सभा में दलगत विषमरूपता

6.3 राज्य सभा निर्वाचन में भ्रष्टाचार

6.4 प्रक्रियागत नूतन प्रवृत्तियाँ

6.5 भविष्य हेतु संकेत

6.6 राज्य सभा में सुधार हेतु सुझाव

अध्याय सप्तम : अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष 254–276

7.1 संगठन सम्बन्धी निष्कर्ष

7.2 विधायी प्रक्रियाओं में सहभागिता सम्बन्धी निष्कर्ष

7.2.1 विधायी प्रक्रियाओं में क्षेत्रीय दलों की मात्रात्मक सहभागिता

7.2.2 विधायी प्रक्रियाओं में क्षेत्रीय दलों की गुणात्मक सहभागिता

7.3 क्षेत्रीय दलों का सामान्य विश्लेषण

7.4 पूर्व सामान्यीकरणों का परीक्षण तथा नवीन सामान्यीकरणों की रचना

7.5 परिकल्पनाओं का परीक्षण

7.6 संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम के आधार पर निष्कर्षों का परीक्षण

शोध सारांश **277–285**

परिशिष्ट **286–291**

संदर्भ ग्रन्थ सूची **292–304**

रिसर्च पेपर

रेखाचित्रों की तालिका

रेखाचित्र संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
रेखाचित्र 1	आमण्ड पावेल का राजनीतिक व्यवस्था प्रतिमान	42
रेखाचित्र 2	राज्य सभा में राज्यों को सीटों का आवंटन	95
रेखाचित्र 3	राजनीतिक दलों की आम चुनाव में सहभागिता	97
रेखाचित्र 4	लोक सभा में राजनीतिक दलों को प्राप्त स्थान	99
रेखाचित्र 5	प्रथम श्रेणी के दलों की सत्रवार उपस्थिति	110
रेखाचित्र 6	द्वितीय श्रेणी के दलों की सत्रवार उपस्थिति	117
रेखाचित्र 7	तृतीय श्रेणी के दलों की सत्रवार उपस्थिति	121
रेखाचित्र 8	चतुर्थ श्रेणी के दलों की सत्रवार उपस्थिति	123
रेखाचित्र 9	राज्य सभा में अध्ययन काल में क्षेत्रीय दलों के सदस्यों की संख्या	128
रेखाचित्र 10	राज्य सभा में राज्यों की सहभागिता	129
रेखाचित्र 11	दलीय आधार पर विधेयक प्रस्तुतिकरण	136
रेखाचित्र 12	क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत विधेयक	138
रेखाचित्र 13	वर्ष 2004–2010 में प्रस्तुत स्पेशल मेन्शन में क्षेत्रीय दलों की सहभागिता	141
रेखाचित्र 14	दलीय आधार पर विशेष उल्लेख प्रस्तुतिकरण	142
रेखाचित्र 15	क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य सभा में पूछे गये प्रश्नों से सम्बन्धित आंकड़ें	144
रेखाचित्र 16	दलीय आधार पर ध्यानाकर्षण प्रस्ताव	146
रेखाचित्र 17	दलीय आधार पर अल्पकालीन चर्चा	148
रेखाचित्र 18	गैर राज्य के सांसदों का प्रतिशत	224
रेखाचित्र 19	लोक सभा व राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों का प्रतिशत	230
रेखाचित्र 20	बैठकों की संख्या	241
रेखाचित्र 21	विभिन्न विधायी प्रक्रियाओं को वर्षभर में दिया जाने वाला समय	243
रेखाचित्र 22	राज्य सभा की वर्षवार उत्पादकता	245
रेखाचित्र 23	विधेयक प्रस्तुतिकरण	261
रेखाचित्र 24	विशेष उल्लेख	263
रेखाचित्र 25	प्रश्न पूछने की प्रक्रिया	263
रेखाचित्र 26	ध्यानाकर्षण प्रस्ताव	264
रेखाचित्र 27	अल्पकालीन चर्चा	264
रेखाचित्र 28	विशेष अनुमति से उठाये गये विषय	265
रेखाचित्र 29	आमण्ड पावेल का संरचनात्मक प्रकार्यात्मक रेखाचित्र	275
मानचित्र संख्या–1	क्षेत्रीय दलों की सक्रियता के आधार पर राज्यों का विभाजन	102

तालिकाओं की तालिका

तालिका संख्या	तालिकाओं के विषय	पृष्ठ संख्या
तालिका संख्या – 1	लोक सभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों को प्राप्त वैध मत :	6
तालिका संख्या – 2	क्षेत्रीय दलों के नाम व राज्य	32–34
तालिका संख्या – 3	प्रमुख संघात्मक राजव्यवस्थायें	59–60
तालिका संख्या – 4	2004 व 2009 के लोक सभा चुनाव परिणाम	100–101
तालिका संख्या – 5	क्षेत्रीय दलों की सक्रियता के आधार पर राज्यों का श्रेणीवार विभाजन	103
तालिका संख्या – 6	अध्ययन काल में राज्य सभा सांसदों का वर्गीकरण	104
तालिका संख्या – 7	अध्ययन काल में राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों का प्रतिशत	105
तालिका संख्या – 8	अध्ययन काल में राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों की सदस्य संख्या	106–107
तालिका संख्या – 9	प्रथम श्रेणी के राज्यों के क्षेत्रीय दलों का विश्लेषण	108
तालिका संख्या –10	द्वितीय श्रेणी के राज्यों के क्षेत्रीय दलों का विश्लेषण	111–113
तालिका संख्या –11	तृतीय श्रेणी के राज्यों के क्षेत्रीय दलों का विश्लेषण	118–119
तालिका संख्या –12	चतुर्थ श्रेणी के राज्यों के क्षेत्रीय दलों का विश्लेषण	121
तालिका संख्या –13	राज्य सभा में राज्यों की स्थिति	125
तालिका संख्या –14	राज्य सभा में राज्यों के क्षेत्रीय दलों का प्रतिनिधित्व	126–127
तालिका संख्या –15	क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत विधेयक	135
तालिका संख्या –16	क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य सभा में प्रस्तुत क्षेत्रीय महत्व के विधेयक	137
तालिका संख्या –17	पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	149
तालिका संख्या –18	जम्मू–कश्मीर के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	152
तालिका संख्या –19	महाराष्ट्र के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	154
तालिका संख्या –20	तेलगूदेशम की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	156
तालिका संख्या –21	बीजू जनता दल की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	158
तालिका संख्या –22	पंजाब व हरियाणा के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	161
तालिका संख्या –23	तमिलनाडु के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	163
तालिका संख्या –24	उत्तर प्रदेश के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	165
तालिका संख्या –25	बिहार के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	168
तालिका संख्या –26	पश्चिम बंगाल के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	170
तालिका संख्या –27	अन्य क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	172
तालिका संख्या –28	क्षेत्रीय दलों द्वारा राष्ट्रीयध्सामाजिक आधार पर प्रस्तुत विधेयक	179

तालिका संख्या –29	पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	183
तालिका संख्या –30	जम्मू–कश्मीर के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	185
तालिका संख्या –31	महाराष्ट्र के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	187
तालिका संख्या –32	तमिलनाडु के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	191
तालिका संख्या –33	तेलगूदेशम पार्टी की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	195
तालिका संख्या –34	बीजू जनता दल की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	198
तालिका संख्या –35	पंजाब व हरियाणा के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	202
तालिका संख्या –36	पश्चिम बंगाल के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	205
तालिका संख्या –37	उत्तर प्रदेश के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	207
तालिका संख्या –38	बिहार के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	213
तालिका संख्या –39	अन्य क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता	216
तालिका संख्या –40	गैर राज्य से चयनित सांसदों के उदाहरण	225–226
तालिका संख्या –41	राज्य सभा तथा लोक सभा में क्षेत्रीय दलों की संख्या में वृद्धि	231
तालिका संख्या –42	2014 लोक सभा निर्वाचन के पश्चात् दोनो सदनों की दलीय स्थिति	232
तालिका संख्या –43	राज्य सभा व लोक सभा के उत्पादक घण्टों में आये परिवर्तन	240
तालिका संख्या –44	1952 व 2014 के लाक सभा निर्वाचन में राजनीतिक दलों की सहभागिता	256
तालिका संख्या –45	अध्ययन काल में दलवार निष्क्रिय सदस्य	258–259

1.1 विषय परिचय

भारत के संविधान का निर्माण एवं अनेक संवैधानिक मान्यताओं व परम्पराओं का जन्म संक्रमणकाल में हुआ, जब भारत उपनिवेश से लोकतन्त्र बनने से बीच का मार्ग तय कर रहा था। भारतीय संविधान का वर्तमान स्वरूप दशकों की अनवरत विकास प्रक्रिया का परिणाम है। राष्ट्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, स्वतन्त्रता संग्राम व इससे जुड़े आदर्श, एक नवजात प्रजातन्त्र के समक्ष उपस्थित चुनौतियाँ इस विकास प्रक्रिया के महत्त्वपूर्ण नियामक तत्त्व हैं, जिन्होंने संविधान निर्माण की दशा व दिशा का निर्धारण किया।

जिस काल में संविधान सभा द्वारा भारतीय संविधान की रूपरेखा का निर्धारण किया जा रहा था वह भारत के विभाजन का काल था। भारत के विभाजन ने संवैधानिक व राजनैतिक परिदृश्य में भी अनेक परिवर्तन उपस्थित कर दिये। स्वायत्तता, साम्प्रदायिक व्यवस्था जैसे शब्दों के अर्थ, जाति, वर्ग, विशेष के लिये पूर्व के समान नहीं रहे। ऐसे में शक्तियों के केन्द्रीकरण पर आधारित एकात्मक व्यवस्था को अपनाया जाना स्थिति को विस्फोटक बना सकता था। इस सन्दर्भ में रेखांकित करने योग्य तथ्य यह भी है कि भारतीय वैचारिक आधार विकेन्द्रीकरण व लोकतांत्रिक मान्यताओं के अनुरुप है। अतः तत्कालीन परिस्थितियों व ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में संघात्मक व्यवस्था को नकारा जाना संभव नहीं था।

एक अन्य कारक जिससे संघात्मक व्यवस्था अपनाने सम्बन्धी तर्कों को बल मिला वह था देशी रियासतें। इन रियासतों का भारत में विलय, भारतीय शासन व्यवस्था में उनकी स्थिति, कुछ के द्वारा अपनी स्वायत्तता बनाये रखने पर बल आदि कुछ ऐसे कारण बने जिन्होंने संघात्मक व्यवस्था को अपरिहार्य बना दिया, क्योंकि संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत ही इकाइयाँ किसी विषय पर अपना पक्ष प्रस्तुत कर सकती हैं व अपने हितों का संरक्षण व संवर्द्धन कर सकती हैं।

भारतीय संविधान संघीय या केन्द्रीकृत ढाँचे की किसी पूर्वस्थापित अवधारणा का अक्षरशः अनुसरण नहीं करता।

“भारत में संघवाद का कोई एक प्रतिमान नहीं है, अपितु व्यवहार में संघवाद के विभिन्न प्रतिमान कार्यरत है।” मार्कस फेरन्डा[1]

---

1. Marcus Faranda Quoted state politics in India Vol. 1 Radiant publication New Delhi 1984 Pg. 67

ऑस्टिन के अनुसार "भारतीय संविधान इतना असाधारण है कि इसका संक्षेप में वर्णन करना कठिन है, 'अर्द्धसंघीय' और 'संघीय विकेन्द्रीकरण' जैसे शब्द दिलचस्प हैं, लेकिन उनसे कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती है। असेम्बली के सदस्यों ने स्वयं ही किसी संघीय विचार या सिद्धान्त को मानने से इंकार कर दिया। उनका विचार था कि भारतीय समस्याऐं विशिष्ट थी, ऐसी समस्याऐं जिनका सामना इतिहास के दूसरे संघों को नहीं करना पड़ा था। इनका हल सिद्धान्त का सहारा लेकर नहीं किया जा सकता था, क्योंकि संघवाद कोई विशेष विचार नहीं था और इसका अर्थ स्पष्ट नहीं था। इसलिये असेम्बली के सदस्यों ने संयुक्त राज्य अमरीका, कनाडा, स्विट्जरलैण्ड व ऑस्ट्रेलिया के संघों के अनुभवों का अध्ययन किया तथा उनमें क्या काम का है और क्या नहीं, क्या राष्ट्र के चरित्र के हित के सबसे अनुकूल है, यह चुनने का रास्ता अख्तियार किया। इस प्रक्रिया से एक नये प्रकार का संघवाद उभरा जो भारत की विशेष आवश्यकताओं के अनुकूल था। यह असेम्बली शायद प्रथम संविधान सभा थी जिसने आरम्भ से ही सहयोगी संघवाद अपनाया। इसकी विशेषता है संघीय व क्षेत्रीय सरकारों की अधिकाधिक आपसी निर्भरता, जो साथ ही संघीय तत्त्व को बरकरार भी रखती है।"[1]

यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि विभाजन से पहले संविधान सभा ने अपने अस्तित्व के शुरुआती महीनों में मजबूत केन्द्रीय सरकार का पक्ष नहीं लिया था। सभा की 'संघीय सत्ता समिति' ने नेहरू के नेतृत्व में अपनी पहली रिपोर्ट में कमजोर केन्द्रीय सरकार की सिफारिश की।

लेकिन विभाजन संबंधी निर्णय की 3 जून 1947 की घोषणा के बाद संविधान सभा ने खुद को 1946 की केबिनेट मिशन योजना से मुक्त समझा और जल्द ही मजबूत केन्द्र वाले संघ का पक्ष अपनाया। भारतीय संविधान सभा के वाद–विवाद यह स्पष्ट दर्शाते हैं कि भारतीय संविधान निर्माता संघात्मक स्वरूप को अपनाना चाहते थे।

इसी सन्दर्भ में 28 अप्रेल 1947 को केन्द्रीय विषयों से सम्बन्धित समिति ने अपना प्रतिवेदन संविधान सभा को सौंपा जिसमें सुरक्षा, वैदेशिक मामले, संचार योजना, बैंकिंग जैसे केन्द्रीय महत्त्व के विषयों से संबंधित प्रावधानों को विस्तार दिया गया। यह प्रतिवेदन संविधान सभा में प्रस्तुत संघात्मक राष्ट्र की धारणा को पुष्ट करने की दिशा में एक सार्थक प्रयास था।

---

1. ग्रेनविल ऑस्टिन ; ' द इण्डियन कॉन्स्टीट्यूशन' ; पृ. 187

संविधान का मसविदा पेश करते समय डॉ. बी. आर. अम्बेडकर ने स्पष्ट किया कि "राज्यों का संघ" के स्थान पर "राज्यों का केन्द्र" शब्दों का प्रयोग किया जाये। इसलिये भारतीय संविधान के अग्रणी विशेषज्ञ डी.डी. बसु के निम्न कथन का उल्लेख समीचीन होगा।"भारतीय संविधान एक ऐसी प्रणाली विकसित करता है जो आमतौर पर संघीय है, लेकिन कुछ विशेष परिस्थितियों में इसे केन्द्रीकृत बनाने के प्रावधान भी मौजूद हैं।"[1]

संघात्मक व्यवस्था की आधारभूत मान्यता होती है, केन्द्र व इकाईयों के बीच शक्ति वितरण। जैसा कि डायसी ने भी माना "संघ एक राजनीतिक कौशल है जिसकी मंशा, राष्ट्रीय एकता को राज्यों के अधिकारों के संवहन से जोड़ने की होती है।"[2] अतः राज्यों को केन्द्रीय सत्ता में उचित प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिये द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका का चयन किया गया। संविधान सभा के विचाराधीन मुद्दों में से एक था भारतीय संसद में द्वितीय सदन का होना।

संविधान सभा के समक्ष विश्व की प्रमुख संसदों के द्वितीय सदनों के प्रतिमान थे, साथ ही उस समय की केन्द्रीय विधायिका का कार्यान्वयन भी था, जिसे 1919 के भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित किया गया था।[3]

संविधान सभा द्वारा नियुक्त संघीय संविधान समिति ने पं. जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में, 21 जुलाई 1947 को संविधान सभा में रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसके अन्तर्गत केन्द्र में द्वितीय सदन की स्थापना के संबंध में अनेक प्रावधान उपस्थित थे। समिति की रिपोर्ट पर 28 जुलाई 1947 को संविधान सभा में चर्चा हुई।

चर्चा के दौरान द्वितीय सदन की आवश्यकता के विषय में विभिन्न विचार व्यक्त किये गये। उदाहरण के लिये एक सदस्य का विचार था कि द्वितीय सदन आवश्यक नहीं है, वहीं दूसरे सदस्य का कहना था कि (विगत अनुभव के आधार पर) उच्च सदन 'प्रगति रूपी चक्र में बाधा है' (Clog in the wheel of progress)।[4] अतः संविधान में उसी को जारी रखना बुद्धिमत्ता नहीं होगी।

---

1. डी. डी. बसु ; इन्टोडक्शन टू द कॉन्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया ; पृ. 62
2. A.V. Dicey Pol. Chandra State Autonomy in India Federation Deep & Deep Publication New Delhi 1984 Pg. 18
3. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह : भारतीय शासन व राजनीति; पृष्ठ 54
4. Second chamber In Indian Parliament : Role and Status of Rajya Sabha : राज्य सभा सचिवालय द्वारा प्रकाशित : 2009 : Pg 3

एक अन्य सदस्य का मत था कि द्वितीय सदन नितांत आवश्यक है। उनके मतानुसार विधायन प्रक्रिया में गंभीरता व पुनर्विचार हेतु तथा राज्य प्रतिनिधियों को समायोजित करने हेतु द्वितीय सदन अपरिहार्य है।

श्री गोपालास्वामी आयंगर ने विवाद का उत्तर देते हुये कहा[1] कि व्यवहारिक रूप से द्वितीय सदन की आवश्यकता विश्व के सभी संघात्मक राष्ट्रों में महसूस की जा रही है। फिर भी हमारे सामने विचारणीय प्रश्न यह है कि वह कोई उपयोगी कार्य करता भी है या नहीं। द्वितीय सदन से अधिकतम कार्य जो हम करने की आशा करते हैं वह है महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर गौरवपूर्ण चर्चा तथा उतावलेपन अथवा अतिउत्साह में लोकसदन द्वारा पारित विधायन पर पुनः शान्तिपूर्वक विचार करना।

हम संविधान निर्माण में यह सावधानी रखेंगे कि लोकसदन व राज्यों के सदन (उच्च सदन) में गतिरोध की स्थिति में लोकसदन का अभिमत ही निर्णायक होगा। ऐसी स्थिति में द्वितीय सदन के अस्तित्व से हमें यह लाभ होता है कि वह जल्दी में लिये गये निर्णयों को दोहराने का समय प्रदान करता है साथ ही द्वितीय सदन के माध्यम से उन विद्वानों को राष्ट्रीय व्यवस्थापिका में समावेशित किया जा सकता है जो राजनीतिक दलबन्दी तथा रणनीति के दलदल में फंसने के इच्छुक नहीं होते हैं परन्तु विद्वता व महत्ता के साथ सहभागी बनने के इच्छुक होते हैं, जिन्हें सामान्यतः लोकसदन से संबंधित नहीं किया जा सकता है। इन्हीं कारणों से द्वितीय सदन प्रस्तावित है। अंततः 28 जुलाई 1947 को प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। संविधान सभा द्वारा 1 मार्च 1952 को राज्य परिषद् का प्रथम चुनाव हुआ तथा 3 अप्रैल 1954 को गठन हुआ।

राज्य परिषद् का नामकरण 'राज्य सभा' 23 अगस्त 1954 को स्वीकार किया गया।

भारत के प्रथम उपराष्ट्रपति व राज्य सभा के प्रथम सभापति के रूप में डॉ. राधाकृष्णन ने 13 मई 1952 के अपने प्रथम उद्‌बोधन में कहा—"सामान्य धारणा यह है कि क्योंकि यह सदन सरकार बना या गिरा नहीं सकता अतः यह एक निरर्थक सदन है परन्तु ऐसे अनेक कार्य हैं, जो यह सदन उपयोगी तरीके से सम्पन्न करेगा। हम पहली बार संसदात्मक शासन प्रणाली के साथ प्रारम्भ कर रहे हैं और देश की जनता को यह भरोसा करवाना हमारा दायित्व है कि द्वितीय सदन जल्दबाजी में कानून बनाने से रोकेगा।"

---

1. पूर्वोक्त : Pg 4

इस प्रकार राज्य सभा की स्थापना प्रतिनिधि सदन लोकसभा के सहयोगी सदन के रूप में तथा संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्यों के प्रतिनिधि सदन के रूप में सम्पन्न हुई।संविधान के अनु. 79 के अनुसार– "भारत की संसद राष्ट्रपति और दोनों सदनों से मिलकर बनती है। निचले सदन को लोकसभा और उच्च सदन को राज्य सभा कहते हैं।"[1]

इस प्रकार संघात्मक राष्ट्र या द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका नवजात भारतीय प्रजातन्त्र की तत्कालीन परिस्थितियों का परिणाम थी, परन्तु उसके क्रियान्वयन तथा विकास क्रम ने अनेक नवीन तथ्यों, प्रतिरूपों तथा विलक्षणताओं को उभारा। जिनका विश्लेषण, मूल्यांकन नितांत प्रासंगिक है। किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के विकास की दिशा तथा उसके निर्धारक तत्त्वों को इस प्रकार के विश्लेषण द्वारा ही उद्घाटित किया जा सकता है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में क्षेत्रीय दल एक ऐसा ही परिवृत्य है। विगत चार दशक का समय क्षेत्रीय दलों के उभार का काल रहा है, जिसका व्यवस्था विशेष पर प्रभाव का मूल्यांकन किया जाना नितांत प्रासंगिक है।

क्षेत्रीय दलों का जन्म तथा विस्तार एक आकस्मिक घटना के रूप में नहीं, बल्कि अलग–अलग स्थान व आधार पर जन्में दलों की श्रृंखला के रूप में हुआ।

भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर इनका प्रथम स्पष्ट प्रभाव लोकसभा चुनावों में प्राप्त वैध मत प्रतिशत के क्रमिक विकास के रूप में देखा जा सकता है।

1. डी. डी. बसु ; पूर्वोक्त पृष्ठ संख्या; 243

लोकसभा निर्वाचन में क्षेत्रीय दलों को प्राप्त मत प्रतिशत

तालिका संख्या 1

लोस	वर्ष	क्षेत्रीय दल	क्षेत्रीय दलों को प्राप्त वैध मत %
II	1957	11	7.60
III	1962	11	9.28
IV	1967	14	9.69
V	1971	17	10.17
VI	1977	15	8.80
VII	1980	19	7.69
VIII	1984	17	11.56
IX	1989	20	9.28
X	1991	27	12.98
XI	1996	30	22.43
XII	1998	30	18.79
XIII	1999	40	26.93
XIV	2004	51	28.90
XV	2009	42	23.60

क्षेत्रीय दलों की लोकसभा चुनावों में बढ़ती संख्या के साथ–साथ इन्हें प्राप्त वैध मतों का निरन्तर बढ़ता मत प्रतिशत स्वयं ही इनकी बढ़ती शक्ति का सूचक है। तालिका संख्या 1 से स्पष्ट है कि द्वितीय लोकसभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों की संख्या 11 व इन्हें प्राप्त मतों का प्रतिशत 7.60% था वहीं 2004 तक यह संख्या बढ़कर 51 व प्राप्त मतों का प्रतिशत 28.90% हो गया। जनता के समर्थन से क्षेत्रीय दलों की महत्वाकांक्षा में इतनी वृद्धि हो गई है कि वे अब केन्द्रीय

सरकार को बनाने या गिराने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने लगे हैं। इसी कारण इन्हें अब राष्ट्रीय हितों का पोषण करने वाली क्षेत्रीय पार्टियाँ कहा जाने लगा।

यह उल्लेखनीय है कि क्षेत्रीय दलों का आधार क्षेत्र/राज्य विशेष है। ये क्षेत्रीय दल धर्म, जाति, भाषा व क्षेत्रीय हितों जैसे भावनात्मक मुद्दों को आधार बनाकर चुनाव मैदान में उतरते हैं। चूँकि ये मुद्दे जनता से सीधे जुड़े हैं, इसलिये उस क्षेत्र या राज्य की जनता राष्ट्रीय दलों के स्थान पर क्षेत्रीय दलों को वरीयता देते हुये राज्य विधानसभाओं में इनका स्थान सुनिश्चित करती है। इस नवाचार का एक अनिवार्य परिणाम यह है कि ये क्षेत्रीय दल सम्बन्धित राज्य के राज्य सभा चुनाव की प्रक्रिया को भी प्रभावित करने की क्षमता रखते हैं।

इस प्रकार भारतीय प्रजातन्त्र के विकास के प्रारंभिक चरण में लोक सभा में प्रभावी उपस्थिति दर्ज करवाने के बाद क्षेत्रीय दल गठबन्धन संस्कृति के उदय का प्रतीक बने। तत्पश्चात् राज्य विधान सभाओं के माध्यम से राज्य सभा तक का मार्ग तय करने में सक्षम हुये। अतः संघात्मक राष्ट्र व द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका की अवधारणा व क्षेत्रीय दलों की प्रवृत्ति ने अलग–अलग समय पर, अलग–अलग कारणों से व पृथक प्रक्रिया द्वारा अपनी व्यापकतर स्थिति को निरन्तर दर्शाया, साथ ही यह भी स्पष्ट किया कि उक्त तीनों ही तत्त्व एक दूसरे के साथ घनिष्ठता से सम्बद्ध हैं। परन्तु इसके साथ कुछ अहम प्रश्न भी उपस्थित हो रहे हैं।

सर्वप्रथम प्रश्न यह है कि क्षेत्रीय दलों के विकास ने जिस प्रकार प्रतिनिधि सदन (लोक सभा) के विधायी व्यवहार, सांसदों के आचरण को प्रभावित किया है, क्या उच्च सदन (राज्य सभा) में उक्त सभी तत्व अप्रभावित है अथवा उनमे भी किसी प्रकार का परिवर्तन लक्षित हो रहा है? द्वित्तीय महत्वपूर्ण प्रश्न संघात्मक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में द्वित्तीय सदन की भूमिका का है, राज्य सभा को आवंटित एक महत्वपूर्ण कार्य संघीय हितों का प्रतिनिधित्व है तथा क्षेत्रीय दल इन्हीं संघीय इकाइयों के प्रतिनिधि के रूप में सदन में प्रवेश करते है, प्रश्न यह है कि ये सदस्य संघीय हितों को समुचित स्वर प्रदान कर रहे हैं या नहीं।

"राज्य सभा के सदस्यों का निर्वाचन प्रत्येक राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के आधार पर एकल संक्रमणीय मत प्रणाली द्वारा होता है। केन्द्रशासित क्षेत्रों के प्रतिनिधियों के निर्वाचन की प्रणाली संसद की विधि द्वारा निश्चित किये जाने का प्रावधान है।"[1]

---

1. पूर्वोक्त

ऐसे में तीसरा महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि इस प्रकार की निर्धारित निर्वाचन प्रक्रिया द्वारा चयनित क्षेत्रीय दलों के सांसद राज्य सभा के दलीय अनुपात को किस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं। विधायी प्रक्रिया के अन्तर्गत यह अनुपात प्रभावी हो सकता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि क्षेत्रीय पृष्ठभूमि के सांसदों की राष्ट्रीय महत्व के विषयों के सन्दर्भों में क्या भूमिका रही।

उक्त प्रश्नों का समाधान अंततः क्षेत्रीय दलों के परिप्रेक्ष्य में राज्य सभा के विकास के विभिन्न आयामों को उद्‌घाटित कर सकता है। विगत दशक में, विशेषकर गठबन्धन सरकार के अन्तर्गत क्षेत्रीय दलों की भूमिका को राज्य सभा के विकास के परिप्रेक्ष्य में रेखांकित करने का प्रयास प्रस्तुत अध्ययन में किया जाना है।

1.2 शोध के उद्देश्य

भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य सभा का निर्माण राज्यों के प्रतिनिधि सदन के रूप में किया गया है, वहीं क्षेत्रीय दल राज्यों की राजनीति की नवीनतम प्रवृत्ति है। प्रस्तुत शोधकार्य राज्य सभा व क्षेत्रीय दलों के अर्न्तसम्बन्धों पर केन्द्रित है। राज्य सभा का गठन राज्यों की विधानसभाओं पर निर्भर है तथा अधिकांश राज्यों की राजनीति में क्षेत्रीय दलों का वर्चस्व है अतः इन क्षेत्रीय दलों को राज्य सभा में स्वतः ही प्रतिनिधित्व प्राप्त हो जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप लोकसभा की तरह ये दल राज्य सभा को प्रभावित करने में सक्षम हो सकते हैं।

राज्यों का प्रतिनिधि सदन होने के साथ–साथ राज्य सभा भारतीय व्यवस्थापिका (संसद) का उच्च सदन भी है। इस कारण राज्य सभा सांसदों को दोहरी भूमिका का निर्वहन करना होता है। राज्य स्तरीय हितों के संवर्द्धन व संरक्षण के साथ राष्ट्रीय महत्त्व के विषयों में सक्रिय योगदान देने के लिये राज्य सभा सांसदों का व्यापक दृष्टिकोण अपरिहार्य हो जाता है।

केन्द्रीय प्रश्न यह है कि क्षेत्रीय दल किस प्रकार राज्य सभा के कार्यकरण, राज्यों के प्रतिनिधि सदन के रूप में राज्य सभा की भूमिका को प्रभावित कर रहे हैं। यह जानना भी महत्त्वपूर्ण होगा कि राज्य सभा जैसे केन्द्रीय महत्त्व के सदन में क्षेत्रीय दलों का विधायी व्यवहार क्षेत्रीय चरित्र का रहता है या राष्ट्रीय हितों के अनुरूप रूपान्तरित हो जाता है। अत: प्रस्तुत शोध कार्य के उद्‌देश्य इस प्रकार होंगे–

1. भारतीय संघ में गठबन्धन सरकारों की नवीनतम प्रवृत्ति के अन्तर्गत क्षेत्रीय दलों के बढ़ते महत्त्व के चलते विधायिका के द्वित्तीय सदन के रूप में राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों की भूमिका का परीक्षण।
2. द्वितीय सदन के रूप में राज्य सभा के निर्धारित दायित्वों के निर्वहन में क्षेत्रीय दलों की भूमिका का मूल्यांकन।
3. संघीय हितों के निर्वहन में क्षेत्रीय दलों की भूमिका का निर्वहन।
4. उक्त के आधार पर क्षेत्रीय दलों की भूमिका का मूल्यांकन।
5. अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर पूर्वस्थापित सामान्यीकरणों का परीक्षण करना तथा नवीन सामान्यीकरणों की रचना।
6. बहुदलीय व्यवस्था वाले प्रजातान्त्रिक देशों के द्वित्तीय सदनों का तुलनात्मक अध्ययन।
7. भविष्य के लिये अनुमानित व परिलक्षित व्यवस्थागत अनुमान लगाना।

1.3 काल का परिचय (2004–2010)

प्रस्तुत अध्ययन हेतु 2004–2010 का काल चयनित है। उक्त के चयन का कारण उसकी विशिष्टता है जो कि निम्नवत् है।

इस काल से पूर्व राजग की गठबन्धन सरकार (13वीं लोक सभा 1999) का प्रयोग सफलतापूर्वक सम्पन्न हो चुका था। पुनः 2004 में संप्रग के रूप में गठबन्धन सरकार का सत्तारूढ़ होना व 2009 में इसकी पुनरावृत्ति इस बात का संकेत था कि भारतीय राजनीति परिपक्वता के साथ क्षेत्रीय राजनीति व गठबन्धन सरकारों के दौर की ओर अग्रसर है। 1996 से भारत में क्षेत्रीय दलों के समर्थन से बहुदलीय व्यवस्था कायम हुई। जिसे 1999 के लोक सभा चुनाव द्वारा संस्थागत स्वरूप प्राप्त हुआ तथा 2004 व 2009 के आम चुनाव द्वारा इस नवीन प्रवृत्ति को स्थायित्व प्राप्त हुआ।

सत्तारुढ़ गठबन्धन में शामिल क्षेत्रीय दलों को 15वीं लोक सभा में 7.07% सीटें (545 में से 42) प्राप्त हुईं वहीं 26:66% मंत्रीपद (60 में से 16) उनके हिस्से में आये। इस प्रकार सीट व मंत्रीपद का अनुपात 1:3.77 का रहा। वहीं 14वीं लोकसभा में यह अनुपात 1:3.02 का था जबकि क्षेत्रीय दलों को 11.10% सीटें प्राप्त हुईं (545 में से 60) तथा उन्हें प्राप्त मंत्रीपद का प्रतिशत 33. 33%(60 में से 20) था। इस प्रकार की अवस्था सत्तारुढ़ गठबन्धन की या स्पष्ट कहें तो सत्ता प्राप्त करने के लिये राष्ट्रीय दलों की क्षेत्रीय दलों पर बढ़ती निर्भरता की ओर तो इंगित करती ही है, साथ ही क्षेत्रीय दलों के बढ़ते वर्चस्व को भी रेखांकित करती है।

प्रस्तुत अध्यन क्षेत्रीय राजनीतिक दलों द्वारा संसद के उच्च सदन पर पड़ने वाले प्रभाव पर आधारित है। यहाँ यह तथ्य उल्लेखनीय है कि संविधान निर्माताओं द्वारा संसद के दोनों सदनों के गठन के आधार व चुनाव प्रक्रिया पृथक–पृथक रखी गई थी। राज्य सभा को मूलतः राज्यों के सदन के रूप में गठित किया गया था, जिसमें समाज के अभिजन वर्ग हेतु भी स्थान आरक्षित थे। स्पष्ट रूप से लिखित न होने पर भी ऐसा मानने के स्पष्ट आधार हैं कि संविधान निर्माता राज्य सभा को दलीय राजनीति के दोषों से मुक्त रखना चाहते थे, परन्तु जैसे–जैसे क्षेत्रीय दल मुखर होते गये उन्होंने राज्य विधान सभाओं के साथ–साथ राज्य सभा में भी अपनी प्रभावी उपस्थिति दर्ज करवाना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार 2004–2010 के बीच सम्पन्न विभिन्न चुनाव से प्राप्त आँकड़ों द्वारा अध्ययन व परीक्षण हेतु कारकों के प्रतिमान की उपलब्धता की संभावना को ध्यान में रखते हुये उक्त काल का चयन किया गया।

चयनित काल इसलिये भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इस काल में राज्य सभा के एक नवीन स्वरूप ने आकार लेना प्रारम्भ किया जो कि संविधान निर्माताओं की आकांक्षाओं से भिन्न है। इस परिवर्तन का मूल दलीय संरचना है। राज्य सभा में दलीय समीकरण अपने पक्ष में करने के लिये राजनीतिक दलों द्वारा निर्वाचन प्रक्रिया को प्रभावित करने का प्रयास, विधायी प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में राज्य सभा की बदलती भूमिका काल के महत्व को स्वत: ही रेखांकित करती है। अतः निश्चित ही अध्ययन हेतु चयनित काल विषय के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष प्रदान कर सकेगा तथा संसदीय अध्ययनों को समृद्ध कर सकेगा।

1.4 शोध–प्रविधि (Research Methodology)

प्रस्तुत अध्ययन राजनीतिक समाजशास्त्र के क्षेत्र में आता है । जिसके अन्तर्गत राजनीतिक संस्थाओं और सामाजिक संरचनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है । शोध हेतु चयनित विषय का प्रतिपाद्य राज्यसभा के विकास का परीक्षण तथा मूल्यांकन क्षेत्रीय दलों की प्रभावी भूमिका के परिप्रेक्ष्य में करना है । इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये 2004 – 2010 के काल को विशिष्टता की वजह से चयन किया गया। अध्ययन का केन्द्रीय प्रश्न है कि जिस उद्देश्य, प्रकृति और विशिष्ट स्वरूप के साथ संसद के द्वितीय सदन के रूप में राज्यसभा की संरचना की गई, क्या क्षेत्रीय दलों के क्रियाकलापों ने उनमें भिन्नता उपस्थित की है? अर्थात राज्यसभा अपने आवंटित कार्यो के सम्पादन में क्षेत्रीय दलों के बढ़ते प्रभावों के साथ किस प्रकार विकसित होती रही? क्या इस सन्दर्भ में प्रतिनिधि सदन से किसी प्रकार की सादृश्यता / असादृश्यता प्रतीत होती है?

यह सही है कि राजनीतिक व्यवस्था एक ऐसी उपव्यवस्था है जिसके विभिन्न भागों में ऐसी सम्बन्ध–सूत्रता होती है कि व्यवस्था के किसी भी भाग में हुआ कोई भी परिवर्तन अन्य अन्त:क्रियाशील अंगों तथा सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था में भी अनुकूल या प्रतिकूल परिवर्तन ला सकता है। राजनीतिक व्यवस्था में विद्यमान संरचनाओं में अन्तर्निभरता की व्याख्या कार्यात्मक आधार पर संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम के द्वारा ही की जा सकती है। अत: प्रस्तुत अध्ययन हेतु इसी पद्धति को अपनाया गया है। यह उपागम इस बात को स्पष्ट करता है कि व्यवस्थाओं, उपव्यवस्थाओं और पर्यावरण से राजनीतिक व्यवस्था प्रभावित होती है और राजनीतिक व्यवस्था भी उन सबको प्रभावित करती है।

प्रस्तुत अध्ययन राज्यसभा जैसी महत्वपूर्ण राजनीतिक संरचना के विकास का है तथा क्षेत्रीय दल व्यवस्था के पर्यावरण में उपस्थित महत्वपूर्ण तत्व है। सामाजिक, आर्थिक, भूराजनीतिक कारणों से उद्‌भूत ये क्षेत्रीय दल राज्यसभा को किस प्रकार स्वरूपित, विकसित करते रहे हैं? इस केन्द्रीय बिन्दु का विश्लेषण प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत प्रकार्यात्मक पद्धति के माध्यम से किया गया है।

यह अध्ययन मुख्यत: द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है जिन्हें निम्न स्त्रोतों से प्राप्त किया गया है

→ पार्लियामेन्टी लाइब्रेरी

→ संवैधानिक व संसदीय अध्ययन संस्थान (राज्यसभा सचिवालय से सम्बद्ध)

→ शोध पत्रिकायें

→ संसदीय कार्यवाही, निर्वाचन आयोग, पार्टी कार्यालय से प्राप्त आंकड़े

अध्ययन हेतु प्रबुद्ध चिन्तकों के शोध ग्रन्थों, रचनाओं व शोध प्रपत्रों की प्रभूत सहायता ली गई है। संकलित द्वितीयक आंकड़ों का विश्लेषण सांख्यिकीय प्रणाली के प्रयोग द्वारा किया गया जिसमें कम्प्यूटर की सहायता ली गई है। विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों का प्रस्तुतीकरण सारणीयन, ग्राफ पद्धति के माध्यम से शोधार्थी द्वारा किया गया है उपलबध आंकड़ों के विश्लेषण द्वारा अध्ययन हेतु ली गई परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया तथा सामान्यीकरणों की रचना भी की गई है।

अध्ययन की सीमायें

प्रस्तुत अध्ययन भारतीय संघात्मक व्यवस्था के द्वितीय सदन के रूप में राज्य सभा तथा नवीन प्रवृति के रूप में क्षेत्रीय दलों के अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषण है। अध्ययन व शोध की सीमाओं

को ध्यान में रखते हुये विश्लेषण हेतु कुछ मानक निर्धारित किये गये हैं जिनके आधार पर राज्यसभा के विकास में क्षेत्रीय दलों की भूमिका का आंकलन किया गया है। ये मानक निम्नवत् है–

1 संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत इकाइयों के प्रतिनिधि के रूप में राज्यसभा की भूमिका।

2 राज्यसभा की विधायी प्रक्रिया के अन्तर्गत इकाइयों के हितों के रक्षक के रूप में क्षेत्रीय दलों की भूमिका।

3 संघीय व्यवस्थापिका के उच्च सदन के रूप में राज्यसभा में राष्ट्रीय अखण्डता व हित सम्बन्धी विषयों के परिप्रेक्ष्य में विधायी प्रकिया में क्षेत्रीय दलों की भूमिका

अध्ययन हेतु ली गई परिकल्पनायें

1. संघीय इकाइयों के प्रतिनिधि सदन के रूप में राज्य सभा का विकास उत्तरोत्तर दलीय प्रतिमानों से प्रभावित हो रहा है।
2. क्षेत्रीयता राष्ट्रीय हित का विलोम है
3. राज्यसभा संघात्मक व्यवस्था की प्रतीक है

अध्ययन हेतु ली गई अवधारणायें

1. संघवाद की अवधारणा
2. क्षेत्रीयतावाद की अवधारणा

भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य सभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव का विश्लेषण अपेक्षा करता है कि सर्वप्रथम संघात्मक व्यवस्था का सैद्धान्तिक विवेचन किया जाये।

1.5 संघवाद की अवधारणा

आधुनिक विस्तृत राज्यों का शासन केन्द्रीय रूप में नहीं किया जा सकता है अत: शासन की सुविधा के लिये राज्यों को कई इकाइयों में बांटा जाता है। शासन शक्ति के एक स्तर पर केन्द्रीकरण या अनेक स्तरों पर वितरण के आधार पर शासन व्यवस्थाओं के तीन प्रतिमान मान्य रहे हैं। पहला एकात्मक प्रतिमान जिसमें राज्य शक्ति का प्रयोग एक स्थान (केन्द्रीय सत्ता) में केन्द्रित रहता है, दूसरा परिसंघात्मक (Confederal) प्रतिमान जिसमें राज्य शक्ति का प्रयोग अनेक स्थानों

पर केन्द्रित रहता है, तथा तीसरा संघात्मक (federal) प्रतिमान जिसमें राज्य शक्ति का प्रयोग दो स्तरों पर स्थापित, केन्द्रीय व राज्य की सरकारों में निहित रहता है।

संघवाद के दो आयाम संभव हैं– गतिज व स्थैतिक। स्थैतिक स्वरूप के अनुसार संघवाद एक व्यवस्था है, वहीं गत्यात्मक स्वरूप के अन्तर्गत यह एक प्रक्रिया में परिवर्तित हो जाता है। संघवाद का व्यवस्थागत स्वरूप केन्द्रीय व क्षेत्रीय सरकारों के बीच शक्ति वितरण पर आधारित होता है। डायसी का भी मानना है कि "शक्तियों का विभाजन संघवाद का आवश्यक लक्षण है। एक संघीय राष्ट्र जिस उद्देश्य से बनाया जाता है वह है राष्ट्रीय सरकार व पृथक राज्यों के बीच सत्ता का विभाजन करना"[1]

("The distribution of powers is an essential feature of federalism. The object for which a federal state is formed involves a division of authority between the national govt. and the separate states")

एक प्रक्रिया के रूप में संघवाद राजनीतिक समाज के विविध तत्वों को उनकी विविधताओं और विभिन्नताओं के साथ एक होने का अवसर प्रदान करते हैं । जिसमें सरकारों के दो स्तर अपने अधिकार क्षेत्र में सीमित रखे जाते हैं। "संघवाद शक्ति विभाजन का तरीका है ताकि सामान्य और क्षेत्रीय सरकारें एक अधिकार क्षेत्र की सीमा में रहें, साथ ही समन्वित और स्वतन्त्र भी रहें।"[2]

("A method of dividing powers so that the general and regional govt. are each within a sphere , co-ordinated and independent")

संघात्मक राज्य की इकाईयां स्वयं में स्वतन्त्र होते हुये भी एक वृहद संरचना का भाग होती है तथा साझा नीतियों व निर्णयों को समवेत स्वर प्रदान करती हैं।

---

1. A. V. Dicey : Introduction to the study of the Law of Constitution : 1959 : Pg 151
2. K. C. Wheare : Federal Government : 1953 : Pg 11

'संघ' शब्द का अंग्रेजी रूपान्तर 'फेडरेशन' (Federation) लैटिन भाषा के शब्द 'फोइडस' (Foedus) से निकला है जिसका अर्थ है संधि या समझौता। अत: शब्द व्युत्पत्ति के दृष्टिकोण से समझौते द्वारा निर्मित राज्य को संघ राज्य कहा जाता है जिसमें अनेक स्वतंत्र राज्य अपने कुछ सामान्य उद्धेश्यों की पूर्ति के लिये केन्द्रीय सरकार संगठित करते हैं और शेष विषयों में अपनी–अपनी पृथक स्वतंत्रता सुरक्षित रखते हैं।

इस प्रकार संघ राज्य में एक संघीय या केन्द्रीय सरकार (Federal Government) होती है और कुछ संघीभूत इकाइयों (Federal Units) की सरकारें होती हैं। संघ का निर्माण एक लिखित समझौते, जो एक संविधान का रूप होता है, के द्वारा होता है। संविधान द्वारा केन्द्र तथा इकाइयों की सरकारों के बीच शासन शक्तियों का स्पष्ट विभाजन कर दिया जाता है सामान्य हित के विषयों का प्रबन्ध–केन्द्रीय सरकार के हाथ में रहता है और क्षेत्रीय महत्व के विषयों का संघीय इकाइयों के हाथ में।

दोनों सरकारें अपने–अपने विषय–क्षेत्र में स्वतंत्र रहती हैं। उनके अधिकार क्षेत्र या सीमा में परिवर्तन संवैधानिक संशोधन प्रक्रिया तथा उनकी सहमति से ही सम्भव है। दोनों सरकारों की शक्तियां मौलिक होती हैं और दोनों का अस्तित्व संविधान पर निर्भर करता है। इस प्रकार संघ राज्य दोहरी सरकार (dual polity) है। यह दो प्रकार की समकक्ष (co-equal) सरकारों का राज्य है।

डेन्यिन जे. ऐलाजारा के अनुसार–"संघीय पद्धति ऐसी व्यवस्था प्रदान करती है जो अलग–अलग राज्य व्यवस्थाओं को बाहर से घेरने वाली राजनीतिक पद्धति में इस प्रकार संगठित करती हैं कि इनमें से हर एक अपनी–अपनी मूल राजनीतिक अखण्डता को बनाये रखती है।"[1]

इस प्रकार संघीय सरकार व प्रादेशिक सरकारों (के.सी. व्हीयर घटकों की सरकारों को प्रादेशिक सरकारों का नाम देते हैं।)[2] की अपनी–अपनी मौलिक शक्तियाँ होती हैं जो इन शक्तियों के प्रयोग में न तो एक दूसरे पर आश्रित रहती हैं और न ही एक दूसरे के अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण कर सकती हैं।

---

1. डेन्यिन जे. ऐलाजारा उद्धृत के. सी. जोहरी : ' तुलनात्मक राजनीतिपृष्ठ संख्या 36

   : International Enyclopedia of Social Science : 1968 : Pg 358

2. के.सी. व्हीयर उद्धृत : तुलनात्मक राजनीति व राजनीतिक संस्थायें पृष्ठ संख्या 511

दोनों ही स्तर (राष्ट्रीय व प्रादेशिक) की सरकारों का अपने अधिकारों के प्रयोग में नागरिकों से सीधा सम्बन्ध रहता है और नागरिकों की दोनों ही प्रकार की सरकारों के प्रति राज्य निष्ठा रहती है। इस प्रकार संघात्मक शासन व्यवस्था का विचित्र लक्षण इस बात में निहित है कि यह एकात्मक व परिसंघात्मक व्यवस्थाओं से भिन्न होते हुये भी दोनों के तत्त्व लिये हुये होती है।

संघात्मक शासन व्यवस्था में सरकारों की सत्ता के स्त्रोत, केन्द्रीय व राज्यों की सरकारों के पारस्परिक सम्बन्ध व नागरिकों की शासनों से निकटता को निम्न चित्र द्वारा स्पष्ट समझा जा सकता है।

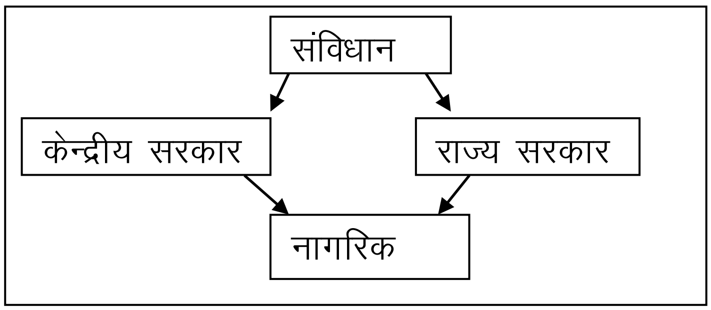

(संविधान, परिसंघ सरकार, राज्य सरकारों व नागरिकों का सम्बन्ध)[1]

संघ–सरकार का सर्वोत्तम उदाहरण संयुक्त राज्य अमेरिका है। स्विटजरलैण्ड, भारत, आस्ट्रेलिया व कनाडा आदि देशों में भी संघीय व्यवस्था को अपनाया गया है। विभिन्न विद्वानों ने संघवाद की परिभाषायें इस प्रकार दी हैं –

→ डायसी –"संघवाद एक राजनीतिक समझौता है जिसके अनुसार राज्य के अधिकारों को सुनिश्चित करने के साथ–साथ सारे राष्ट्र की एकता को सुनिश्चित किया जाता है।"[2]

→ गार्नर –"संघात्मक सरकार वह पद्धति है जिसमें समस्त शासकीय शक्ति एक केन्द्रीय सरकार तथा उन विभिन्न राज्यों अथवा क्षेत्रीय उपविभागों की सरकारों के बीच विभाजित एवं वितरित रहती है जिनको मिलाकर संघ बनता है।"[3]

---

1. पूर्वोक्त
2. डायसी : उद्धृत डॉ. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह : तुलनात्मक शासन और राजनीति पृष्ठ 101
3. गार्नर : पोलिटिकल साइन्स एण्ड गवर्नमेंट पृष्ठ संख्या 319

→ फाइनर –"संघीय राज्य वह है जिसमें अधिकार और शक्ति का कुछ भाग स्थानीय क्षेत्रों में निहित है व दूसरा भाग स्थानीय क्षेत्र के समुदाय द्वारा विचारपूर्वक बनायी गयी केन्द्रीय संस्था को दिया जाय।" [1]

इन परिभाषाओं से संघात्मक शासन की कुछ विशिष्टतायें सामने आती हैं–

→ संघ का आधार पारस्परिक संगठन (Union) है एकता (Unity) नहीं। संघ में इकाइयों की स्वायत्तता और स्वरूप को सुरक्षित रखा जाता है ।

→ सघ निर्माण के पश्चात् अवयवी एकक अपनी संप्रभुता खो देते हैं। संप्रभुता नवनिर्मित संघराज्य में निहित हो जाती है।

→ संघ शासन में सरकारें दो प्रकार की होती हैं–केन्द्रीय सरकार और इकाइयों की सरकारें। शासन शक्तियों का केन्द्रीय तथा इकाइयों के सरकारों के बीच विभाजन होता है। केन्द्रीय शासन के अधिकार क्षेत्र में सामान्य हित और राष्ट्रीय महत्व के विषय और इकाइयों के अधिकार क्षेत्र में स्थानीय महत्व के विषय रहते हैं। "चूँकि संघीय पद्धति एक सन्धि का रूप धारण कर लेती है अतः संविधान में या तो उन अधिकारों का उल्लेख किया जाना चाहिये जिन्हें संघ में शामिल होने वाली इकाईयाँ बनाए रखना चाहती हैं या उन अधिकारों का उल्लेख किया जाना चाहिये जिन्हें संघीय प्राधिकरण अपने पास रखेगा।"[2]

→ संघ शासन उत्पन्न नहीं हो जाता अपितु उसका निर्माण किया जाता है।

→ संघ शासन में लिखित संविधान का होना नितान्त आवश्यक है संविधान द्वारा शक्तियों का स्पष्ट विभाजन किया जाता है तथा दोहरी शासन व्यवस्था का निर्माण किया जाता है।

→ संघवाद के लिये संविधान कठोर होना चाहिये इसके लिये संविधान संशोधन की प्रकिया विशिष्ट एवं पूर्व निर्धारित हो।

→ संघ शासन में संविधान सर्वोच्च होता है। संवैधानिक विधियों का अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता है।

---

1. डॉ. फाइनर : उद्धृत डॉ. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह : पूर्वोक्त
2. C. F. Strong: Modern Political Constitution London , Sidgwick & Jackson : Pg 64

→ केन्द्र तथा इकाइयों के बीच उत्पन्न मतभेदों और संघर्षों को दूर करने एवं राज्यों तथा नागरिको के अधिकारों की रक्षा करने के लिये स्वतंत्र संघीय न्यायालय होता है। यह संविधान का संरक्षक होता है।

कुछ विचारक संघात्मक व्यवस्था के दो गौण लक्षण और मानते है–

1 राज्यों का इकाइयों के रूप में केन्द्रीय व्यवस्थापिका में प्रतिनिधित्व

2 राज्यों का संशोधन प्रकिया में भाग लेना

इन लक्षणों के समर्थकों की मान्यता है कि राज्यों के हितों के संरक्षण हेतु यह आवश्यक है कि राज्यों का केन्द्रीय व्यवस्थापिका में प्रतिनिधित्व रहे तथा बिना राज्यों की सहमति के संशोधन न किया जा सके। व्हीयर के अनुसार–"संविधान की सर्वोच्चता अपने आप में राज्यों के हितों की सुरक्षा व्यवस्था है तथा सर्वोच्च न्यायालय संविधान की सर्वोच्चता बनाये रखने का प्रभावी साधन प्रस्तुत करता है, संविधान संशोधन में दोनों स्तर की सरकारों की सहभागिता भी संविधान की सर्वोच्चता को सुनिश्चित करती है।"[1]

संघीय राज्य का स्वरूप एक मिश्रित राज्य का है, इसके सफल संगठन व संचालन के लिये कुछ आवश्यक पूर्व शर्तें अपरिहार्य हैं, वे निम्न हो सकती हैं– सर्वप्रथम अनिवार्यता भौगोलिक सामीप्य की है। जो क्षेत्र मिलकर संघ बनाना चाहते हैं, उन्हें भौगोलिक दृष्टि से एक दूसरे के समीप होना चाहिये।

राज्य का आकार चाहें छोटा हो या बड़ा परन्तु राज्य का क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से जुड़ा होना चाहिए अन्यथा संघीय पद्धति का सफल संचालन संभव नहीं है। उदाहरण के लिये इन्डोनेशिया जैसा देश संघीय पद्धति को सफलतापूर्वक नहीं अपना सकता क्योंकि वह एक द्वीप समूह है। गिलक्राइस्ट ने भौगोलिक निकटता पर जोर देते हुये कहा है कि "दूरी से केन्द्रीय और स्थानीय सरकार दोनों में उपेक्षा और कठोरता उत्पन्न हो जाती है। जहाँ लोग एक दूसरे से दूर हो जाते हैं वहाँ राष्ट्रीय एकता प्राप्त करना कठिन हो जाता है।"[2]

---

1. व्हीयर उद्धृत सी. बी. गेना : पूर्वोक्त : पृष्ठ संख्या 515 – 516

2. गिलक्राइस्ट उद्धृत वीरकेश्वर प्रसाद सिंह : पूर्वोक्त

संघ निर्माण हेतु दूसरी आवश्यक शर्त केन्द्र व क्षेत्रीय इकाइयों के बीच भाषा, धर्म, संस्कृति आदि से सम्बन्धित हितों की समानता है। "जैसा कि डायसी ने कहा है, एक संघीय पद्धति में संघ की अपेक्षा की जाती है, एकता की नहीं।"[1] इसका आधार विभिन्नता में एकता का सिद्धान्त है। इसका उद्‌देश्य संघ बनाकर 'संयुक्त राष्ट्र' का निर्माण करना है।

अमरीका, भारत, कनाडा, स्विटजरलैण्ड के उदाहरणों से पता चलता है कि इनमें से हरेक में अनेक ऐसी विभिन्नतायें हैं जिन्हें बनाये रखने का प्रयास किया जाता है। तथापि समान हितों पर आधारित एक समान सत्ता की भावना का विकास भी समानान्तर रूप से कर लिया गया है।

सामाजिक व राजनीतिक संस्थाओं की समानता वह तृतीय आवश्यक पूर्व शर्त है जो संघ निर्माण हेतु आवश्यक है। संघीय व्यवस्था की स्थापना से पूर्व यह अपेक्षा की जाती है कि राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दोनों स्तरों पर शासन पद्धतियों का प्रतिमान समान होना चाहिये अर्थात केन्द्र और राज्यों में एक प्रकार की शासन व्यवस्था होनी चाहिये। उदाहरण के लिये भारत, कनाडा जैसे संघीय देशों में केन्द्र तथा प्रान्तों में संसदीय शासन प्रणाली विद्यमान है। इसी प्रकार अमरीका में केन्द्र और राज्यों में अध्यक्षीय शासन प्रणाली है।

प्रो. व्हीयर के अनुसार "जिन लोगों में समान राजनीतिक संस्थायें विद्यमान थी या जो समान राजनीतिक संस्थाओं के बीच विद्यमान थे उन्हीं में संघ निर्माण की इच्छा पैदा हुई है।"[2] अर्थात् संस्थाओं की समानता से निवासियों व राज्यों में एक साथ काम करने की प्रवृत्ति जगती है।

संघीय राज्य की इकाइयों को शक्तियों की दृष्टि से यथासंभव केन्द्र के समान स्थिति प्रदान करना संघ निर्माण हेतु एक आवश्यक पूर्वशर्त है। शक्तियों के वितरण के अन्तर्गत किसी प्रकार की विषमता संघीय व्यवस्था के संचालन में बाधक है। यह विषमता प्रान्तों के राजनीतिक व्यवहार में परिलक्षित होती है। शक्ति वितरण के साथ ही क्षेत्रीय आर्थिक असन्तुलनों को दूर करने के प्रयास किये जाने चाहिये। आर्थिक असन्तुलन आन्दोलनों को जन्म देते हैं तथा राजनीतिक व्यवस्था को प्रभावित करते हैं।

संघीय शासन व्यवस्था सामाजिक—आर्थिक विकास के बिना सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती है। इस प्रकार इसे भी आवश्यक पूर्वशर्त माना जा सकता है।

---

1. के. सी. जोहरी : पूर्वोक्त Pg 367

2. व्हीयर उद्‌धृत वीरकेश्वर प्रसाद सिंह : पूर्वोक्त

इसके अतिरिक्त राजनेताओं की राजनीतिक योग्यता भी संघात्मक व्यवस्था के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसका निर्देश विकासशील राजनीतिक संस्कृति की ओर है। जब तक लोगों के अपने विचार, विश्वास और अपनी राजनीतिक पद्धति के मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धतायें नहीं होती, तब तक कोई भी राजनीतिक व्यवस्था सफलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकती। संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत केन्द्रीय व क्षेत्रीय सरकारों के बीच सुखद समन्वयकारी संबंध होने चाहिये। यद्यपि उनके अधिकार क्षेत्रों का विशेष प्रकार से सीमांकन किया जाता है, इस बात की भी अपेक्षा की जाती है कि कुछ अंतःसम्बन्धी व्यवस्थाओं का नियोजन किया जाय जिससे दोनों सरकारों के बीच किसी न किसी प्रकार के सम्बन्ध बने रहे। संघवाद का स्वरूप सहकारी व सकारात्मक होना चाहिये।

व्हीयर ने अपने ग्रंथ फेडरल गवर्नमेंट में निम्नलिखित कारणों को संघात्मक व्यवस्था की स्थापना के लिये उत्तरदायी माना है–

1. सैनिक असुरक्षा की भावना
2. विदेशी शक्तियों से स्वतन्त्र रहने की इच्छा
3. आर्थिक लाभ की आशा
4. संघीय संगठन के प्रयत्न के पहले विभिन्न राजनीतिक इकाईयों में कुछ मात्रा में राजनीतिक मेल–जोल का होना
5. राजनीतिक संस्थाओं में समानता
6. आवश्यकता पड़ने पर प्रभावशाली नेतृत्व की उपलब्धि की आकांक्षा[1]

विलियम पी. मेडोक्स ने भी लगभग समान कारणों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार संघात्मक शासन के निर्माण की पृष्ठभूमि में निम्न कारणों की विद्यमानता रहती है।

1. भय के कारण
2. लाभ या सुविधा के विवेकपूर्ण निष्कर्ष के कारण
3. किसी एकीकारी विचार, प्रतीक या भ्रम के कारण
4. सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक विकास के स्तर व आकार में बहुत कुछ समरूपता के कारण

---

1. व्हीयर उद्धृत : पूर्वोक्त पृष्ठ संख्या 517

5. भौगोलिक समीपता के कारण[1]

विश्लेषण करने पर पाते हैं कि इन दोनों प्रकार के कारणों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। यद्यपि अमरीका में संघ निर्माण सम्बन्धी कारकों में सैन्य असुरक्षा प्रमुख थी तथापि विश्व की समस्त संघात्मक व्यवस्थाओं के बारे में यह नहीं कहा जा सकता।

जैसे भारत का एकात्मक राज्य तत्कालीन नेतृत्व के कारण ही संघात्मक व्यवस्था के रूप में व्यवस्थित किया जा सका। निष्कर्षतः इन कारणों में से कोई भी कारण संघात्मक संगठन का प्रेरक बन जाता है। वैसे संघात्मक व्यवस्था को अपनाने का शायद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारण वह इच्छा है, जिसमें पृथक राजनीतिक इकाई के रूप में पूर्ण स्वतन्त्रता के हर संभव लाभ के साथ ही शक्तिशाली, बड़े व महत्त्व वाले राज्य की राजनीतिक व आर्थिक शक्ति व सम्मान की प्राप्ति भी की जा सके।

संघीय व्यवस्था के पीछे 'अनेकों में एक' की स्थापना के उद्देश्य के साथ ही साथ, इन अनेकों में से हर एक को, जहाँ तक संभव हो, अपना पृथक व विचित्र राजनीतिक व सामाजिक अस्तित्व बनाए रखने की शक्तिशाली इच्छा भी कही जा सकती है। संयुक्त राज्य अमरीका (1789), कनाडा (1867), ऑस्ट्रेलिया (1901) व स्विट्जरलैण्ड में संघों की स्थापना से पहले इसमे सम्मिलित इकाईयाँ पृथक राजनीतिक घटक थी, जिनकी अपनी पृथक परम्परायें व स्वार्थ थे।

परन्तु सोवियत रूस (1936) यूगोस्लाविया (1963), जर्मनी व भारत (1950) में पूर्व में एकात्मक व्यवस्था अस्तित्व में थी। यहाँ संघात्मक व्यवस्था की स्थापना के प्रमुख कारण सैन्य सुरक्षा आर्थिक लाभ व राष्ट्रीयताओं की विपुलता कही जा सकती है।

संघवाद के निर्माण की तार्किकता के विवेचन से स्पष्ट है कि संघीय व्यवस्था, स्वतन्त्र व पृथक राजनीतिक इकाइयों में ऐसी सम्बन्ध व्यवस्था स्थापित करती है जिसमें एकात्मक व परिसंघात्मक व्यवस्थाओं के लाभ बहुत कुछ व्यवहार में प्राप्त करने की परिस्थितियाँ प्रस्तुत हो जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तित परिवेश में संघवाद की परम्परागत मान्यताऐं भी नवीन स्वरूप धारण कर रही है। अब संघवाद जड़ता का नहीं, गत्यात्मकता का, गत्यावरोध का नहीं सहयोग का, स्थिरता के स्थान पर लचीलेपन का संकेतक माना जाने लगा है। संघवाद के परम्परागत सिद्धान्त के स्थान पर इनकी नवीन व्याख्याऐं व नये आयाम सामने आये हैं। इन नवीन प्रवृत्तियों को समझने से पहले संघवाद के परम्परागत विचार की विशेषताओं का उल्लेख करना उपयोगी होगा।

---

1. Willian P. Moddox : The Politcal Basis Of Federation : American Political Science Review : 35: Dec. 1941 Pg 1122 – 1124

शुद्ध संघवाद ऐसी व्यवस्था है जिसमें दोनों ही स्तर की सरकारें, सम्पूर्ण संघीय राजनीतिक व्यवस्था के सन्दर्भ में न तो एक दूसरे पर पूर्णतया निर्भर रहती हैं और न ही एक–दूसरे से पूर्णतया स्वतन्त्र रह पाती हैं वर्तमान संघीय राजनीतिक व्यवस्थाओं में कुछ नीति निर्गत (Policy output) केन्द्रीय व राज्यों की सरकारों की ऐसी जटिल अन्तःक्रिया के परिणाम होते हैं जिसमें दोनों ही स्तर की सरकारें, निर्णयों को लेने में चाहें वे किसी भी स्तर की सरकार के अधिकार क्षेत्र से सम्बद्ध हों व उन्हें लागू करने में, बहुत कुछ पारस्परिकता, सहयोग, सहभागिता तथा सद्भाव का प्रदर्शन करती हैं। जबकि, संघवाद की परम्परागत धारणा का संकेत दोनों ही स्तर की सरकारों में अन्तःक्रिया के ऐसे प्रतिमान की ओर है जिसमें प्रत्येक स्तर की सरकार का पृथक अधिकार क्षेत्र और सुनिश्चित स्वतन्त्रता है।

संघवाद एक गत्यात्मक अवधारणा है, जो प्रचलित संघीय व्यवस्थाओं के नवीन परिवेश में उत्पन्न पारस्परिकता के नवीन स्वरूप आधुनिक संघवाद की व्याख्या को अपरिहार्य बना देते हैं। राजनीतिक समाजों में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिवर्तन सरकारों की कार्यविधि को भी प्रभावित करते हैं। ऐसी स्थिति में एक ही राजनीतिक व्यवस्था में कार्यरत केन्द्रीय व प्रादेशिक सरकारें पृथक, स्वतन्त्र व अपने क्षेत्र में सीमित नहीं मानी जा सकती है। यह अवस्था मात्र परिभाषिक व सैद्धान्तिक है, व्यवहारिक नहीं।

अमल रे. के अनुसार "संघवाद की नवीन धारणा के अन्तर्गत संघीय व्यवस्था में दो तरह की सत्ताओं को राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति में सहयोगी बनाया जाता है तथा एक एकीकृत समाज का निर्माण होता है।"[1]

संघवाद के परंपरागत व आधुनिक स्वरूपों का विश्लेषण करने पर संघवाद के तीन प्रतिमान स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। किसी राजनीतिक समाज के परिवेश व विशिष्ट परिस्थितियों के कारण संघात्मक शासन उक्त तीन में से किसी एक प्रतिमान के अन्तर्गत माना जा सकता है। व्यवहारतः तीनों प्रतिमानों की कुछ प्रवृत्तियाँ हर संघात्मक व्यवस्था में देखी जा सकती है। उपरोक्त सन्दर्भों में इन तीन प्रतिमानों का विवेचन अध्ययन में सहायक होगा।

---

1. Amal Ray : Inter Governmental Relations in India – A Study of Indian Federalism : Asia Publication House Bombay 1966 Pg 67

a) सहकारी संघवाद का प्रतिमान

संघीय पद्धति केन्द्रीय व क्षेत्रीय सरकारों के बीच अपने–अपने क्षेत्रों में स्वायत्तशासी (परंपरागत अर्थों में) शक्तियों के विभाजन का समर्थन ही नहीं करती बल्कि इसमें राजनीतिक संगठनों के दो समुच्चयों के बीच सहयोग की भी अपेक्षा की जाती है। यह सहयोग आवश्यक भी है क्योंकि दोनों ही स्तरों की सरकारें एक ही राजनीतिक व्यवस्था से सम्बद्ध होती है जिससे उनके लक्ष्य भी अन्ततः एक समान ही होते हैं।

अतः संघात्मक व्यवस्था के अनेक आयाम होते हैं जो विविधता से युक्त होते हैं तथा अपनी विविधता बनाये रखने की स्वायत्तता के बाद भी परस्पर अन्तः क्षेत्रीय सम्बन्ध या सहयोग अनिवार्य सा कर देते हैं।

के.सी. व्हीयर के अनुसार "अगर हरेक क्षेत्रीय इकाई अपने आपको अपने तक ही सीमित रखती है तो सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था कई मामलों में, इस भिन्न–भिन्न नियम व नियन्त्रण व्यवस्था के कारण नुकसान उठाएगी और प्रादेशिक सरकारों को एक दूसरे के अनुभवों का लाभ न मिलने के कारण कार्यकुशलता कम हो जायेगी। यही कारण है कि हर संघात्मक व्यवस्था में अन्तःसहकारी सहयोग की या तो संविधानों में ही व्यवस्था की जाती है या इस प्रकार के सहयोग की संस्थायें परम्पराओं के रूप में विकसित हो जाती है।"[1]

अमरीका, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा व भारत की संघीय व्यवस्थाओं के अध्ययन से यह निष्कर्ष स्पष्टतः सामने आता है कि संघात्मक व्यवस्था में सहयोग का लक्षण निहित है। ऑस्ट्रेलियाई संघीय प्रणाली के अन्तर्गत राष्ट्रीय प्रधानमंत्री सम्मेलन इसका एक उदाहरण है। यह वार्षिक अधिवेशन हर वर्ष मई मास में होता है, जब राज्यों के प्रधानमंत्री और राष्ट्रीय प्रधानमंत्री सम्मेलन में शामिल होते हैं और सामान्य तथा विशेष हितों के मुद्दों पर विचार विमर्श करते हैं, जिनमें वित्तीय संसाधनों और सम्बन्धों से लेकर संवैधानिक सुधारों तक पर विचार किया जाता है।ऑस्ट्रेलिया में अन्तःप्रादेशिक सम्मेलन, प्रीमियर्स कान्फ्रेन्स तथा ऋण परिषद् के प्रादेशिक सम्मेलन, अमरीका में गर्वनरों के सम्मेलन, कनाडा में डोमेनियन प्रोविन्सियल सम्मेलन आदि केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों के आपसी सहयोग के माध्यम हैं।

---

1. K. C. Wheare : Modern Constitutions : London : Oxford University Press 1966 Pg 227

ए.एच. बिर्च ने भारतीय संघवाद को सहयोगी संघवाद की संज्ञा दी है।[1]

इस प्रकार की व्यवस्था में केन्द्रीय सरकार शक्तिशाली होती है पर राज्य सरकारें अपने क्षेत्र में कमजोर नहीं होती हैं। इस व्यवस्था का प्रमुख लक्षण दोनों प्रकार की सरकारों की एक दूसरे पर निर्भरता है।

सहयोगात्मक संघवाद से यह अभिप्राय है कि हमारा संविधान केन्द्र और राज्यों के परस्पर सहयोग पर अधिक बल देता है। संविधान निर्माताओं ने एक ऐसी संघ प्रणाली को जन्म दिया जिसमें केन्द्र राज्यों को उचित निर्देश दे सके और आवश्यकता पड़ने पर राज्यों के विधानमण्डल ओर मन्त्रीमण्डल को भी भंग कर सकें।

भारत में संघात्मक व्यवस्था, सुदृढ़ पारस्परिकता, आपसी विचार विनिमय तथा दोनों स्तर की सरकारों में निरन्तर सम्पर्क की स्थापना का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करती है। भारतीय संविधान एक सहकारी संघ की स्थापना करता है, जिसके अन्तर्गत अनेकों ऐसे साधन व्यवस्थित किये गये हैं, जिनसे विभिन्न राज्य सरकारों में परस्पर तथा केन्द्रीय व राज्य सरकारों की अन्तःक्रिया की प्रक्रिया सम्पन्न हो सके,

वित्त आयोग, अन्तःराज्यीय समीतियाँ, क्षेत्रीय परिषदें, योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद् इत्यादि ऐसे माध्यम हैं जो भारतीय संघात्मक व्यवस्था में पारस्परिक सहयोग की सुदृढ़ता का प्रतीक है। 'ग्रेनविल ऑस्टिन ने इन्हीं व्यवस्थाओं के कारण भारतीय संघ को सहकारी संघवाद के नाम से संबोधित किया है।'[2] उपरोक्त सन्दर्भों में भारतीय संविधान के अनु.1 की भाषा निश्चित रूप से विशिष्ट है, जिसमें कहा गया है– "भारत राज्यों का एक संघ है।"[3]

---

1. ए. एच. बिर्च: उद्धृत डॉ. पुखराज जैन व डॉ. बी. एल. फाड़िया : भारतीय शासन व राजनीति : पृष्ठ संख्या 162
2. ग्रेनविल ऑस्टिन : The Indian Constitution Cornerstone of A Nation : Newyork : Oxford University Press : Pg 186
3. डी. डी. बसु : पूर्वोक्त पृष्ठ संख्या 59

वर्तमान राजनीतिक व्यवस्थाओं की जटिलताओं में संघात्मक व्यवस्था की यह सहयोग की प्रवृत्ति ही प्रचलित संघीय व्यवस्थाओं को टूटने से बचा सकती है यह व्यवस्था स्वायतत्ता व पृथकता के साथ पारस्परिकता का सामंजस्य बैठाने में सहायक है। इस प्रकार के सहअस्तित्व के ढाँचे में आर्थिक विकास की आवश्यकतायें, सुरक्षा, अर्न्तराष्ट्रीय बाध्यतायें आदि प्रेरक तत्त्व हैं।

b) सौदेबाजी वाले संघवाद का प्रतिमान

संघात्मक शासन में विभिन्न सरकारों का गठन राजनीतिक दलों द्वारा होता है। इन दलों में मौलिक व आधारभूत सिद्धान्तों पर सामान्य सहमति के कारण राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों की राजनीतिक खेल के मोटे नियमों पर सहमति, इन दलों को संघीय व्यवस्था की विभिन्न सरकारों के बीच संयोजनकारी शक्ति बना देती है। राजनीतिक दल प्रणाली अमरीका व ऑस्ट्रेलिया की संघीय व्यवस्था का आधारभूत तत्त्व है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्थापित संघात्मक व्यवस्थाओं में, विशेषकर एशिया और अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रों में राजनीतिक दल राष्ट्रीय व क्षेत्रीय स्तर पर संगठित होने लगे। संघात्मक व्यवस्था में प्रादेशिक स्तर पर सत्ता प्राप्ति की संभावनाओं व अवसरों के कारण अनेक दल राष्ट्रीय हितों के प्रतिकूल स्थानीय हितों पर आधारित सौदेबाजी की राजनीति का सहारा लेते हैं। क्षेत्रीय स्तर पर उदित दलों के कारण संभव है कि संघीय सरकार पर संघ की इकाइयों का प्रभुत्व स्थापित हो जाये। इस अवस्था में केन्द्रीय व प्रादेशिक सरकारों में सौदेबाजी संभव है। वास्तव में यह सौदेबाजी पारस्परिक सहयोग प्राप्ति का एक प्रयास है। भारत की संघात्मक व्यवस्था में ऐसे अनेक अवसर आये हैं, जब राज्यों में सत्तारुढ़ क्षेत्रीय दलों ने अपने राजनीतिक हितों की पूर्ति के लिये सौदेबाजी का सहारा लिया। इसीलिये मॉरिस जोन्स ने भारत की संघीय व्यवस्था को सौदेबाजी का संघवाद कहा है।[1]

मॉरिस जोन्स के अनुसार – "औपचारिक रूप से संघीय ढाँचे से सम्बद्ध होने के नाते हमारी संवैधानिक प्रणाली में केन्द्रीय व राज्य सरकारों के बीच सौदेबाजी की प्रक्रिया की आवश्यकता रखी गई है। जिसके सहयोग अनुभव और अनुनय विनय को आमतौर पर स्वीकृति प्राप्त मानकों के साक्ष्यांकन में और केन्द्रीय व राज्य सरकारों के बीच अन्तःक्रिया के सामान्य प्रक्रियात्मक प्रतिमानों के लिये इस्तेमाल किया गया है।"[2]

---

1. मॉरिस जोन्स : गवर्नमेंट एण्ड पोलिटिक्स ऑफ इण्डिया : 1971 पृष्ठ संख्या 150
2. पूर्वोक्त 150

यह सौदेबाजी अव्यक्त रूप से विभिन्न संस्थाओं/एजेंसियों व प्रक्रियाओं के परिचालन में देखी जा सकती है। इस प्रकार की प्रमुख संस्थायें हैं योजना आयोग, राष्ट्रीय विकास परिषद्, अन्तःराज्यीय परिषदे् आदि।

c) एकात्मक संघवाद

सहकारी संघवाद व सौदेबाजी संघवाद के विपरीत तृतीय प्रतिमान एकात्मक संघवाद के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को प्रादेशिक सरकार के सापेक्ष वरीयता प्रदान की गई है। के.सी. व्हीयर का भी मानना है कि– "क्षेत्रीय सरकारों की तुलना में केन्द्रीय या राष्ट्रीय सरकारों की महत्ता अधिकाधिक बढ़ी है, क्योंकि उनका आरम्भ शून्य से हुआ और क्योंकि उन्हें ऐसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर नियंत्रण प्रदान किया गया जिनसे अधिकांश सरकारों को निपटना पड़ता है।"[1]

संघात्मक व्यवस्था वास्तव में व्यापक व्यवस्था का एक ऐसा प्रतिमान है, जिसमें अनेक स्तरों पर विभिन्न उपव्यवस्थायें विद्यमान हैं। इस कारण निर्णय लेने व निर्णयों को लागू करने की प्रक्रिया केवल केन्द्रीय व राज्य सरकारों की पारस्परिक सहभागिता पर ही निर्भर नहीं करती है अपितु इस तथ्य पर भी आधारित होती है कि केन्द्रीय सरकार राजनीतिक समाज के राष्ट्रीय लक्ष्यों की पूर्ति की क्षमताओं, साधनों और संभावनाओं में राज्यों की सरकारों से बहुत आगे होती हैं।

व्यवहारगत: राजनीतिक जटिलताओं के कारण राज्य सरकारें, अपना पृथक व स्वतन्त्र क्षेत्र बनाये नहीं रख पाती हैं। एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि व्यवहार में आज संघात्मक शासन व्यवस्थायें अनेक तत्त्वों से इतनी अधिक प्रभावित रहती हैं कि अनेक बार केन्द्र व राज्यों की सरकारों का सीमांकन समाप्तप्राय हो जाता है। ऐसी अवस्था में संघवाद के ऐसे प्रतिमान को एकात्मवादी कहना उपयुक्त माना जा सकता है।

राष्ट्रीय सरकारों के महत्त्व में वृद्धि का दूसरा प्रमुख कारण यह है कि वर्तमान वैश्विक सन्दर्भों में राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्थाओं के ऊपर अर्न्तराष्ट्रीय दबाव व प्रभाव इतने व्यापक हैं कि संघीय व्यवस्थाओं की प्रादेशिक सरकारें स्वतः ही केन्द्रीय सरकार के अधिकार क्षेत्र में वृद्धि को स्वीकारती हैं।

इस संबंध में दूसरा महत्त्वपूर्ण आयाम यह है कि विश्व में प्रचलित परस्पर विरोधी विचारधाराओं की प्रतिस्पर्धा के कारण राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न स्थायी बन गया है। प्रतिस्पर्धा के कारण उत्पन्न वैचारिक टकराव भी केन्द्रीय सरकारों के अधिकार क्षेत्र में वृद्धि का महत्त्वपूर्ण साधन बन गये हैं।

---

1. K. C. Wheare : Ibid : pg 238

अनुदान की राजनीति का केन्द्रीय सरकारों को शक्तिशाली बनाने में बहुत योगदान देखा गया है। राज्यों के साधन सीमित होते हैं और आर्थिक विकास की आवश्यकताओं की बाध्यता के कारण वे केन्द्रीय अनुदान पर आश्रित रहती हैं, दूसरी ओर केन्द्र के वित्तीय साधन व्यापक होते हैं और केन्द्रीय सरकारें अनुदान राजनीति का प्रयोग राज्यों की सरकारों पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण स्थापित करने के लिये करती हैं।

समय की आवश्यकताओं के अनुसार जिस प्रकार राजनीतिक संस्थाओं का अनुकूलन होता है उसी प्रकार संघात्मक व्यवस्था में केन्द्र राज्य सम्बन्ध भी बदलते रहकर व्यवस्था की सजीवता बनाये रखने में योगदान देते हैं। समय के साथ–साथ संघात्मक व्यवस्था में एकात्मक तत्त्वों का समावेश भी इस प्रक्रिया का एक अंग है और यही एकात्मक संघवाद की स्थापना का आधार भी है।

एक ही राजनीतिक व्यवस्था के अर्न्तगत केन्द्रीकरण व विकेन्द्रीकरण के समन्वय का सर्वोत्तम साधन संघात्मक व्यवस्था ही प्रस्तुत करती है। "यह सच है कि संघीय प्रणाली के अपने गुण व दोष हैं परन्तु कई अन्तर्निहित कठिनाइयों के बावजूद यह उन्हीं देशों के लिये अधिक उपयुक्त हैं जहाँ जातीय, धार्मिक, भाषाई, सांस्कृतिक कारकों के बारे में विभिन्नता मौजूद है और /या उनका विशाल क्षेत्रफल है। ऐसे देश में केवल संघीय प्रणाली ही लोगों की मुख्य समस्याओं के लिये हल प्रस्तुत करती है और वे ऐसी निरंकुश केन्द्रीयकृत सरकार के उदय से कम खतरा महसूस करते हैं जो उनके अधिकारों को हड़प लेगी।"[1]

1.6 क्षेत्रीयतावाद की अवधारणा

क्षेत्रीयतावाद की एक औपचारिक संस्था के रूप में अभिव्यक्ति द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् हुई जिसने राजनीतिक विचारकों का ध्यान आकर्षित किया। अपने प्रारंभिक दौर से ही क्षेत्रीयतावाद निरन्तर चर्चा का विषय रहा है। अपने अन्तर्निहित तात्विक प्रकृति तथा सीमित सामर्थ्य के कारण आलोचना का पात्र रहा। इसके बावजूद 21वीं शताब्दी के प्रारंभ से ही 'क्षेत्रीयतावाद' राजनीति विज्ञान तथा अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के शब्दकोष में भलीभांति अपना स्थान बना चुका था। संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में अपना स्थान बनाने के साथ 2003 में अपनाई गई यूरोपियन यूनियन की सुरक्षा रणनीति में उस पर पर्याप्त बल दिया गया है।

1. James Bryce : The American Common Wealth : Volume I Chapter 29 – 30

क्षेत्रीयतावाद से तात्पर्य एक देश में या देश के किसी भाग में उस छोटे से क्षेत्र से जुड़े उन लोगों की भावना से है जो आर्थिक, भौगोलिक, सामाजिक आदि कारणों से अपने क्षेत्र विशेष के लिये, अपने पृथक अस्तित्व के लिये जागरुक हैं तथा अपने क्षेत्र विशेष के लिये आर्थिक सामाजिक तथा राजनैतिक शक्तियों में वृद्धि चाहते हैं।

क्षेत्र शब्द अनेकार्थी है। मूलतः किसी सांस्कृतिक समानता से जुड़े हिस्से को क्षेत्र कहा जाता है। किसी भौगोलिक क्षेत्र को भी क्षेत्र के आधार पर संबोधित किया जा सकता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और अपने निवास के आस–पास की भूमि से उसका भावात्मक संबंध स्थापित हो जाता है और कालान्तर में अपने पूरे क्षेत्र के प्रति उसकी निष्ठा विकसित हो जाती है, इस दृष्टि से क्षेत्र एक समाजशास्त्रीय अवधारणा है जिसे विविध सामाजिक हितों की अभिव्यक्ति की धुरी कहा जा सकता है। "A region is a profound sociological fact neglected in its being treated as the nucleous of social aggregation for multiple purposes".[1]

किसी भी भू–भाग को क्षेत्र कहलाने के लिये कतिपय तत्त्वों का होना आवश्यक है, किन्तु आज तक उन तत्त्वों का ठीक तरह से निर्धारण नहीं हो सका। यदि भौगोलिक रूप से निश्चित किसी स्थान पर कुछ प्रक्रियायें तथा धारणायें समाज के अन्य भागों से भिन्न हों और लगातार पर्याप्त समय से जारी हो तो उस भाग को एक अलग क्षेत्र कहा जा सकता है। ये प्रक्रियायें और धारणायें भौगोलिक, धार्मिक, भाषायी, रीति रिवाज संबंधी, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास की स्थिति, रहन–सहन के ढंग और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि इत्यादि पर आधारित हो सकती है परन्तु किसी भी क्षेत्र के पृथक् स्वरूप के लिये प्रमुख बात वहाँ के लोगों में आपसी समानता और एकरूपता तथा अन्य लोगों से अलगाव की भावना है। इस प्रकार अनेक तत्त्वों जैसे भूगोल, जलवायु, धर्म, भाषा, रीति–रिवाज, राजनीतिक और आर्थिक विकास, ऐतिहासिक अनुभव, रहन–सहन के तरीके आदि की अन्तःक्रियाओं से किसी क्षेत्र (Region) का निर्माण हो सकता है।

द्वितीय महायुद्ध के अंत के साथ तथा आर्थिक वैश्वीकरण की ओर प्रवृत्ति ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की जटिलता में वृद्धि के साथ 'क्षेत्र' की अवधारणा को भी आगे बढ़ाया। वैश्विक दबावों, वैश्विक बाजारों और वैश्विक मीडिया की दुनिया में सुरक्षा और समृद्धि तेजी से एक प्रभावी बहुआयामी व्यवस्था पर निर्भर होती जा रही है।

---

1. Dr. Shri Ram Maheshwari : State Government In India : Pg 185

इन ताकतों ने वैश्विक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय संदर्भों के बीच के संरचनात्मक संबंधों को पुनर्परिभाषित किया है। यही नहीं वे ताकतें क्षेत्रीयतावाद के अध्ययन के सैद्धांतिक आधार को पुनर्परीक्षण हेतु प्रेरित भी करती हैं। क्षेत्रीयतावाद की छवि प्रायः पारम्परिक व भौगोलिक अवधारणा पर आधृत है—जिसका अनुमान एक स्थायी, सीमाबद्ध, महाद्वीपीय इकाइयों से है। एक ओर एक समर्थ अन्तर्राष्ट्रीय समाज का विकास, सुसंचालित अर्न्तराष्ट्रीय संस्थायें और एक विधि आधारित अर्न्तराष्ट्रीय व्यवस्था परिलक्षित है तो दूसरी ओर क्षेत्रीयतावाद का विस्तार समानान्तर प्रक्रिया के रूप में अवस्थित है।

20वीं सदी में यूरोपियन समुदाय में क्षेत्रीयतावाद के उदय को देखा गया तथा कालान्तर में यूरोपियन यूनियन और नार्थ अटलांटिक संधि के प्रतिमान आये जिनकी व्यापक सीमायें अन्यत्र भी थीं। 21वीं सदी में अफ्रीकन यूनियन की छत्रछाया में अफ्रीकी राज्यों ने और अधिक विस्तृत तथा एकीकृत योजनायें पोषित कीं तथा अपने मित्र राज्यों से पृथक मार्ग अपनाया।

मध्यपूर्व के हाल के संगठनों में उनके संप्रभुताप्रिय चार्टरों के बावजूद तथाकथित अरेबियन उभार की घटनाओं के प्रत्युत्तर में हस्तक्षेपकारी नीतियों के अनुसरण को देखा जा चुका है। विश्वव्यापी नेतृत्व करने वाले राज्यों को भी क्षेत्रीयतावाद की पदोन्नति में सक्रिय देखा जा सकता है और विश्व के अधिकांश हिस्सों में अनेक राज्य एक से अधिक क्षेत्रीय संगठनों के सदस्य हैं।

क्षेत्रीय संगठनों का संधि एवं चार्टर आधारित होना उन्हें अर्न्तराष्ट्रीय कानून में औपचारिक स्तर प्रदान करता है। इस स्तर में समीक्षात्मक रूप से वृद्धि हुई है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा क्षेत्रीय संगठनों को मान्यता तथा अन्य बहुआयामी संगठन जैसे WTO (विश्व व्यापार संगठन) ने क्षेत्रीयतावाद के उभार एवं दुरुह प्रकृति तथा लक्षणों को स्पष्ट किया है। यही नहीं क्षेत्रीय संगठन अपनी वैधता, विशिष्ट क्षेत्रीय नियमों, अभ्यासों एवं उनके क्रियान्वयन से भी प्राप्त करते हैं जैसे अरब लीग अपनी वैधता एक समृद्ध सभ्यता एवं इतिहास पर आधृत अरबवाद के माध्यम से प्राप्त करती है। दक्षिण पूर्वी एशिया अपनी संरचना आसियान (ASEAN) के रूप में जाना जाता है तथा अभी भी पूर्वी एशियाई क्षेत्रीयतावाद की अवधारणा का विकास कर रहा है।

नवीन क्षेत्रीयतावाद के उदय के बाद विशेषतः शीतयुद्ध से क्षेत्रीयतावाद के प्रारंभिक विचारों का विस्तार तथा दोहराव दोनों ही होता रहा है। इसके अन्तर्गत नवीन संगठनों, अभिकर्ताओं तथा ज्वलन्त मुद्दों वाले क्षेत्रों को समाहित करना शामिल है। क्षेत्रीयतावाद की मूल अवधारणा जिसका तात्पर्य सीमित भौगोलिक क्षेत्रों की सदस्यता के साथ राज्य आधारित संगठनों की नीतियों एवं उनके क्रियान्वयन से है। यह सब मात्र विद्यमान संगठनों के विकास की निरंतरता तथा दुरुहता एवं

उनकी वैधानिक व्यवस्था के द्वारा प्रदर्शित नहीं किया गया अपितु उनके द्वारा नवीन एवं उभरती शक्तियों को साथ लेने, विश्व रंगमंच पर दिखाई देने की स्थायी नीति के उपकरण के रूप में प्रयोग करना तेजी से बढ़ा तथा इसके प्रभाव का प्रदर्शन क्षेत्रीय एवं वैश्विक दोनों रंगमंचों पर हुआ। इस संदर्भ में क्षेत्रीयतावाद के प्रति चीन के दृष्टिकोण को स्पष्टतः देखा जा सकता है (प्रारंभ में छलपूर्ण तथा वर्तमान में एक सक्रिय खिलाड़ी के रूप में)। अनेक क्षेत्रीय मंच जैसे आसियान (ASEAN) अथवा शंघाई सहयोग संगठन (SCO) में तथा खाड़ी सहयोग समिति (Gulf Co-operative Committee) के माध्यम से अरब उभार का उदय क्षेत्रीय प्रत्युत्तर माना जाता है। यह सब क्षेत्रीयतावाद के बढ़ते महत्त्व एवं बहुआयामी प्रवृत्ति को दर्शाता है तथा विश्व राजनीति में अर्न्तराष्ट्रीय व्यवस्था को नियमित करने तथा समकालीन राजनीति में उसके महत्त्व को रेखांकित करता है।

भारतीय सन्दर्भों में क्षेत्रीयतावाद

क्षेत्रवाद आज भारतीय सामाजिक जीवन की एक अत्यन्त व्यापक घटना है। आधुनिक युग में संचार व्यवस्था के नये साधनों, अंग्रेजी शासन व्यवस्था के तरीके और नीतियों, उपनिवेशवाद से उत्पन्न समस्याओं और स्वतन्त्रता के पश्चात् आधुनिकीकरण को अत्याधिक महत्त्व और तीव्रता प्रदान करने की प्रक्रियाओं ने क्षेत्रवाद को अधिक सक्रियता प्रदान की है।

भारत भौगोलिक दृष्टि से एक विशाल देश है। उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान आदि विशाल राज्य इकाईयाँ हैं जो पृथक–पृथक भौगोलिक विशेषताओं से युक्त हैं जो क्षेत्रवाद की भावना को पोषण प्रदान करती है, इसी प्रकार राज्यों के मध्य भाषा व संस्कृति की विविधता भी एक महत्त्वपूर्ण कारक हैं जो क्षेत्रवाद को प्रबल आधार प्रदान करता है। द्रविण मुनेत्र कड़गम के उद्गम का आधार भी यही कारक रहा है। जाति के आधार पर भी क्षेत्रियता की प्रवृत्ति बढ़ी है। जिन क्षेत्रों में किसी एक जाति की प्रधानता रही वहाँ क्षेत्रीयतावाद की प्रवृत्ति दिखायी देती है। हरियाणा व महाराष्ट्र में क्षेत्रीयता के प्रसार में जाति प्रभावक तत्त्व रहा है। उक्त कारकों के अतिरिक्त कुछ परिस्थितिजन्य कारक भी राज्यों के मध्य पृथकता की भावना को प्रश्रय देते हैं। इनमें आर्थिक कारक प्रमुख हैं। भारत के कुछ राज्यों के कुछ क्षेत्रों में अधिक आर्थिक विकास हुआ तथा कुछ क्षेत्र पिछड़ गये। परिणामतः पिछड़े क्षेत्रों में असन्तोष फैलने लगा। उदाहरण स्वरूप आन्ध्र प्रदेश में तेलंगाना, राजस्थान में दक्षिणपूर्वी राजस्थान, महाराष्ट्र में विदर्भ, उत्तर प्रदेश में पूर्वांचल, बुन्देलखण्ड आदि क्षेत्रों में समुचित विकास न हो पाने के कारण पृथकता की भावना को प्रसार मिला है।

"आर्थिक स्त्रोत कम हैं और मांगों में निरन्तर वृद्धि हो रही है। मांग और उत्पादन में अंतर का एक प्रभाव यह है कि व्यक्तित्व समुदाय, वर्ग और क्षेत्र सभी स्तरों पर प्रतिस्पर्द्धा होती है।"[1]

राजनैतिक कारणों से भी प्रादेशिकता की मांग बढ़ी है राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु राजनीतिज्ञ इस प्रकार की मांगों को समर्थन प्रदान करते हैं। रजनी कोठारी ने अपनी पुस्तक 'पॉलिटिक्स इन इण्डिया' में क्षेत्रीयतावाद की चर्चा करते हुये लिखा है कि देश के सामने एक खतरा राज्यों के संघ से अलग होने का था।

कुछ लोगों ने आशंका प्रकट की थी कि प्रान्तीयता की भावना या प्रदेश के लिये अधिक अधिकार या स्वायत्तता की मांग बढ़ती गई तो इससे देश अनेक छोटे–छोटे स्वतन्त्र राज्यों में बंट जायेगा। राज्यों के भीतर विशिष्ट क्षेत्रों के अलगाव के आन्दोलन उठ रहे हैं। दबे हुए वर्गों और समूहों के राजनीतिक क्षेत्र में आने से अधिकार के लिये उनकी आकांक्षा से नई समस्याऐं खड़ी हो रही हैं।[2]

क्षेत्रीयतावाद का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष पृथक राज्य की मांग रही है। आर्थिक पिछड़ेपन, जाति, भाषा, धर्म को लेकर विभिन्न क्षेत्रों द्वारा पृथक राज्य की मांग समय–समय पर उठायी गई तथा इस मांग पर आधारित क्षेत्रीय आन्दोलनों का प्रारम्भ हुआ।

इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत 1970 में हिमाचल प्रदेश, जनवरी 1972 में त्रिपुरा व मणिपुर तथा 1987 में मिजोरम, अरुणाचल प्रदेश व गोवा को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान किया गया। वहीं 1998 में बिहार, मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश राज्यों का पुर्नगठन किया गया। 2014 में तेलंगाना राज्य का गठन इसका नवीनतम उदाहरण है। नये राज्यों के गठन के साथ–साथ अर्न्तराज्यीय झगड़े भी क्षेत्रियतावाद के एक अन्य परिणाम के रूप में सामने आये हैं।

मध्यप्रदेश, गुजरात और राजस्थान के बीच नर्मदा नदी के जल के वितरण को लेकर उत्पन्न विवाद, राजस्थान और पंजाब के बीच भाखड़ा नंगल बांध से उत्पन्न बिजली बँटवारे को लेकर विवाद, तमिलनाडु व कर्नाटक के बीच कावेरी के जल वितरण का विवाद, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक, पंजाब तथा हरियणा के बीच सीमा विवाद अन्तर्राज्यीय झगड़ों के मुख्य उदाहरण हैं, जिनमें कई बार क्षेत्रीयता की संकुचित मनोवृत्ति ने उग्र रूप धारण कर लिया।

---

1. रजनी कोठारी : पॉलिटिक्स इन इण्डिया : Pg 330 – 332
2. पूर्वोक्त

यह क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति का एक व्यापकतर रूप ही है कि विगत कुछ वर्षों से भारतीय संविधान के संघवाद से सम्बन्धित प्रावधानों का पुनर्निरीक्षण किये जाने की मांग प्रबल होने लगी है।

राज्यों की ओर से अधिक स्वायत्तता व केन्द्र पर अत्याधिक निर्भरता को कम करने की इच्छा समय–समय पर व्यक्त की जाने लगी है। इस इच्छा की परिणिति समय–समय पर केन्द्र व राज्यों के बीच हुए विवादों के रूप में होती रही है। केन्द्र से अधिकतम वित्तीय स्त्रोतों को प्राप्त करने के लिये भी राज्यों ने केन्द्र के विरुद्ध संघर्ष का रुख अपनाया। राज्यों द्वारा केन्द्र की नीतियों का विरोध करना, केन्द्र के निदेशों का पालन न करना क्षेत्रीयतावाद की नीति के द्योतक हैं।

वैचारिक दृष्टिकोण में उत्तर–दक्षिण का भेद स्पष्ट दिखाई देता है। दक्षिण के चार राज्यों तमिलनाडु, आन्ध्रप्रदेश, केरल व कर्नाटक में जहाँ द्रविड़ भाषा बोली जाती हैं, वहाँ सामान्य विचार यह है कि राजनीतिक, आर्थिक व सांस्कृतिक दृष्टि से उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत को वे लाभ नहीं मिले जो मिलने चाहिए थे। क्षेत्रीयता की इस मनोवृत्ति के कारण विभिन्न चुनावों में उत्तर तथा दक्षिण के मताचरण में भी काफी अन्तर पाया गया।

स्वतन्त्रता के बाद भारतीय जनमानस में नवीन आकांक्षाएँ उठने लगीं। पंचवर्षीय योजनायें राष्ट्र के विकास के साथ–साथ गरीबी और आर्थिक विषमता का भी कारण बनी। इस स्थिति का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय एकता और हितों की अपेक्षा क्षेत्रीयतावाद को बढ़ावा मिलने लगा। असन्तोष के इस वातावरण मे विभिन्न वर्गों द्वारा शक्ति के लिये संघर्ष का प्रारम्भ हुआ। ऐसे नवीन राजनीतिक दलों का उदय होने लगा, जो कि क्षेत्रीय हितों को लेकर शक्ति अर्जित करने लगे।

क्षेत्रीयता का भारतीय राजनीति की शैली पर काफी प्रभाव पड़ा तथा आन्दोलनात्मक राजनीति को बढ़ावा मिला। क्षेत्रीय आन्दोलनों को चलाने के लिये आर्थिक विषमता, धर्म, जाति और भाषा का सहारा लिया गया। यथार्थ में क्षेत्रीयता सम्पूर्ण रूप से नकारात्मक अवधारणा नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि संघर्षात्मक प्रादेशिकता की भावना को समाप्त कर उदार सहयोगी प्रादेशिकता की भावना का प्रसार हो।

डॉ. रशीदउद्दीन खां ने क्षेत्रीयतावाद के सकारात्मक पक्ष की चर्चा करते हुये लिखा है कि यह धारणा गलत साबित हुई कि क्षेत्रीयतावाद के कारण भारतीय संघ छिन्न–भिन्न हो जाएगा।[1]

---

1. डॉ. रशीदउद्दीन खान : दी रीजनल डाइमेन्शन सेमिनार 1974 : Pg 169

अपितु मॉरिस जोन्स का यह मत अधिक सही साबित हुआ कि क्षेत्रीयतावाद या उप–राष्ट्रवाद में सह अस्तित्व संभव है। वस्तुतः भारत में क्षेत्रवाद सामान्यतः पृथकतावादी नहीं है, क्षेत्रवाद का लक्ष्य केवल क्षेत्र अथवा समुदाय विशेष के लिये अधिक सुविधायें प्राप्त करना है, इसका अनिवार्य अर्थ यह नहीं है कि वह अन्य क्षेत्रों के विकास अथवा राष्ट्र की अखण्डता के विरुद्ध है, बल्कि एक सीमा तक इस प्रकार के क्षेत्रवाद ने भारत के विकास को गति प्रदान की है।

अनेक योजनाएँ व कार्यक्रम क्षेत्रीय दबावों के कारण तीव्र हुए हैं तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, पंजाब और हरियाणा में विकास की गति इसका प्रमाण है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि भारत जैसे विशाल, विविधतापूर्ण और लोकतांत्रिक देश में क्षेत्रवाद व उपक्षेत्रवाद स्वाभाविक अवधारणायें है। पूंजीवादी व्यवस्था पर आधारित विकास की प्रक्रिया उक्त अवधारणाओं के विकास को संगठित और सक्रिय रूप प्रदान करती है ।

यदि स्त्रोतों के बँटवारें, विकास की गति और विभिन्न समुदायों की आकांक्षाओं को कुछ सीमा तक नियन्त्रित किया जाये तो क्षेत्रवाद हाानिकारक न होकर एक सामान्य संघीय प्रक्रिया तक ही सीमित रहता है और विभिन्न अल्पसंख्यकों तथा क्षेत्रीय वर्गों को राजनीति में भागीदारी की संतुष्टि प्रदान करता है। भारत में क्षेत्रीय दलों का उद्‌भव तथा विकास इस तथ्य की पुष्टि करता है।

भारत में विभिन्न क्षेत्रीय दलों का उदय अलग–अलग समय पर, पृथक–पृथक कारणों से व पृथक स्थानों पर हुआ। इनकी विचारधारा व कार्यप्रणाली भी स्वाभाविक रूप से भिन्न रही। भारत के विभिन्न क्षेत्रीय दलों का विश्लेषणात्मक विवेचन निम्न है–

क्षेत्रीय दलों के विकास क्रम को निम्न तालिका के माध्यम से समझा जा सकता है–

क्षेत्रीय दलों के विकास क्रम

तालिका संख्या 2

क्रम सं.	**दल का नाम**	**राज्य**	**वर्ष**
1.	शिरोमणि अकाली दल	पंजाब	1920
2.	अखिल भारतीय मजलिस–ए–इतेहादुल मुस्लिमीन	हैदराबाद, आन्ध्रप्रदेश	1927
3.	जम्मू कश्मीर नेशनल कान्फ्रेंस	जम्मू कश्मीर	1932
4.	अखिल भारतीय फॉरवर्ड ब्लॉक	पं. बंगाल	1939

5.	रिवोल्यूशनरी समाजवादी दल	पं. बंगाल	1940
6.	इण्डियन यूनियन मुस्लिम लीग	केरल	1948
7.	द्रविण मुनेत्र कणगम	पुंडुचेरी, तमिलनाडु	1949
8.	मिजो नेशनल फ्रण्ट	मिजोरम	1959
9.	महाराष्ट्रवादी गोमांतक पार्टी	गोआ	1963
10.	शिवसेना	महाराष्ट्र	1966
11.	ऑल इण्डिया द्रविड़ मुनेत्र कड़गम	पुंडुचेरी, तमिलनाडु	1972
12.	झारखण्ड मुक्ति मोर्चा	झारखण्ड	1972
13.	मिजोरम पीपुल्स कांफ्रेन्स	मिजोरम	1972
14.	केरल कांग्रेस (M)	केरला	1979
15.	तेलगुदेशम पार्टी	आन्ध्र प्रदेश	1982
16.	असम गण परिषद	असम	1985
17.	ऑल झारखण्ड स्टूडेन्ट्स यूनियन	झारखण्ड	1986
18.	पीपुल्स पार्टी ऑफ अरुणाचल	अरुणाचल प्रदेश	1987
19.	पटली मक्कल काची	पुंडुचेरी	1989
20.	समाजवादी पार्टी	उत्तर प्रदेश	1992
21.	सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट	सिक्किम	1993
22.	राष्ट्रीय लोक दल	उत्तर प्रदेश	1996
23.	बीजू जनता दल	उड़ीसा	1997
24.	बोडोलैण्ड पीपुल्स फ्रण्ट	आसाम	
25.	राष्ट्रीय जनता दल	बिहार, झारखण्ड	1997
26.	मिजोरम नैशननलिस्ट पार्टी	मिजोरम	1997

27.	ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस	अरुणाचल प्रदेश यू.पी. मणिपुर पं बंगाल	1998
28.	जम्मू–कश्मीर पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी	जम्मू कश्मीर	1998
29.	इण्डियन नैशनल लोकदल	हरियाणा	1999
30.	जनता दल (यू.)	बिहार	1999
31.	जनता दल सेक्यूलर	कर्नाटक, केरल	1999
32.	लोक जनशक्ति पार्टी	बिहार	2000
33.	तेलंगाना राष्ट्र समिति	आन्ध्र प्रदेश	2001
34.	नागा पीपुल्स फ्रण्ट	मणिपुर, नागालैण्ड	2002
35.	ऑल इण्डिया यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रण्ट	आसाम	2004
36.	डी.एम. के.	तमिलनाडु	2005
37.	झारखण्ड विकास मोर्चा	झारखण्ड	2006
38.	महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना	महाराष्ट्र	2006
39.	हरियाणा जनहित कांग्रेस	हरियाणा	2007
40.	पीस पार्टी ऑफ इण्डिया	उत्तर प्रदेश	2008
41.	वाई.एस.आर. कांग्रेस पार्टी	आन्ध्र प्रदेश	2010
42.	ऑल इण्डिया एन.आर. कांग्रेस	पुंडुचेरी	2011

इस प्रकार क्षेत्रीय दलों का उदय अलग–अलग स्थान व समय पर तथा पृथक–पृथक परिस्थितियों में हुआ। स्वाभाविक था कि इनके वैचारिक आधार भिन्न थे, परन्तु एक तथ्य जो इन सभी दलों के उदय के सम्बन्ध में समान रहा वह यह कि सभी दलों का जन्म जन–आन्दोलन के माध्यम से हुआ। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय दलों के उदय के अन्य कारण भारतीय संघात्मक व्यवस्था में केन्द्र राज्य सम्बन्ध थे भारतीय संविधान में संघ शासन के अन्तर्गत सुदृढ़ केन्द्र की स्थापना की

गई है। केन्द्र व राज्यों में अलग–अलग दलों की सरकारें बन सकती हैं। संवैधानिक प्रश्नों पर विवाद की स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार है कि वह अंतिम निर्णय दे। इन व्यवस्थाओं के बाद भी केन्द्र–राज्य सम्बन्धों में कुछ ऐसे विवाद आये जो क्षेत्रीय दलों की स्थापना का आधार बने। उदाहरण के लिये द्रविड़ मुनेत्र कड़गम के शक्ति–संचय का कारण हिन्दी भाषा सम्बन्धी विवाद रहा, वहीं अकाली दल की शक्ति का आधार राज्यों को अधिक स्वायतत्ता दिये जाने की मांग थी, आन्ध्र प्रदेश में केन्द्र द्वारा बार–बार मुख्यमंत्री बदले जाने की नीति के विरोध स्वरूप तेलगुदेशम पार्टी का जन्म हुआ।

उदय सम्बन्धी कारणों की विविधता के आधार पर तीन प्रकार के क्षेत्रीय दल अस्तित्व में आये। पृथम श्रेणी के अन्तर्गत वे दल आते हैं जो वास्तव में जाति, धर्म, क्षेत्र या सामुदायिक हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके प्रमुख उदाहरण द्रविड़, मुनेत्र कड़गम (तमिलनाडु), अकाली दल (पंजाब), नेशनल कांफ्रेंस (जम्मू कश्मीर), शिवसेना (महाराष्ट्र), झारखण्ड पार्टी (बिहार) तथा उत्तर पूर्व में कुछ आदिवासी संगठन जैसे नागालैण्ड नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी, मिजो नेशनल फ्रण्ट आदि हैं।

दूसरे प्रकार के क्षेत्रीय दल वे हैं जो किसी समस्या विशेष को लेकर राष्ट्रीय रह सके हैं। इस प्रकार के दलों में भारतीय क्रान्तिदल बंगला कांग्रेस, उत्कल कांग्रेस, केरल कांग्रेस, तेलंगाना प्रजा समिति, लोकदल (रा) इत्यादि सम्मिलित किये जा सकते हैं।

तीसरे प्रकार के दल वे हैं जो विचारधारा तथा लक्ष्यों के आधार पर तो राष्ट्रीय दल हैं, परन्तु उनका समर्थन केवल कुछ लक्ष्यों तथा सीमित क्षेत्रों तक ही है। इस प्रकार के दल फॉरवर्ड ब्लॉक, सोशलिस्ट यूनिटी सेन्टर, मुस्लिम लीग तथा क्रान्तिकारी सोशलिस्ट पार्टी है।

जैसा कि तालिका संख्या–2 से स्पष्ट है भारत में क्षेत्रीय दलों का अस्तित्व स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से ही रहा है। इस श्रृंखला में सर्वप्रथम उल्लेख शिरोमणि अकाली दल (1920) का किया जाना चाहिये। इसका कार्य क्षेत्र उत्तर भारत (मूलतः पंजाब) है। अकाली दल को राज्य स्तरीय दल माना गया है, वास्तव में यह धर्म आधारित दल है, जिसका उदय एक राजनीतिक व सामाजिक संस्था के रूप में हुआ स्वाधीनता प्राप्ति से पूर्व अकाली दल ने अंग्रेजों से सिक्खों के लिये पृथक इकाई की मांग की थी, स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पुनः सिक्ख संस्कृति व पंजाबी भाषा को विशेष दर्जा प्रदान करने की मांग को उसने भारतीय सरकार के समक्ष रखा। अकाली दल ने भारतीय संघ के अर्न्तगत सिख बहुल पृथक राज्य व पंजाबी भाषा को मान्यता दिलवाने हेतु संघर्ष किया जो अंततः 1966 में पंजाब की स्थापना के रूप में साकार हुआ।

राजनीतिक दृष्टिकोण से अकाली दल के सम्बन्ध में दो विशेषतायें उल्लेखनीय हैं, प्रथमतः पंजाब में इस दल का निश्चित आधार है जो दलीय व्यवस्था में उथल–पुथल के बावजूद इस दल को समर्थन देता है, यह आधार मूलतः ग्रामीण सिक्ख कृषक वर्ग का है। अकाली दल इस वर्ग का आर्थिक, सामजिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी विशेषता यह है कि सदैव दूसरे नम्बर का दल रहने के बावजूद अकाली दल की चुनाव जीतने की क्षमता सीमित है। सन् 1977 के आम चुनावों के अतिरिक्त इस दल का अधिकतम मत प्रतिशत 30% रहा है इसका कारण इसकी केवल एक ही धार्मिक सम्प्रदाय से अपील और आर्थिक कार्यक्रम में वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व माना जा सकता है।

अकाली दल के अतिरिक्त कुछ अन्य दल भी स्वतन्त्रता पूर्व से अस्तित्व में थे, जिसमें जम्मू कश्मीर नेशनल कांफ्रेन्स प्रमुख है। नेशनल कांफ्रेन्स की मूल जड़ 1930 के दशक में 'वाचनालय दल' के रूप में थी। यही वाचनालय दल, 1932 में अखिल भारतीय जम्मू–कश्मीर मुस्लिम कांग्रेस में बदल गया। 1938 में अपने पहले अधिवेशन में नेशनल कांफ्रेन्स ने वयस्क मताधिकार की तथा अल्पसंख्यकों के लिये स्थानों के आरक्षण की सिफारिश की। भारतीय संघ में कश्मीर के विलय के बाद नेशनल कांफ्रेन्स के नेता शेख अब्दुल्ला मुख्यमंत्री बने। उन्होंने भारतीय संविधान सभा पर अनु. 370 को अंगीकार करने के लिये जोर डाला, जिसके अन्तर्गत जम्मू व कश्मीर राज्य के भारत गणराज्य के साथ विशेष सम्बन्ध स्थापित किये गये।

उक्त क्षेत्रीय दलों का उदय उत्तर भारत में हुआ। इसी प्रकार दक्षिण भारत में द्रमुक और अन्नाद्रमुकनामक दो क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ। तमिलनाडु राज्य में द्रविड़ कड़गम एक स्थानीय द्रविड़ आन्दोलन की राजनीतिक शक्ति का प्रतीक है इसकी मूल जड़े जस्टिस पार्टी (दक्षिण भारतीय उदारवादी संघ) में थी, जो एक गैर ब्राह्मण आन्दोलन था। स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में दो द्रविड़ दल थे पहला 'स्वतन्त्र दल' जो दक्षिण भारत में पृथक द्रविड़स्तान की स्थापना करना चाहता था। दूसरी जस्टिस पार्टी थी जो द्रविड़ सम्मान की रक्षा हेतु प्रयासरत थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् दोनों दलों का विलय हो गया और मद्रास राज्य में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (1949) की स्थापना हुई। प्रारम्भ में इस पार्टी की मांग पृथक द्रविड़स्तान की स्थापना थी जो बाद में पृथक तमिल राज्य की स्थापना की मांग में परिवर्तित हो गई और अंततः भारतीय संघ के अर्न्तगत तमिलनाडु राज्य की स्थापना हुई। द्रविड़ कड़गम मूलतः ब्राह्मण दल था। 'हिन्दी भाषा का विरोध' और 'राज्यों के लिये स्वतन्त्रता' इस दल की नीति और कार्यक्रम के प्रमुख आधार रहे। 1972 में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम के विघटन के पश्चात् एम.सी. रामाचन्द्रन के नेतृत्व में अन्नाद्रमुक का जन्म हुआ। अन्नाद्रमुक का प्रभाव क्षेत्र तमिलनाडु और पुंडुचेरी में है।

दक्षिण भारत के एक अन्य राज्य आन्ध्र प्रदेश में तेलगूदेशम पार्टी (TDP) का जन्म हुआ। जनवरी 1983 के आन्ध्र विस चुनावों के 9–10 माह पूर्व इस दल की स्थापना की गई। आन्ध्र प्रदेश कांग्रेस पार्टी का गढ़ रहा है और तेलगूदेशम की स्थापना कांग्रेस शासन के विरुद्ध प्रतिक्रिया का परिणाम है। तेलगुदेशम् दल राज्य स्वायतत्ता का प्रबल समर्थक है तथा समय–समय पर केन्द्र–राज्य सम्बन्धों पर पुनर्विचार की मांग करता रहा है।

पूर्वोत्तर भारत में असम व पश्चिम भारत में महाराष्ट्र की क्षेत्रीय पाटियाँ भूमिपुत्र अवधारणा का परिणाम है। असम का प्रमुख क्षेत्रीय दल असम गण परिषद् है। असम गण परिषद् का उदय असम आन्दोलन (1979–85) की कोख से हुआ। यह विद्यार्थियों द्वारा संचालित आन्दोलन था जिसका किसी राजनीतिक दल से कोई सम्बन्ध नहीं था। आन्दोलन मूलतः बाहर से आकर असम के बसने वाले लोगों के विरुद्ध था। 1985 के चुनाव में अगप राजनीति में शामिल हुई।

1906 में स्थापित मुस्लिम लीग वह दल है जो देश के विभाजन के पश्चात् पूरी तरह समाप्त हो गया था। 1970 में यह दल केरल व तमिलनाडु में फिर सक्रिय हो गया। मुस्लिम लीग का मुख्य उद्देश्य मुसलमानों के हितों और मुस्लिम समुदाय के विशेष सामाजिक कानूनों आदि की रक्षा करना था। उक्त दलों के अतिरिक्त कुछ अपेक्षाकृत छोटे क्षेत्रीय दल भी राजनीतिक परिदृश्य में अपना प्रभाव दर्शाते रहे हैं। जैसे कि विशाल हरियाणा पार्टी (हरियाणा), महराष्ट्रवादी गोमांतक पार्टी (गोवा), रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया (महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश) आदि वे दल हैं जिनका आधार क्षेत्र पूर्वोक्त दलों के समान व्यापक नहीं है, परन्तु फिर भी ये दल एक छोटे व सुपरिभाषित समूह को प्रतिनिधित्व प्रदान करते हैं। केरल राज्य अन्य राज्यों की तुलना में बहुत छोटा है परन्तु जाति व सम्प्रदाय पर आधारित सर्वाधिक दल इसी राज्य में है। मेघालय की तीन प्रमुख क्षेत्रीय पार्टियाँ है– ऑल पार्टी हिल लीडर्स कांफ्रेन्स (APHLC) हिल स्टेट डेमोक्रेटिक पार्टी (HSPDP)] हिल्स पिपल युनियन (HPU) ये दल स्थानीय स्वायत्तता की मांग तो करते हैं परन्तु राष्ट्रीय एकता व अखण्डता के विरोधी नहीं है। इसके अतिरिक्त नागा नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी, मणिपुर हिल यूनियन, कूकी नेशनल असेम्बली, मिजो नेशनल फ्रण्ट भी अपने सीमित प्रभाव क्षेत्र में बेहतर प्रदर्शन कर रहे हैं।

1.7 आमण्ड–पावेल का संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक सिद्धान्त

तुलनात्मक राजनीति में व्यवस्था–विश्लेषण का संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम ईस्टन के निवेश–निर्गत विश्लेषण से उत्पन्न असंतोष के कारण अस्तित्व में आया। ईस्टन का निवेश–निर्गत मॉडल सामान्य सिद्धान्त निर्माण में तुलनात्मक राजनीति को बहुत आगे तक नहीं ले जा पाया।

अत: आमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्थाओं को संरचनाओं और प्रकार्यों के रूप में समझने के प्रयत्न का विचार प्रस्तुत किया।

संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम इस बात की व्याख्या करता है कि कौन सी संरचना राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत कौन से कार्यो का सम्पादन करती है। यह वस्तुत: व्याख्या और परीक्षण का एक उपकरण है।

यह उपागम दो प्रमुख धारणाओं पर केन्द्रित है और ये धारणायें है– प्रकार्य और संरचना की धारणायें।

प्रकार्यों की संकल्पना

मार्टन के अनुसार प्रकार्य प्रेक्षित परिणाम है जो किसी व्यवस्था के अनुकूलन या पुन: समायोजन की व्याख्या करते है और उन प्रेक्षित परिणामों को उपक्रिया कहते है जो किसी व्यवस्था के अनुकूलन या समायोजन को कम करते है। प्रकार्यों की संकल्पना में तीन बुनियादी प्रश्न निहित हैं– किस व्यवस्था में कौन से बुनियादी कार्य किए जाते हैं? ये कार्य किस उपकरण के द्वारा किए जाते हैं? और किन परिस्थितियों में इन प्रकार्यों का निष्पादन किया जाता है?

संरचना की संकल्पना

संरचना, व्यवस्था के भीतर उन प्रबन्धों को बनाती है जो प्रकार्यों का निष्पादन करते हैं। राजनीति की दुनिया में जिसे व्यवस्था कहा जाता है उसका एक ढांचा होता है और यह ढांचा या संरचना अपने आप में एक गतिशील मशीन की भांति कुछ कार्य करती है। उदाहरणार्थ– संसद या राजनीतिक दल, राजनीतिक व्यवस्था के भीतर एक संरचना है जो विविध कार्य करते हैं।

इस उपागम की प्रमुख मान्यतायें इस प्रकार हैं–

1. प्रत्येक व्यवस्था की संरचना होती है।
2. इन संरचनाओं को पहचाना जा सकता हैं।
3. इन संरचनाओं के अंग अथवा तत्व व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करते हैं।
4. व्यवस्था की संरचनाओं के अंगों द्वारा किए गए कार्यों का महत्व व्यवस्था के कार्यों के परिप्रेक्ष्य में ही है।
5. व्यवस्था की संरचनाओं के अंग कार्य की दृष्टि से अयोन्याश्रित होते हैं।
6. इन कार्यों का महत्व उसी समय तक है जब तक वे व्यवस्था के अंग हैं।
7. व्यवस्था की प्रवृत्ति संतुलन (Equilibrium) की ओर होती है।

एलेन बॉल के अनुसार –"सामान्य व्यवस्था सिद्धान्त के फलस्वरूप संरचनात्मक प्रकार्यात्मक अध्ययन उपागम अस्तित्व में आया।"

तुलनात्मक राजनीति में इस उपागम का विशेष रूप से प्रयोग आमण्ड एवं पावेल ने किया और उन्होंने ईस्टन की तरह ही राजनीतिक व्यवस्था के चार लक्षण माने हैं–1. राजनीतिक व्यवस्था के भागों में अन्तर्निर्भरता 2. राजनीतिक व्यवस्था की सीमा 3. राजनीतिक व्यवस्था का पर्यावरण 4. राजनीतिक व्यवस्था द्वारा बाध्यकारी शक्ति का प्रयोग। ईस्टन ने राजनीतिक व्यवस्था को 'निवेश–निर्गत' के रूप में समझाने का प्रयास किया जबकि आमण्ड इसे संरचना और प्रकार्यों के आधार पर समझते हैं। इस प्रकार संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम की विशेषतायें राजनीतिक व्यवस्था उपागम से कुछ भिन्न प्रकार की हो जाती है–

1. सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था पर बल
2. विशिष्ट कार्यों की शर्त का प्रतिपादन
3. विविध संरचनाओं में प्रकार्यात्मक अन्तर्निर्भरता
4. संरचनात्मक प्रतिस्थापना की मान्यता
5. प्रकार्यात्मक या विकार्यात्मक संरचनाओं को मान्यता।

आमण्ड एवं पावेल द्वारा प्रतिपादित संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम

संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम की दिशा में सबसे अधिक योगदान जी.ए. आमण्ड का है। आमण्ड 'राज्य व्यवस्था के प्रकार्यात्मक सिद्धान्त' की तलाश में है। आमण्ड का विश्लेषण संरचनात्मक प्रकार्यिक विश्लेषण है। इस विश्लेषण पद्धति का सबसे पहले विकास जैविक तथा तांत्रिक विज्ञानों में हुआ। सामाजिक विज्ञानों में सर्वप्रथम इसे मानव–विज्ञान के अध्ययन में अपनाया गया। बाद में इसे परिष्कृत कर टॉलकॉट पारसन्स तथा मेरियम लेवी ने समाज शास्त्रीय विश्लेषण की एक पद्धति के रूप में अपनाया।

इस विश्लेषण पद्धति में यह माना जाता है कि प्रत्येक व्यवस्था में संरचनायें होती है। इन संरनाओं को पहचाना जासकता है। इन संरचनाओं के अंग अथवा तत्व व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करते है। व्यवस्था की सक्रियता इनके कार्यों को अर्थ प्रदान करती है अर्थात् व्यवस्था की संरचनाओं के अंगों द्वारा किए गए कार्यों का महत्व व्यवस्था के कार्यों के ही परिप्रेक्ष्य में है।

संरचना के अंग अथवा तत्व की क्रियायें दूसरे अंग अथवा तत्व पर निर्भर करती है। व्यवस्था की संरचनाओं के अंग कार्य की दृष्टि से अन्योन्याश्रित होते हैं। सभी राजनीतिक

व्यवस्थाओं को वे चाहे किसी भी प्रकार की क्यों न हो, यदि उन्हें क्रियाशील तंत्र के रूप में कायम रहना है तो उन्हें एक विशिष्ट प्रकार के कार्य को अवश्य करना पड़ेगा। सतत् क्रियाशील राजनीतिक व्यवस्थाओं की एक विशेषता है। ये व्यवस्था की प्रकार्यक आवश्यकतायें हैं। विभिन्न राजनीतिक व्यवस्थाओं में यह कार्य विभिन्न प्रकार की राजनीतिक संरचनाओं और कभी–कभी उन संरचनाओं के द्वारा जिन्हें हम राजनीतिक संरचनायें नहीं कहते, किया जाता है। अत: राजनीतिक व्यवस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन में न केवल औपचारिक संरचनाओं की तुलना की जानी चाहिए अपितु उन अनौपचारिक संरचनाओं की भी तुलना करनी चाहिए जिन्हें हम राजनीतिक संरचनाओं की श्रेणी में नहीं रखते।

आमण्ड के अनुसार राजनीतिक व्यवस्था की चार विशेषतायें हैं जिन्हें 'अन्त: क्रिया के औचित्यपूर्ण प्रतिमान' कहा जाता है–

1. प्रत्येक राजनीतिक व्यवस्था की कुछ संरचनायें होती हैं, उनमें से कुछ अधिक विशेषीकृत होने के कारण अधिक कार्य कर सकती हैं और अन्य कम विशेषीकृत होने के कारण इसमें कम कार्य कर सकती हैं।
2. व्यवस्था ओर इसकी संरचनाओं में कुछ भी अन्तर हो सकता है, लेकिन सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं में समान राजनीतिक कार्य किए जाते हैं।
3. राजनीतिक संरचनायें कई ऐसे कार्य करती है जिन्हें बहुकार्यक कहा जा सकता है।
4. पूर्ण समाज का अंग होने के कारण सभी राजनीतिक व्यवस्थाओं की अपनी संस्कृति होती है जो कि हमेशा परम्परागत और आधुनिकता मिश्रण होती है

आमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था की संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक व्याख्या में ईस्टन के समान ही तीन चरण स्वीकार किए है–

1. राजनीतिक व्यवस्था के आदा या निवेश
2. रूपान्तरण प्रक्रिया
3. राजनीतिक व्यवस्था के प्रदा या निर्गत

राजनीतिक व्यवस्था के आदा या निवेश के लिए आमण्ड 'मांगो तथा समर्थनों' को स्वीकार करता है। उसके निवेश के रूप में आने वाली मांगो की चार श्रेणियां हैं–

1. वस्तुओं और सेवाओं के वितरण या आवंटन सम्बन्धी मांगें।
2. व्यवहारों को नियन्त्रित करने सम्बन्धी मांगे।

3. राजनीतिक सहभागिता सम्बन्धी मांगे।

4. संचार से सम्बन्धित मांगे।

मांगों की तरह ही आमण्ड ने समर्थन को भी चार श्रेणियों में विभक्त किया है–

1. द्रव्यात्मक समर्थन
2. आज्ञाकारिता समर्थन
3. सहभागिता समर्थन
4. श्रद्धात्मक समर्थन

आमण्ड की राजनीतिक व्यवस्था विश्लेषण की प्रमुख देन रूपान्तरण प्रक्रिया से ही सम्बन्धित है। आमण्ड के अभिमत में मांगों की रूपान्तरण प्रक्रिया उतनी सरल नहीं हैं जितनी कि ईस्टन ने मान ली है। मांगों के रूपान्तरण को आमण्ड ने दो भागों में विभक्त किया है– मांगों के रूपान्तरण के राजनीतिक प्रकार्य वर्ग तथा मांगों के रूपान्तरण के शासकीय प्रकार्य प्रवर्ग प्रथम में, मांगों को संशोधित करके रूपान्तरण योग्य बनाया जाता है। इसमें केवल सरकार की संरचनायें ही सम्मिलित नहीं होती हैं, अपितु राजनीतिक दृष्टि से गैर–सरकारी संरचनायें भी सम्मिलित होती है। राजनीतिक दल, दबाव–समूह और हित समूह या अन्य ऐसे ही संगठन इस स्तर पर मांगों के संसाधन व रूपान्तरण में सरकारी संरचनाओं के साथ अन्त:क्रियाशील रहते हैं।

आमण्ड ने राजनीतिक व्यवस्था के प्रदा या निर्गतों के विवेचन में ईस्टन का मॉडल स्वीकार नहीं किया है। उसने निर्गतों के चार भिन्न प्रकार माने है–

1. निकालने या उगाहने या लेने वाले निर्गत
2. नियामक निर्गत
3. वितरणी निर्गत
4. प्रतीकात्मक निर्गत

रेखाचित्र संख्या – 1

आमण्ड पावेल का संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम

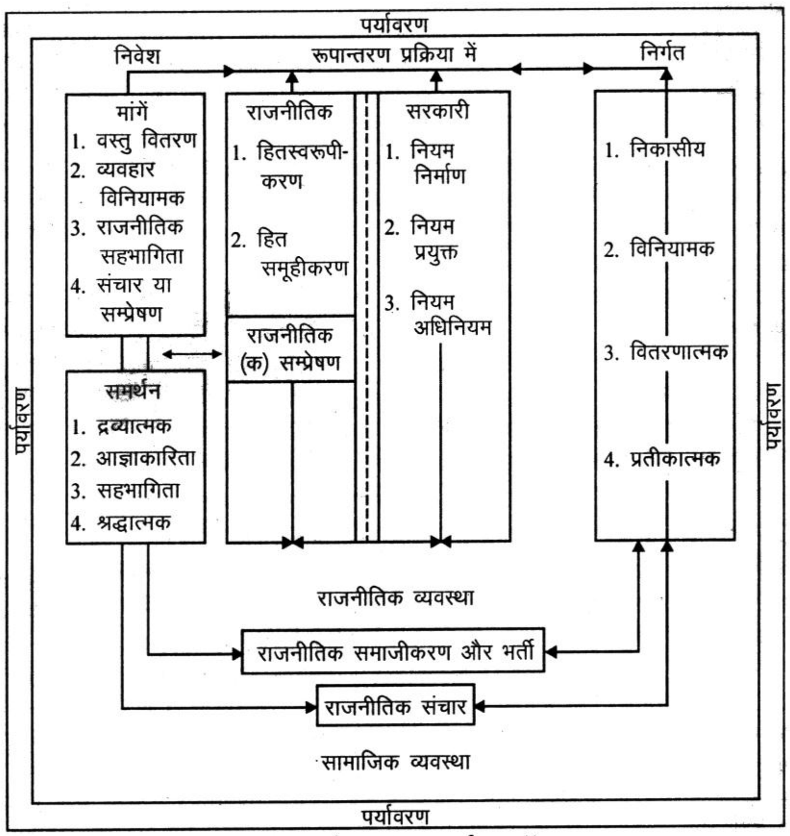

आमण्ड का संरचनात्मक-प्रकार्यात्मक मॉडल

चित्र–आमण्ड–पावेल का राजनीतिक–व्यवस्था प्रतिमान

(स्त्रोत– डॉ० पुखराज जैन–'तुलनात्मक शासन एवं राजनीति')

निर्गतों में पहली श्रेणी का सम्बन्ध कर वसूली, व्यक्तिगत सेवायें और सहयोग तथा योगदान से है। दूसरे में, मानव व्यवहार को नियमित तथा नियंत्रित करना सम्मिलित रहता है। वितरणात्मक निर्गतों में वस्तुओं, सेवाओं, लाभों, अवसरों, सम्मानों इत्यादि का आवंटन शामिल है। प्रतीकात्मक निर्गत मूल्यों की पुष्टि तथा राजनीतिक प्रतीकों का प्रदर्शन, नीतियों और उद्देश्यों की घोषणा से सम्बन्धित होता है।

जिस विधि तथा यन्त्र द्वारा राजनीतिक व्यवस्था आगत को (विभिन्न समूहों तथा व्यक्ति की मांगों को) रूपान्तरित करता है तथा पर्यावरण की प्रक्रियाओं का प्रत्युत्तर देता है, उसे आमण्ड रूपान्तरण की प्रक्रिया कहता है। राजनीतिक व्यवस्था की क्षमता इस बात में निहित है कि वह

किस सीमा तक आगत (Input) को निर्गत (output) में रूपान्तरित करने की क्षमता रखता है। आगत को निर्गत में रूपान्तरित करने की क्षमता को व्यवस्था की क्षमता कहा जाता है।

संरचनात्मक–कार्यात्मक उपागम की विशिष्टतायें:-

संरचनात्मक–कार्यात्मक उपागम के गुण निम्नलिखित हैं–

1. यह उपागम ऐसा समग्रवादी सिद्धान्त प्रस्तुत करता है जिससे राजनीतिक व्यवस्था के सभी पहलुओं से सम्बन्धित स्पष्टीकारक प्रकल्पनायें निकाली जा सकती है।
2. यह उपागम राजनीतिक व्यवस्थाओं के सामान्य सिद्धान्त के अन्ततः निर्माण की सम्भावनायें प्रस्तुत करता है।
3. यह उपागम इस बात को स्पष्ट करता है कि व्यवस्थाओं, उप व्यवस्थाओं और पर्यावरण से राजनीतिक व्यवस्था प्रभावित होती है और राजनीतिक व्यवस्था उन सबको प्रभावित करती है।
4. यह उपागम इस बात पर बल देता है कि किसी राजनीतिक घटना को समझने के लिए व्यापक परिवेश का संदर्भ लेना आवश्यक है।
5. इस उपागम के द्वारा राजनीतिक व्यवस्थाओं को उप–व्यवस्थाओं के रूप या संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक प्रवर्गों के आधार पर विश्लेषित कर सकते हैं।
6. यह उपागम संरचनाओं के कार्यों के साथ–साथ विकार्यों पर भी बल देता है इस प्रकार यह उपागम इस पर जोर देता है कि राजनीतिक व्यवस्थायें वास्तव में किस तरह कार्य करती हैं।

एप्टर और एक्सटीन के शब्दों में –"विश्व युद्ध के बाद के वर्षों में और विशेषतः अभी हाल ही के वर्षों में तुलनात्मक राजनीति के विद्यार्थियों ने संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक विश्लेषण के प्रवर्गों और परिप्रेक्ष्यों का अधिकाधिक प्रयोग किया है।"

अतः राजनीतिक व्यवस्था की धारणा, राज्य और शासन की तुलना में व्यापक धारणा है। यह राजनीतिक जीवन में परिवर्तन–सम्भव बनाने वाले तत्वों के परिवर्तन की गति और दिशा का अध्ययन करती है। इसके तीन लक्षण है–

1. **व्यापकता–**इस उपागम के अन्तर्गत न केवल औपचारिक अंगों जैसे विधानमण्डल अथवा कार्यपालिका अपितु समस्त अनौपचारिक संरचनाओं को भी शामिल करते है जैसे–जाति, धर्म, समुदाय।

2. **अन्योन्याश्रिता–** व्यवस्था के एक अंग के गुणों में परिवर्तन का प्रभाव अन्य संघटकों पर स्वत: पड़ता है।
3. **सीमायें**–राजनीतिक व्यवस्था की परिधि वहां से प्रारम्भ होती है जहां पर अन्य व्यवस्थाओं की परिधि समाप्त होती है।

उक्त सैद्धान्तिक प्रतिमानों तथा अवधारणाओं की सहायता से शोधार्थी द्वारा आंकड़ों का विश्लेषण कार्य सम्पन्न किया गया।

1.8 उपलब्ध साहित्य की विवेचना

प्रस्तुत शोध विषय के संदर्भ में पूर्व में किये गये कार्य विभिन्न आयामों पर केन्द्रित हैं। इनमें प्रमुख केन्द्र बिन्दु है– राज्यसभा के संगठन कार्यों व भूमिका का मूल्यांकन, संघात्मक व्यवस्थाओं में द्वितीय सदनों का तुलनात्मक विवेचन, राज्यसभा व लोकसभा की तुलना व अंतर्संबंध, संसद में राज्यसभा की स्थिति, वर्तमान परिदृश्य में राज्य सभा की प्रासंगिकता, क्षेत्रीय दलों की भारतीय राजनीति में भूमिका, द्विसदनात्मकता, संसद की भारतीय प्रजातंत्र में भूमिका आदि। उक्त बिन्दुओं पर आधारित कुछ प्रमुख अध्ययन इस प्रकार है।

'Select World Constitutions' जे. सी. जोहरी की अत्याधिक उपयोगी पुस्तक है। तुलनात्मक शासन व्यवस्थाओं के अध्ययन हेतु यह रचना महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत शोध अध्ययन के अन्तर्गत संघात्मक व्यवस्थाओं तथा द्वितीय सदनों के अवधारणात्मक तथा क्रियान्वयन दोनों ही दृष्टिकोणों से यह रचना अत्याधिक रूचिकर व सहायक हुई। लेखक के अनुसार समाज, राज्य, सरकार व संविधान एक दूसरे से अटूट श्रंखला में आबद्ध है। लेखक का यह भी कहना है कि प्रत्येक संविधान में ऐसा कुछ विशिष्ट लक्षण होता है जो अन्य में नही होता। उन्होंने आयन गिल्मर (Ian Gilmour) को उद्‌धृत किया है "सफल संविधान और संस्थायें मशीनरी का अंश मात्र नहीं है। यदि वे कार्य करते है, तो वह उन विचारों और विश्वासों के कारण जो उन पर कार्य करते है। संविधान को एक सजीव साधन की तरह होना चाहिये।" प्रस्तुत पुस्तक में ब्रिटिश, अमेरिकन, स्विस, रूसी, चीनी, फ्रेंच, जर्मन, कनाडियन, आस्ट्रेलियन, जापानी, दक्षिण अफ्रिकी, भूटानी, भारतीय तथा बांगला देशी संविधानों का गहराई से विस्तृत विवरण प्रस्तुत है।

भारतीय संसद के कार्यकरण व भूमिका पर आधारित महत्त्वपूर्ण अध्ययन है। "Indian Parliament : A Democracy at work" Shankar Roingues (Oxford

Publication)जो भारतीय लोकतंत्र के नवीन संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में संसद की भूमिका का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। लेखक का विचार है कि भारतीय लोकतंत्र विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है तथा संसद हमारी लोकतांत्रिक व्यवस्था की आधारशिला है। अतः रचना में भारतीय संसद का एक संस्था के रूप में उदय तथा कार्यान्वयन का विवरण समाविष्ट हैं। रचना में उल्लेखनीय पक्ष समाज व राजनीति के अंतर्सबंधों का अध्ययन है।

'Our Parliament' सुभाष कश्यप की रचना है। लेखक के अनुसार भारतीय संसदात्मक व्यवस्था भारतीय लोकतंत्र की नींव है। संसद इस व्यवस्था के केन्द्र में स्थित रहकर सम्पूर्ण व्यवस्था के संचालन का महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। सुभाष कश्यप की यह पुस्तक संसद के दोनों सदनों लोकसभा व राज्यसभा के कार्यकरण व संगठन पर प्रकाश डालने के साथ–साथ संबंधित समितियों का भी विशद विश्लेषण प्रस्तुत करती है। पीठासीन अधिकारियों उनके कार्यों व दोनों सदनों के अंतर्संबंधों की विवेचना पुस्तक का एक उल्लेखनीय बिन्दु है।

भारतीय संसद की भूमिका से संबंधित एक अन्य रचना जी.सी. मल्होत्रा द्वारा संपादित 'Fifty years of Indian Parliament' है। भारतीय संसद के गौरवमय 50 वर्षों को लेखों के माध्यम से इस पुस्तक में संकलित किया गया है। लेखक गणों में अतिविशिष्ट गण शामिल है। इनमें सोमनाथ चटर्जी का Parliament and people, पी.एम. सईद की Parliament : A multi functional Institution, प्रेम शंकर झा का Federalism, Democracy and Globilization जैसे महत्वपूर्ण लेख शामिल है। इन लेखों के माध्यम से भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के प्रत्येक पहलू पर विशेषज्ञों द्वारा विचार व्यक्त किये गये हैं।

'Indian Parliament Privilages, power and functions' संसद से संबंधित जीवन नायर एवं यू.सी. जैन की रचना है। इस रचना के मूलतः दो आयाम हैं। प्रथम आयाम के रूप में लोकसभा व राज्यसभा की संरचना, कार्यकरण आदि पर सैद्धान्तिक रूप से प्रकाश डाला गया है, जबकि द्वितीय आयाम के अंतर्गत भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की नवीन प्रवृत्तियों द्वारा संसद की कार्यप्रणाली में उपस्थित परिवर्तनों का अध्ययन किया गया है, इसके साथ ही यह पुस्तक संसद के विशेषाधिकारों, शक्तियों आदि का विवेचन भी प्रस्तुत करती है।

राज्यसभा के संगठन कार्यों, शक्तियों एवं उसकी भूमिका तथा प्रासंगिकता पर भी कई दृष्टिकोणों से कार्य किया गया है। श्री आर.सी. त्रिपाठी की रचना 'Emergence of second chamber in India' (2002) उक्त संदर्भ में महत्त्वपूर्ण है। लेखक ने तथ्यों को प्रतिपादित करते हुये स्पष्ट किया है कि लोकतंत्रात्मक व प्रतिनिध्यात्मक संस्थाओं का अस्तित्व भारत में प्राचीन काल

से ही है। आधुनिक व्यवस्थापिकाओं द्वारा प्रयोग में लाये जा रहे अनेक नियम व प्रक्रियायें पुरातन सभा व समितियों में प्रयुक्त प्रक्रियाओं के सदृश ही है।

लेखक के अनुसार भारत में संसदात्मक व्यवस्था ब्रिटिश सरकार की देन है। 1919 के भारत शासन अधिनियम द्वारा केन्द्रीय द्विसदनात्मक व्यवस्था की स्थापना की गई। तत्पश्चात् 1921 में काउन्सिल ऑफ स्टेटस की निर्वाचन व्यवस्था, संगठन, कार्य आदि में औपनिवेशिक आवश्यकताओं व राष्ट्रवादी दबावों के कारण परिवर्तन आते रहे। अंततः 1935 के भारत शासन अधिनियम द्वारा द्विसदनात्मक केन्द्रीय व्यवस्थापिका को अपना लिया गया। स्वतंत्र भारत के संविधान निर्माण हेतु संगठित संविधान सभा में द्वितीय सदन की उपादेयता पर विस्तार से विचार विमर्श हुआ और अंततः द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका के रूप में संसद की स्थापना पर सहमति बनी। जिसके दो सदन होंगे। प्रथम या निम्न सदन प्रतिनिधि सदन होगा जिसके सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जायेगा। जबकि द्वितीय सदन या उच्च सदन राज्यों की प्रतिनिधि सभा के रूप में कार्य करेगा। उपरोक्त तथ्यों को सत्यापित करने व उन पर प्रकाश डालने की दृष्टि से पुस्तक में महत्त्वपूर्ण दस्तावेजों व संविधान सभा के वाद–विवाद संबंधी विवरण को शामिल किया गया है।

Second chamber of Indian Parliament डॉ. एन.के. त्रिखा (जो कि संसदीय कार्यवाही के रिपोर्टर थे) के अनुसार संसद के द्वितीय सदन पर प्रथम अध्ययन था जो कि उनके व्यक्तिगत पर्यवेक्षण संबंधी प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित था। इस अध्ययन में मात्र सरकारी अभिलेखों को उल्लिखित न कर उनके कार्यकलापों के माध्यमों का प्रयोग किया गया। लेखक का विचार है कि राज्यसभा भारतीय संसद के उच्च सदन के रूप में संसद का अविभाज्य एवं महत्त्वपूर्ण अंग है तथापि लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत प्रतिनिधि सदन लोकसभा को सदैव से महत्त्व दिया जाता रहा है। राज्यसभा के संबंध में उपलब्ध साहित्य की कमी भी उसका एक महत्त्वपूर्ण कारण है। इस दृष्टिकोण से डॉ. त्रिखा की यह पुस्तक एक महत्त्वपूर्ण योगदान मानी जा सकती है। राज्य सभा के संगठन व शक्तियों की व्याख्या के साथ–साथ पुस्तक राज्य सभा के महत्त्व को स्पष्टतः स्थापित करती है।

'The Rajya Sabha has a unique position in the community of the upper houses of the world. It is neither only a chamber of revision nor simply the one playing a second fiddle to the lower house. It does not represent the

federating units as on upper house does in a federation. Yet it exercises federal powers in a variety of ways.'

(विश्व के उच्च सदनीय समुदाय में राज्यसभा की स्थिति विलक्षण है। वह मात्र दोहराने वाला सदन नहीं है और न ही निम्न सदन के हित में व्यर्थ की वार्ता करने वाला सदन। वह संघीय इकाइयों का प्रतिनिधित्व भी उस भांति नहीं करता जैसा कि एक संघात्मक व्यवस्था में होता है, फिर भी वह संघीय शक्तियों का प्रयोग विभिन्न तरीकों से करता है।)

पुस्तक के मुख्य आधार बिन्दु इस प्रकार हैं– द्वितीय सदन का सैद्धान्तिक परिचय संघात्मक व्यवस्था में राज्यसभा का स्थान, राज्यसभा व लोकसभा के अंतर्संबंध, राज्यसभा का संगठन व कार्यकरण तथा राज्यसभा में मनोनीत सदस्यों की भूमिका।

'The second chamber' राज्य सभा के निर्माण के 25वें वर्ष पूर्ण होने पर प्रकाशित हुई। यह संकलित रचना है। एस.एस. भालेराव ने आमुख में कहा है कि द्वितीय सदन का अस्तित्व राजनीति विज्ञान में सर्वाधिक विवादास्पद प्रश्न है । इस अंक में प्रयास किया गया है कि द्विसदनीय विधायिकाओं में द्वितीय सदन के कार्यान्वयन को न केवल अपने देश से अपितु कुछ अन्य देशों में भी परिचित कराया जाये। राज्य सभा के सदस्यों, कुछ विशिष्ट न्यायविदों, पत्रकारों, विद्यार्थियों एवं संविधानविदों का योगदान इस अंक में रहा है। विभिन्न देशों की संसद के द्वितीय सदनों की भूमिका, कार्य और कार्यान्वयन पर आधारित इस पुस्तक के अंतर्गत द्विसदनात्मकता तथा विशेषतः उच्च सदन और उसके प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित सदनों के संबंधों का अध्ययन आकर्षक रूप में प्रस्तुत है। प्रकाशित अंक को छः भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में विदेशी राष्ट्रों में द्वितीय सदनों का क्रियान्वयन निहित है द्वितीय भाग में द्वितीय सदनों की भूमिका एवं प्रासंगिकता को लिया गया है। तृतीय भाग में विधायिका के पीठासीन अधिकारियों की भूमिका समाविष्ट है। चतुर्थ अध्याय विगत 25 वर्षों के राज्यसभा के क्रियान्वयन के विभिन्न आयामों पर प्रकाश डालता है। इस भाग के अंतर्गत राज्यसभा से संबंधित न केवल संवैधानिक प्रावधानों की चर्चा गहनता से की गई है अपितु इस भाग के कुछ लेख भारतीय संसद के दोनों सदनों के संबंधों तथा विभिन्न क्षेत्रों में राज्यसभा की उपलब्धियों पर आधारित है जैसे विधायी कार्य, प्रश्न, समितियाँ आदि। पंचम भाग भारत की कुछ राज्य विधायिकाओं के द्वितीय सदनों का विवरण प्रस्तुत करता है। अंतिम छठवें भाग में राज्य सभा की विभिन्न कार्यवाहियों, संपादित सत्रों की जानकारी सदन के सम्मुख आये विभिन्न कार्य–संपादनों समितियों की कार्यवाहियों एवं विगत 3 वर्षों में राज्यसभा के व्यय आदि का विवरण प्रस्तुत है। उक्त कृति विषय के संबंध में विभिन्न अनुशासनों, विधायी जीवन के विभिन्न दृष्टिकोणों

एवं अभिमतों को प्रस्तुत करती है तथा आधुनिक विधायीकाओं के द्वितीय सदनों के कार्यान्वयन एवं आवंटित विभिन्न कार्यों का विस्तृत अध्ययन कराती है।

रचना के अन्तर्गत – के. के. शाह के शोध–प्रपत्र "The Second Chamber: Its Place In Parliamentary Democracy" में लेखक का विचार है –"भारत पूर्णत: एकात्मक राज्य नही है। उसकी विशिष्ट संघीय प्रकृति है और राज्यसभा उसका महत्वपूर्ण संघीय लक्षण है। राज्यविधानसभाओं द्वारा राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन सदन को स्पष्ट संघीय चरित्र प्रदान करता है। उसका एक महत्वपूर्ण दायित्व राज्यों के अधिकारों की सुरक्षा है। उदाहरण के लिये राज्यों के विधायी क्षेत्र संबंधी मामलों में विधायन हेतु दोनों सदनों को सदन का 2/3 विशेष बहुमत आवश्यक है।"

आगे उन्होंने एक और महत्वपूर्ण बिंदु पर प्रकाश डाला है। उनका मत है कि लोकतंत्र की अध्यक्षात्मक प्रणाली के विपरीत संसदीय प्रणाली में विधायिका, विधि निर्माण करने तथा कार्यपालिका की प्रशासकीय गतिविधियों के पर्यवेक्षण संबंधी शक्ति का एकमात्र केन्द्र होती है। ये सारे कार्य लोकसदनों द्वारा अकेले संपादित होना कठिन है। साथ ही सरकार की सामाजिक–आर्थिक नीतियों के जनहित में क्रियान्वयन की सुनिश्चितता हेतु द्वितीय सदनों के लिये आवश्यक है कि वे लोकसदनों के दायित्वों में साझेदारी करें।

इसी पुस्तक में अपूर्व लाल मजूमदार (पश्चिम बंगाल विधानसभा अध्यक्ष) ने अपने प्रपत्र "Neither Mischievous Nor Superfluous" में राज्यसभा के विषय में कहा है , "द्वितीय सदन 'एक आलसी विधायिका' नही है और विगत कुछ दशकों में उसके कर्तव्य और दायित्व अत्याधिक बढ़ गये है। उसे व्यापक क्षेत्र में कार्य करना है और सरकार की नीतियों को आकार देने में परिश्रम करना है। लोकतंत्र मानव इतिहास की विकास यात्रा का आनुषांगिक है और द्वितीय सदन जैसी गंभीर संस्था का पवित्र कर्तव्य है, कि वह लोकतंत्र को अपेक्षित दिशा में निर्देशित करे।

एक अन्य लेखक राज्यसभा सदस्य वीरेन्द्र पाटिल का विचार है कि द्वितीय सदन में आवश्यक रूप से संरचना और प्रणाली का पुनरावलोकन किया जाये ताकि उच्च सदन संसदीय व्यवस्था का केन्द्रबिंदु और विद्वानों तथा कुशल व्यक्तियों की शरणस्थली बन सके जिससे संसदीय जीवन का सर्वोच्च और सर्वोत्तम लाभ प्राप्त किया जा सके।

Second Chambers-Bicameralism today, 2002। राज्यसभा की 50वीं वर्षगांठ के अवसर पर प्रकाशित हुई। यह आलेखों का संकलन है जिनके अंतर्गत राज्यसभा की भूमिका, स्थिति

और कार्यान्वयन पर पूर्णरूपेण प्रकाश डाला गया है। द्वितीय सदन का विश्व में विभिन्न क्षेत्रों के साथ तथा चार भारतीय राज्यों के संदर्भ में भी मूल्यांकन किया गया है।

Cicero's Puzzle "Upper house power in comparative perspective" Jennette Money and George Tsebelis का इन्टरनेशनल पोलिटिकल साइन्स रिव्यू (1992) में प्रकाशित शोध–प्रपत्र है। यह द्विसदनीय विधायिकाओं में उच्च सदनों के विधायी प्रभाव का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह उल्लेखनीय है कि उक्त सम्बन्ध में दो पृथक विश्लेषणात्मक परम्परायें अस्तित्व में हैं, एक का जोर उच्च सदन की विशेषज्ञता पर है और दूसरे का उच्च सदन की शक्तियों पर। लेखक ने इन दो विश्लेषणात्मक परम्पराओं का पुनर्एकीकरण किया और संघीय व एकात्मक व्यवस्थाओं दोनों में उच्चसदनीय राजनीतिक शक्तियों के अनुपम प्रतिमान को प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत शोध–प्रपत्र को तीन वर्गों में बांटा गया है। प्रथम वर्ग में एकात्मक संघात्मक प्रणालियों में द्वितीय सदनों के सामान्य लक्षणों का वर्णन किया गया है जिन्हें लेखक ने क्रमशः सक्षम व राजनीतिक विशेषण दिये है। द्वितीय वर्ग में एक गणितीय प्रतिमान का क्रियात्मक वर्णन है जो द्विसदनीय विधायिकाओं में उच्च व निम्न सदनों की आनुपातिक शक्तियों का तुलनात्मक परिचय देती है। इसके अन्तर्गत यह पाया गया है कि संस्थात्मक विशिष्टतायें जैसे नियमों को रोकना, सदनों में विधेयक का अनेक बार लौटना, वास्तव में उच्च सदन की शक्ति से सम्बद्ध है। तीसरे वर्ग में संस्थात्मक विशिष्टताओं की तुलना की गई है जो लगभग 33 देशों की उच्च सदनीय शक्तियों को प्रभावित करती है जहां Navette System अपनाया गया है।

What are second chamber for? यह Meg Russell का शोध–प्रपत्र है जो Parliamentry Affairs (2001) में प्रकाशित हुआ। एक द्वितीय सदन संसदीय व्यवस्थाओं को क्या दे सकता है? इस सम्बन्ध में चार आधारभूत तत्वों को सुझाया जा सकता है। प्रथम विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व जो निम्न सदन में बहुत कम प्रवेश पाते है। द्वितीय जिसको संज्ञान में कम लिया जाता है कि द्वितीय सदन एक स्वतन्त्र दृष्टिकोण प्रदान करने को तत्पर रहता है। तीसरे यदि द्वितीय सदन के पास मजबूत औपचारिक शक्तियां हो तो वह नीति निर्माण प्रक्रिया के अन्तर्गत 'वीटो–खिलाड़ी' की तरह भूमिका निभाता है। यह भूमिका सदैव विवाद के केन्द्र में रहती है। चौथा वह संसदीय कार्यभार को हल्का करती है।

विषय के संदर्भ में तुलनात्मक अध्ययन भी कई आयामों पर किये गये हैं। "The theory and practice of Modern Government" हर्मन फाइनर की रचना है जिसके अंतर्गत उन्होंने सरकार संबंधी तथ्यों को अधुनातन बनाते हुये, समकालीन मानसिकता, आशाओं और मानवमात्र की समस्याओं को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसके अंतर्गत ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, फ्रांस, नाजी जर्मनी, इटली एवं सोवियत रूस की सरकारों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। रचना के नवीन अंक में राज्य की प्रकृति का नवीन परिचय, शक्ति सत्ता की समस्या, लोकतंत्र की प्रकृति, नियोजित अर्थव्यवस्था का लोकतांत्रिक समाजवाद पर प्रभाव, निर्वाचकों, राजनीतिक दलों, विधायिकाओं, कार्यपालिकाओं एवं लोकसेवाओं पर प्रभाव जैसे प्रासंगिक बिन्दुओं पर पूर्णरूपेण प्रकाश डाला गया है। शक्ति पृथकरण के शास्त्रीय सार को पुनर्परिभाषित किया गया है। फ्रांस के नवीन संविधान, सोवियत संविधान की विशिष्टताओं, वीमर जर्मनी का पतन, नाजी राष्ट्र का उदय एवं पतन इन सबको संबंधित राष्ट्रीय वातावरण एवं राष्ट्रहितों के संदर्भ में विश्लेषित किया गया है।

Lijphant Arend की रचना 'Democracies : Patterns of Majoritarian and consensus Govt. in 21 countries 2004में तुलनात्मक राजनीति के संदर्भ में किया गया अध्ययन है। लेखक का अभिमत है कि सफल लोकतंत्र को संचालित करने हेतु अनेक उपाय हैं। लेखक ने लोकतंत्र को दो–दो मूलभूत प्रतिमानों में बांटा है–

1. Majoritanian – बहुमत का शासन
2. Consensus – समाज में गहरे जड़ जमाए एकमत

उक्त अध्ययन लोकतांत्रिक शासनों के अध्ययन का व्यापकता एवं गहनतम अध्ययन है।

2001 मं प्रकाशित Nicolas Bddurin एवं Donald Shell की पुस्तक Second Chambers में लेखक ने विचार व्यक्त किया है कि विश्व की 38% संसदों में द्वितीय सदन है परन्तु इस तथ्य के बावजूद राजनीतिज्ञों एवं अकादमिक विद्वतजनों ने उक्त संदर्भ में नाममात्र को ही प्रकाश डाला है।

Senates S.C. petterson and A.C. Mughan की रचना है। अमरीका का द्वितीय सदन सीनेट सदा से द्विसदनीय व्यवस्थापिका संबंधी अध्ययनों का केन्द्रबिन्दु रहा है। यह रचना अमेरिकी सीनेट के संदर्भ में द्विसदनात्मकता का व्यापक विवेचन प्रस्तुत करती है। इस परिप्रेक्ष्य में प्रथम अध्याय 'Senates and the theory of Bicameralism' महत्त्वपूर्ण है। लेखकद्वय ने

द्वितीय सदन की परिभाषा निम्नवत् प्रस्तुत की है।"Institutional design for a two house representative a assembly."

'द्विसदनीय प्रतिनिधि सभा हेतु संस्थागत ढांचा' लेखक के अनुसार द्विसदनात्मक व्यवस्था को यथास्थिति में संभवत: इसलिये स्वीकार कर लिया गया है क्योंकि इस व्यवस्था को अस्वीकार करना इतिहास को नकारने के समान होगा।

"The upper house : A Journey behind the closed doors of the U.S. Senate"राजनीतिक विश्लेषकटैरेन्स सैप्युल ने इस पुस्तक के माध्यम से सरकार के विधायी अंग की एक यात्रा प्रस्तुत की है साथ ही सीनेट के विशिष्ट चरित्र के अध्ययन द्वारा यह जानने का प्रयास किया कि आधुनिक सीनेट की व्यवहारगत विशेषतायें क्या होनी चाहिये। राजनीतिक व्यवस्था को एक गतिशील अवधारणा मानते हुए लेखक ने सीनेट के स्वरूप में आये परिवर्तनों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है।

Wilfneed swenden की federalism and second chamber में लेखक का मत है कि तुलनात्मक संघवाद के सिद्धान्त से यह तथ्य प्रतिपादित (स्थापित) हुआ कि संघ को केन्द्रीय विधि निर्माण में क्षेत्रीय हितों के प्रतिनिधित्व हेतु द्वितीय सदन की आवश्यकता है। यद्यपि संसदीय संघों में द्वितीय सदन के योगदान का व्यवस्थित विश्लेषण बहुत ही कम हुआ है। रचना का मुख्य उद्देश्य यह दर्शाना है कि सर्वाधिक शक्तिशाली संसदीय द्वितीय सदन आस्ट्रेलियन सीनेट एवं जर्मन बुडारेस्ट उस संघात्मक संरचना से जुड़कर कड़ी का कार्य करती है जिनमें वे स्थित है। इस अध्ययन ने द्वितीय सदनों के सदस्यों के योगदान को विश्लेषित किया है तथा स्पष्ट किया है कि सदस्यों ने क्षेत्रीय निर्वाचन क्षेत्रों से जुड़े हितों को आगे बढ़ाने का कार्य किया है निष्कर्ष अध्याय में अध्ययनकर्ता ने कुछ प्राथमिक परीक्षण भी किये हैं कि क्या उनकी उपलब्धियां (उनके निष्कर्ष) व्यापकतर संसदीय द्वितीय सदनों के समूहों जैसे बेल्जियम, स्पेनिश, कनाडियन, संयुक्त राज्य अमेरिका या भारत में उत्साहजनक रूप से झांकने के अवसर पैदा करती है?

"Dynamic Federalism and the Concept of Preemption", Harrop A. Freeman की संकलित रचना है जिसे भारतीय विधि संस्थान के सौजन्य से प्रकाशित किया गया है। इसमें उन शोध प्रपत्रों को शामिल किया गया है जो भारतीय विधि संस्थान नई दिल्ली द्वारा आयोजित सेमिनार (19-22 April 1973) ने, जिसका विषय था, "स्वातन्त्रयोत्तर संवैधानिक

विकास" में प्रस्तुत किये गये थे इस ग्रन्थ में शामिल विषयों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है।

1 शासन की संसदीय प्रणाली

2 केन्द्र राज्य सम्बन्ध

3 मौलिक अधिकार और नीति निर्देशक तत्व

उक्त रचना में डॉ. एम. पी. जैन का एक उल्लेखनीय प्रपत्र, "Indian Federalism : A Background Paper" शीर्षक से है। लेखक के अनुसार संघवाद एक देश के प्रशासन के लिये जटिल सरकारी मशीनरी की रचना करता है। वह अनेक स्वायत्त, विशिष्ट, पृथक् और हताश पहचानों या प्रशासकीय इकाईयों को एक राजनीतिक यूनियन में बांधता है। वह केन्द्र स्तर पर शक्ति के केन्द्रीयकरण और उन ताकतों के बीच जो अनेक इकाईयों में शक्ति के वितरण के पक्ष में हो, के बीच संतुलन बनाने की कोशिश करता है। इस प्रकार संघवाद बहुलता को एकता से, केन्द्रीकरण को विकेन्द्रीकरण से और राष्ट्रवाद को स्थानीयतावाद से जोड़े रखने हेतु प्रयत्नशील रहता है। संघीय प्रणाली की मौलिकता उस ताकत में है जो केन्द्रीत भी है साथ ही विभाजित भी। जहां कुछ क्षेत्रों में प्रशासन और विधायन का केन्द्रीकरण है वहीं कुछ क्षेत्रों में विकेन्द्रीकरण भी है।

Ronald L watts की रचना Comparing federal systems (Institute of intergovernmental relations) में लेखक ने बड़ी संख्या में संघों की संरचना एवं क्रियान्वयन का सफल विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उन्होंने यह मत भी व्यक्त किया है कि ऐसा बहुत कुछ है जो विश्वभर की संघात्मक प्रणालियों के अनुभव से जाना जा सकता है। वर्तमान में विश्व स्तर पर 25 संघ क्रियान्वित है (जो कि विश्व की 40% जनसंख्या समाहित किये हुये हैं) संघवाद के समकालीन वैश्विक व्यवस्था में प्रचलन का विशिष्ट लक्षण यह है कि उसके क्रियान्वयन ने विविध प्रकार के स्वरूपों को विकसित किया है तथा कुछ नवीन कारकों, तत्त्वों और नवाचारों को समाविष्ट किया है। लेखक ने अपनी रचना में बड़ी संख्या में संघों को उनके अधुनातन संदर्भों तथा संघीय प्रयोगों के साथ जिनमें परिपक्व संघ जैसे सं. रा. अमेरिका, स्विटजरलैण्ड, कनाडा, आस्ट्रेलिया, जर्मनी और भारत तथा उभरते संघ जैसे मैक्सिको, मलेशिया, पाकिस्तान, स्पेन को विश्लेषण हेतु लिया गया है।

संघात्मक शासन के संदर्भ में एक अन्य अध्ययन Mikhail, Tilippov का डिजाइनिंग फेडेरेलिज्म है। इसके अंतर्गत 'संघीय संस्थाओं के स्वस्थैर्य सिद्धान्त' में लेखक का मत है कि रूस और यूक्रेन से लेकर कनाडा एवं यूरोपियन यूनियन तक के संघात्मक राज्यों की रचना ने एक

मिथ्या पूर्वाग्रह को विकसित किया है जो कि राज्य के संस्थात्मक ब्लॉकों का निर्माण है। यद्यपि इसके स्थान पर नीति के क्षेत्राधिकार आवंटन के संदर्भ में सावधानी से चित्रण किया जाना उचित होगा। लेखक का तर्क है कि बड़ी संख्या में ऐसे संस्थात्मक कारक है जो संघात्मक राज्यों की सफलता की सुनिश्चितता को गोपनीय सिद्ध कर सकते हैं और वे कारक सामान्यतः संघात्मक संरचना से संलग्न नहीं है। इन कारकों में हैं क्षेत्रीय प्रकृति के तत्व तथा वह सीमा जहाँ तक सार्वजनिक पद चयन से भरे जायें न कि नियुक्ति के द्वारा। लेखक ने उन संघों का भी परीक्षण किया है जो असफल हो गये हैं और उनकी सामाजिक भिन्नतायें, राजनीतिक संस्थाओं, शक्तियों व वित्तीय साधनों का वितरण प्रक्रियाओं, समायोजन में नमनीयता या कठोरता के संदर्भ में, आंतरिक समरूपता या केन्द्रीकरण की सीमा आदि की तुलना भी की गई है।

'Asymmetric Federalism is India' यह एम. गोविन्दा राव और निर्वाका सिंह का लेख है– विषमरूप संघवाद (Asymmetric Federalism) से तात्पर्य ऐसे संघवाद से है जो संघीय इकाईयों के बीच राजनीतिक, प्रशासकीय एवं रेवेन्यू से सम्बन्धित प्रबन्धन क्षेत्रों में असमान शक्तियों एवं सम्बन्धों पर आधारित है। लेखक का विचार है कि विशुद्ध संघवाद व्यवहार में शायद ही कहीं दिखाई दे। यहां तक कि यदि संविधान राज्यों को समान शक्तियों की गारंटी देता है, तो संघात्मक व्यवस्था के क्रियान्वयन में राजनीतिक, प्रशासनिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में केन्द्र का ही आधिपत्य रहता है। भारतीय संघात्मक व्यवस्था में केन्द्रीय आधिपत्य और राज्यों के अधिकार क्षेत्र में केन्द्र के बलात् प्रवेश के असंख्य उदाहरण है। संयुक्त राज्य अमेरिका के शास्त्रीय संघ के विपरीत भारतीय संघ 'अविनाशी राज्यों का अविनाशी केन्द्र' नहीं है। (Indestructible Union of Indestructible States) नहीं है, केवल 'यूनियन' अविनाशी है, राज्य नहीं।

लेखक का मत है कि विभिन्न राज्यों के असममीत(Asymmetric) व्यवहार का मुख्य स्त्रोंत भारतीय राज्य व्यवस्था की प्रकृति में है और उस तरीके में है जिससे विगत वर्षों में संस्थाओं ने कार्यान्विति की है। भारतीय संघ में राज्यों के असममीत व्यवहार को प्रभावित करने हेतु चार महत्वपूर्ण विकास हुये –

→ भारतीय संघवाद में बढ़ता हुआ आर्थिक केन्द्रीकरण।

→ केन्द्र व राज्यों में एक दलीय शासन का अंत होना।

→ कुछ महत्वपूर्ण राज्यों में सत्तासीन दल के रूप में क्षेत्रीय पहचान के साथ दलों का उदय।

→ केन्द्र में गठबन्धन सरकारों का गठन।

वे राज्य जिनमें क्षेत्रीय दल, जो संसद में अपनी विशिष्ट ताकत के साथ धुरी बन गये है और अन्य राज्यों की तुलना में अधिक स्त्रोंतों को प्राप्त कर रहे हैं।

The challenges of federalism भी संघीय प्रणाली के संदर्भ में किया गया Eugene W. Hickok का अध्ययन है। जिसमें लेखक ने सार रूप में स्पष्ट किया है कि संघवाद अधोसंरचना की स्वतंत्रता का केन्द्रीय तत्व है। यह राष्ट्रीय सरकार के केन्द्रीकरण पर नियंत्रण रखता है तथा राज्य–स्वतंत्रता की सुरक्षा करता है जो नागरिक समाज (सिविल सोसायटी) को पनपने के लिये मुक्त क्षेत्र प्रदान करता है। लेखक अभिमत देते हैं कि संघवाद का प्रारंभिक व्यवहारिक स्वरूप स्पष्ट करता है कि आधुनिक नौकरशाही, अधिकारों की क्रांति और न्यायिक सर्वोच्चता, संघवाद का स्थान ग्रहण कर रहे हैं तथा इनका भविष्य राष्ट्र को स्वरूप व आकार प्रदान करेगा।

प्रस्तुत शोधकार्य हेतु चयनित विषय का मुख्य उद्देश्य क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्यसभा के विकास पर प्रभाव का विश्लेषण करना है अतः क्षेत्रीय दलों पर हुये अध्ययनों का परीक्षण भी आवश्यक है।

Indian Parties and Politics (भारतीय दल और राजनीति) संवैधानिक व संसदीय अध्ययन संस्थान से प्रकाशित संपादित रचना है। संपादक मंडल के अध्यक्ष डॉ. एल. एम. सिंघवी हैं तथा संपादक डॉ.सुभाष सी. कश्यप है। इसके अन्तर्गत सी. पी. भांभरी, के. संथानम, जे. सी. जौहरी, एस. आर. महेश्वरी तथा अनेक अन्य विद्वानों के शोध–प्रपत्र हैं।

संपादक डॉ. सिंघवी के अनुसार भारतीय परिदृश्य में हम राजनीतिक दलों और राजनीति में विभिन्नता और बहुलता पाते है जो समाजशास्त्रीय अर्थों में भारतीय समाज की विभिन्नता और बहुलता को प्रतिबिंबित करती है। आर्थिक असमानता, बार–बार होने वाले चुनाव, आर्थिक स्त्रोतों का अभाव, वैचारिक पहचान की कमी आदि के कारण राजनीतिक दलों के आपसी घालमेल को समझ पाना दुष्कर है। इसके लिये राजनीतिक प्रबन्धन की न्यूनता तथा राजनीतिक प्रक्रिया में व्यापकता से फैले व्यक्तिगत समीकरण भी उत्तरदायी है।

उक्त रचना में राष्ट्रीय महत्व के अनेक विषयों पर शोध–प्रपत्र समाविष्ट है। जैसे भारतीय संघवाद पर राजनीतिक दलों का प्रभाव, भारत में विपक्षी दलों की असफलता, दलविहीन प्रजातन्त्र, भारत में राजनीतिक दलों का संकट, भारत में लोकतन्त्र और नेतृत्व के प्रति अपेक्षायें आदि।

इस रचना के अन्तर्गत एम. व्यैंकटरंगिया का लेख “The Impact of Political Parties on Indian Federalism” (भारतीय संघवाद पर राजनीतिक दलों का प्रभाव) में लेखक ने एक महत्वपूर्ण बिंदु का उल्लेख किया है जिसका सम्बन्ध प्रस्तुत अध्ययन से भी है। लेखक के अनुसार यह परीक्षण किया जाना आवश्यक है कि क्या देश में राजनीतिक दलों ने संघवाद को सुधारा है? क्या वे केन्द्र के पक्ष में है या राज्यों के? क्या वे संविधान निर्माताओं द्वारा उद्देशित संतुलन को जारी रखना चाहते है? अन्य शब्दों में क्या देश में वास्तव में सक्रिय राजनीतिक दल, सशक्त केन्द्र की अवधारणा को बनाये रखने में सक्षम है जो भारतीय संघवाद की मूलभूत परिकल्पना थी?

लेखक के अनुसार संघीय संतुलन के प्रति कांग्रेस का लक्ष्य केन्द्रीकृत संघवाद के पक्ष में है ताकि नीतियों पर नियंत्रण रहे। जनसंघ (भाजपा) राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय एकता के उद्देश्य से विकेन्द्रीकृत एकात्मक व्यवस्था की पक्षधर है। साम्यवादी दलों का संघवाद के प्रति दृष्टिकोण अस्पष्ट है। वे एक मजबूत केन्द्र चाहते है, साथ ही राज्यों की प्रभावी स्वायत्तता की आवश्यकता पर भी जोर देते है। यही कारण है कि पश्चिम बंगाल व केरल जहां वे सत्ता में रहे, केन्द्र से संघर्षरत रहे। स्वतन्त्र पार्टी केन्द्र व राज्यों के बीच संतुलन चाहती है। लेखक के अनुसार वे क्षेत्रीय दल ही है जिन्होंने इस विचार के प्रति अपनी विशिष्ट प्रवृत्ति दर्शाई कि केन्द्र और राज्यों के बीच संतुलन अनावश्यक रूप से केन्द्र की ओर झुका हुआ है। अत: संविधान में अभूतपूर्व परिवर्तन होने चाहिये ताकि राज्यों के पास आज की अपेक्षा अधिक स्वायत्तता हो । इस संदर्भ में तमिलनाडु की डी. एम. के. और पंजाब में अकाली दल सर्वाधिक मुखर है, जिन्होंने पृथक् राज्यों की मांग रखी।

The Complicated Rise of India’s Regional Parties यह मिलन वैष्णव का आलेख है जिसका सार यह है कि क्षेत्रीय दलों ने भारत की चुनावी राजनीति को मूल रूप से परिवर्तित कर दिया है, परन्तु वे दल कोई अजेय ताकत नहीं होंगे, जैसे वे दिख रहे है। उनका कहना है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इतिहास में हुये विकासों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विकास क्षेत्रीय दलों का भारत की राजनीति अर्थतन्त्र और समाज में प्रमुख शक्ति केन्द्र के रूप में उभार है।

“India: The Curious Case of a new Pan-Regionalism” यह तन्मय शर्मा का शोध–प्रपत्र है। उनका मत है कि भारत को यह जान लेना चाहिये कि व्यापक गणराज्यों, मजबूत संघीय ढांचे और विभिन्न संघर्षरत क्षेत्रीय और उपक्षेत्रीय हित, एक रंगबिरंगे लोकतन्त्र को बनाते है, स्वतन्त्रता के बेहतर निवास और आतंक के विरूद्ध सुरक्षित स्थान बनाते है। यह समय वह है जब

भारत के विचार को उदारीकृत, बहुलीकृत और आधुनिकीकृत किया जाना है। वह स्वयं उसके विरूद्ध नही होना चाहिये।

Emergence of Regional Parties and Its Implications (क्षेत्रीय दलों का उदय और उनका कार्यान्वयन) यह शोध–प्रपत्र 12 अक्टूबर 2012 को प्रकाशित हुआ। लेखक का विचार है कि बहुदलीय प्रणाली के उदय को उन प्रमुख घटनाओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है जिन्होंने प्रशासन की विद्यमान प्रणाली को आकार प्रदान किया है।

→ नेहरू का अंत।

→ आपात्काल उद्घोषणा।

→ जनता दल सरकार का गठन।

लेखक ने उल्लिखित किया है कि नेहरू अपने 'आदर्शवाद और प्रिगमेटिज्म' के बीच अटके रहे। जिनका परिणाम संविधानवाद और समाजवाद थे। आगे लेखक ने लिखा है कि 1984 के चुनाव वें अन्तिम चुनाव थे जब एकदलीय सरकार बनी। उसके बाद के सभी चुनावों का परिणाम गठबन्धन सरकारें थीं, जो क्षेत्रीय राजनीति का स्पष्ट संकेत थीं। 1989 तक कुछ क्षेत्रीय दल कांग्रेस के विकल्प के रूप में स्थापित हुये । इन स्थानीय और क्षेत्रीय दलों ने भारतीय राजनीति की गतिशीलता को बदल दिया और एकदलीय सरकार से बहुदलीय प्रणाली में परावर्तन हुआ, जिसके लाभ और हानियां दोनों हैं। "Every System will have loopholes, it's the number and the pluggability of loopholes that distinguish each system from the other in the terms of efficiency. Surely the multi-party system fares well in both the requirements compared to single party system."

Role of Regional Political Parties in India संकलित रचना Dasarthi Bhuyan की है। उनके अनुसार भारत में अनेक क्षेत्रीय दलों का उदय प्राथमिक रूप से सामाजिक आर्थिक धार्मिक और सांस्कृतिक बहुलवाद के कारण हुआ है। प्राथमिक स्तर (Grassroot Level) पर क्षेत्रीय दल लोगों को राजनीतिक रूप से जागरूक करते हैं और जन–सहभागिता को अधिक व्यापक व गहन बताते हैं। 1996 के बाद अनेक क्षेत्रीय दल उदित हो गये हैं और राष्ट्रीय राजनीति में मुख्य भूमिका निभा रहे हैं। उनका राजनीति की संरचना एवं प्रक्रिया पर 'बहुआयामी एवं दूरगामी' प्रभाव पड़ता है। इन क्षेत्रीय दलों ने 'भारतीय एकदलीय एकाधिकार प्रणाली' अथवा 'One party

plus system' के लिये एक शक्तिशाली चुनौती प्रस्तुत की है। कुछ क्षेत्रीय दल प्रांतीय स्तर पर सत्ता में रह चुके हैं और कुछ सत्ता में हैं। यह सब भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों के बढ़ते महत्त्व को दर्शाता है। क्षेत्रीय दलों ने एक नये विचार को उभरने में भी मदद की है। जो यह स्वीकारता है कि क्षेत्रीय राजनीतिक दल राष्ट्र–निर्माण में सकारात्मक भूमिका निभा सकते हैं। इस रचना में क्षेत्रीय दलों के विभिन्न आयामों पर 10 आलेख हैं। क्षेत्रीय दलों की भूमिका, आवश्यकता, कार्यक्रम, उदय के कारण और भारत के विभिन्न राज्यों में उनका शासन प्रमुख है। इस अंक के सहयोगकर्ताओं ने प्रामाणिक व वस्तुनिष्ठ होने का प्रयास किया है। उन्होंने विषय के संबंध में अद्यतन तथ्यों एवं नवीनतम विकास प्रतिमानों को उद्घाटित करने का प्रयास किया है।

शोध रचनाओं के अतिरिक्त विषय से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण शोध–प्रपत्रों का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा जिनका उल्लेख किया जाना वांछनीय है ।

1. Federalism In India : A Critical Appraisal (भारत में संघवाद : एक समीक्षा)डॉ. चंचल कुमार, दिल्ली विश्वविद्यालय ।
2. Regional Political Parties Strengthening Federalism In India : An Analysis (भारत में संघवाद को मजबूत करते क्षेत्रीय दल : एक विश्लेषण) डॉ.(श्रीमती)जोहनी का शोध–प्रपत्र है जो सामाजिक विज्ञानों और मानविकी अनुसंधान की अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका, अक्टू. – दिस. 2014 के अंक में प्रकाशित हुआ है ।
3. Removal of Domicile Requirement For Rajyasabha – A Potential Threat To Federal Structure (राज्यसभा के लिये नागरिकता की वांछनीयता को समाप्त किया जाना – संघीय ढांचे के लिये खतरा) ऋषि रे का शोध–प्रपत्र ,अक्टूबर 9, 2013 में प्रकाशित, SSRN में उपलब्ध है।
4. A Syposium On Democracy And Constitutionalism In India, Feb. 2013 (भारत में लोकतन्त्र व संविधानवाद विषय पर आयोजित एक विचारगोष्ठी) में सिद्धार्थ चौहान द्वारा प्रस्तुत शोध प्रपत्र –Bicameralism Comparative Insights And Lessons (द्विसदनात्मकवाद तुलनात्मक अन्तर्दृष्टि और पाठ्य)A

इस प्रकार विषय के संबंध में अनेक आयामों पर अध्ययन हुये हैं। राज्यसभा का द्वितीय उच्च सदन के रूप में अथवा तुलनात्मक द्वितीय सदनों के संदर्भ में अध्ययन हुये हैं संघात्मक

प्रणाली वाली राजनीतिक व्यवस्थाओं में हितार्थ सदन की उपादेयता व औचित्य पर भी कार्य हुये हैं। क्षेत्रीय दलों की भूमिका व उसके द्वारा नवीन परिवर्तनों पर भी शोध प्रपत्र प्रकाशित हुये हैं परन्तु एक संघात्मक देश में राज्यसभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव का परीक्षण व विश्लेषण करना निश्चित ही एक नये आयाम को उजागर करता है। जिस पर उपलब्ध अध्ययन भी नाममात्र ही हैं। संभवतः प्रस्तुत अध्ययन इस दिशा में महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

≈≈≈≈

आधुनिक राजनीतिक प्रणालियों में संघात्मक व्यवस्था सर्वाधिक प्रचलित व प्रजातान्त्रिक मानी जाती है। जिस प्रकार मध्य युग में शासन व्यवस्था का सामान्य प्रवाह सामन्त प्रथा की ओर था या 15वीं और 16वीं शताब्दियों में निरंकुश स्वेच्छाचारिता की ओर था, उसी प्रकार समकालीन राजनीतिक व्यवस्थाओं का प्रवाह संघात्मक व्यवस्था की ओर है। संघात्मक व्यवस्था की स्वीकार्यता का एक महत्त्वपूर्ण कारण उक्त व्यवस्था के अन्तर्गत इकाईयों को संघ के प्रदत्त प्रतिनिधित्व है। जिसके कारण इकाईयाँ अपने क्षेत्रीय चरित्र को कायम रखते हुये राष्ट्रीय शासन व्यवस्था में आसानी से समावेशित हो जाती है। संघात्मक शासन प्रणाली केन्द्र व राज्यों की समानता पर आधारित है तथा कुछ विभिन्नताओं के साथ प्रत्येक संघात्मक व्यवस्था राष्ट्रीय एकता व क्षेत्रीय स्वायत्तता के समन्वय को मूर्तरूप प्रदान करती है।

प्रस्तुत शोध कार्य का उद्देश्य भारतीय संघीय व्यवस्था के परिपेक्ष्य में राज्य सभा के विकास का परीक्षण करना है, अतः विश्व की अन्य संघात्मक व्यवस्थाओं का तुलनात्मक विश्लेषण शोध विषय को पूर्णता प्रदान करेगा तथा इससे निष्कर्षों को तथ्यपूर्ण प्रामाणिकता भी प्राप्त होगी। विश्व की प्रमुख संघात्मक व्यवस्थायें निम्न हैं।

तालिका संख्या 3

प्रमुख संघात्मक राजव्यवस्थायें –

(1) अर्जेंटाइना (23 प्रांत और 1 स्वायत्त नगर) (ब्यूनसआयर्स)

(2) आस्ट्रेलिया (06 राज्य और 3 भूक्षेत्र)

(3) आस्ट्रिया (09 राज्य)

(4) बेल्जियम (03 क्षेत्र और 03 भाषायी समुदाय)

(5) बोस्निया और हर्जेगोविना (बोस्निया और हर्जेगोविना का संघ रिपब्लिका)

(6) ब्राजील (26 राज्य और संघीय जिले)

(7) कनाडा (10 प्रांत और 3 भूक्षेत्र)

(8) कॉमोरॉस (अंजुआन , ग्रांडे कोमोर , मोहेली)

(9) इथोपिया (09 क्षेत्र और 02 चार्टर्ड नगर)

(10) जर्मनी (16 राज्य)

(11) भारत (29 राज्य और 7 संघीय क्षेत्र)

(12) इराक (18 प्रशासकीय इकाईयां और 01 क्षेत्र) (इराकी कुर्दिस्तान)

(13) मलेशिया (13 राज्य और 3 संघीय क्षेत्र)

(14) मैक्सिको (31 राज्य और 01 संघीय जिला) (मैक्सिको नगर)

(15) मिक्रोनेशिया के संघीक्त राज्य (चुंक, कोसराइ, पोहनपई और यप)

(16) नेपाल (14 ज़ोन)

(17) नाइजीरिया (36 राज्य और 01 संघीय भूक्षेत्र (संघीय राजधानी भूक्षेत्र))

(18) पाकिस्तान 4 प्रांत, 2 स्वायत्त क्षेत्र और 3 भूक्षेत्र)

(19) रूस (40 ओब्लास्ट्स, 21 रिपब्लिक, 09 क्रेस, 4 स्वायत्त ओक्रग्स, 02 संघीय नगर , 01 स्वायत्त ओब्लास्ट)

(20) सैंट किट्स और नेवीस (02 राज्य)

(21) दक्षिणी सूडान (10 राज्य)

(22) सूडान (17 राज्य)

(23) स्विट्जरलैण्ड (26 कैंटन)

(24) यूनाइटेड अरब अमीरात (7 अमीरात)

(25) यूनाइटेड स्टेट्स (50 राज्य , 01 कोरपोरेटेड क्षेत्र और 01 संघीय जिला (वाशिंगटन डी. सी.)

(26) वेनेजुएला (23 राज्य , 01 राजधानी जिला और 01 संघीय निर्भर क्षेत्र)

तुलनात्मक अध्ययन के अन्तर्गत उक्त राष्ट्रों में से प्रतिनिधि व्यवस्थाओं का चयन किया गया है। इनमें हैं संयुक्त राज्य अमरीका, भारत, स्विट्जरलैण्ड, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, पूर्व सोवियत संघ, जर्मनी, दक्षिण अफ्रीका, नाइजीरिया आदि। उपरोक्त संघों का तुलनात्मक विवेचन किसी संघात्मक व्यवस्था के सामान्य लक्षणों के आधार पर किया गया है। शोध हेतु चयनित विषय के अनुरूप ही तुलनात्मक विवेचन को विस्तार दिया गया है।

2.1 संघों का तुलनात्मक विवेचन

1. उद्देश्य की दृष्टि से

विभिन्न देशों में संघों का निर्माण विभिन्न उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुये किया गया है यद्यपि मौलिक उद्देश्य एक ही हैं। संघों का निर्माण वैदेशिक संबंध, राष्ट्रीय सुरक्षा आदि सामान्य हितों की देखभाल, राष्ट्रीय एकता की सुदृढ़ता के लिये तथा बड़े पैमाने पर राष्ट्रव्यापी आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं की सिद्धि के लिये किया जाता है। अमरीकी संविधान में संघ सरकार की स्थापना का प्रमुख कारण राष्ट्रीय एकता को प्राप्त करना, संकटकालीन परिस्थितियों का सामना करना था इसके अतिरिक्त भाषाओं, जातीय समस्याओं की विभिन्नता भी इसके कारण थे। भारतीय संघ की स्थापना के पीछे उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सर्वप्रमुख योगदान था। ब्रिटिश शासन काल से ही देश विभिन्न प्रान्तों में विभक्त था। 1935 ई. के अधिनियम द्वारा संघीय व्यवस्था की स्थापना की जा चुकी थी और देशी राज्यों के सम्मिलन के लिये संघीय व्यवस्था ही उपयुक्त थी, साथ ही भाषा, जाति, संस्कृति की विभिन्नता भी व्याप्त थी। पूर्व सोवियत संघ की स्थापना के पीछे राष्ट्रीयताओं की समस्या का प्रमुख हाथ था। विभिन्न राष्ट्रीयताओं की पृथक–पृथक सांस्कृतिक समस्याओं को सुलझाने के लिए संघीय व्यवस्था को ही अपनाया गया। स्विट्जरलैण्ड में संघीय राज्य की स्थापना के प्रमुख कारण अमेरिका के समान भाषा, जाति, संस्कृति आदि की अनेकरूपता तथा ब्रिटेन तथा स्पेन के समान साम्राज्यवादी प्रभाव तथा आर्थिक संकट से बचने का साधन है।[1]

अमेरिका के विपरीत कनाडा की संघीय व्यवस्था का उद्देश्य केन्द्रीकरण व शासन के एकीकरण की दिशा में एक शक्तिशाली साधन के रूप में कार्य करना है।[2] (Canada as a federal state in view of this country's constitution standing as a powerful weapon of centralisisn and veri unifying the Government)।

ऑस्ट्रेलियन संघीय व्यवस्था का उद्देश्य इकाइयों के बीच सहयोग स्थापित करना था। जर्मन फेडरल रिपब्लिक का उद्देश्य मानवीय गौरव, जन अधिकार, मौलिक अधिकार तथा सम्पूर्ण जर्मनी के लिये लोकतन्त्र था। आर्थिक सम्पन्नता सामाजिक सुरक्षा व आंतरिक स्थिरता भी उनके उद्देश्यों में शामिल थे। दक्षिण अफ्रीकी संघ, सहकारी संघवाद का प्रतिमान है जिनका उद्देश्य राष्ट्रीय एकता, शांति बनाये रखना और रिपब्लिक की वैयक्तिता बनाये रखना है। नाइजीरिया में संघीय व्यवस्था का उद्देश्य कानून व्यवस्था बनाये रखना तथा सुशासन है।

---

1. K.C. where : Federal Government, Pg. – 20 Greenwood Press ISBN — 0313227028 1 Oct. 1980
2. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह "तुलनात्मक शासन व राज." पृ.–116

2. संघ निर्माण की दृष्टि से

संघ निर्माण के साधारणतः दो तरीके हैं–सम्मिलन (Integration) और पृथक्करण (Disintegration) प्रथम प्रक्रिया के अनुसार स्वतंत्र राज्य स्वेच्छा से कतिपय सामान्य हितों की पूर्ति के लिये संघ का निर्माण करते हैं।

द्वितीय–प्रक्रिया के अनुसार एकात्मक राज्यों को तोड़कर स्वतंत्र इकाइयों का निर्माण किया जाता है और कुछ विषयों में उन्हें स्वतंत्र अधिकार दे दिया जाता है, संयुक्त राज्य अमेरिका में संघ निर्माण के पूर्व संयुक्त–राज्य में 13 स्वतंत्र राज्य थे जिनका एक राज्यमण्डल (Confedeation) था। इन्हीं राज्यों ने 1787 ई. में संगठित होकर संघ का निर्माण किया।

अमेरिका की तरह स्विटजरलैण्ड में भी संघ–निर्माण के पूर्व राज्यमण्डल था। स्विस संघ के विषय में संविधान की धारा 13 में कहा गया है कि सोवियत समाजवादी संघ का निर्माण राज्यों के सम्मिलन एवं पृथक्करण के सिद्धांत के आधार पर हुआ है। विभिन्न देशी राज्य भारत संघ में सम्मिलन की प्रक्रिया के द्वारा सम्मिलित हुये हैं परन्तु भारत ब्रिटिश शासनकाल में 1935 के भारत–शासन अधिनियम के पूर्व एकात्मक राज्य था जिसमें अनेक प्रांत थे। ये प्रांत संघ में पृथक्करण के आधार पर सम्मिलित हुये।

कनाडा का संघ भी सम्मिलन तथा पृथक्करण दोनों ही प्रक्रियाओं के मेल से बना है। 1867 का ब्रिटिश नार्थ अधिनियम स्पष्टतः कहता है कि "Where as the provinces of Canada, Novascoha and New Prunsurck have expressed their desire to be federally united into one domanion and where as such a Union canduce to the welfere of the provinces."[1] कनाडियन संघ के अंतर्गत 10 राज्य हैं।

जर्मन संघ के अंतर्गत इकाईयों (लैंडर) में से कुछ पुनर्गठित तथा कुछ आंशिक रचित हैं जिन्हें द्वितीय महायुद्ध के बाद बनाया गया। वहां कुल 16 लैंडर हैं। दक्षिण अफ्रीका में 31 मई 1910 को चार ब्रिटिश अधीन प्रदेश थे जो कि संघ बनाते हुये ब्रिटिश क्राउन के अन्तर्गत एक डोमेनियन में विलय हो गये। 1931 में ब्रिटिश संसद ने उसे ब्रिटिश कॉमनवेल्थ के अन्तर्गत स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में यूनियन की मान्यता दी।

31 मई 1961 को देश के गोरे लोगों के जनमत संग्रह के द्वारा यह देश रिपब्लिक बन गया तथा कॉमनवेल्थ से पृथक हो गया। इस प्रकार मूलतः दक्षिण अफ्रीका सम्मिलन व पृथक्करण की प्रक्रिया द्वारा संघ बना।

---

1. J.C. Johri, select world constitution, pg.-483

नाईजीरिया ने एक अक्टूबर 1960 को औपनिवेशिक शासन से स्वतन्त्रता प्राप्त की और एक स्वतन्त्र सम्प्रभु राज्य बना। 1963 में राष्ट्रमण्डल के संविधान के अनुच्छेद 3 में कहा गया है कि नाइजीरिया एक अविभाज्य और अटूट सम्प्रभु संघीय राज्य है, जिसे नाइजीरिया का 'संघीय गणतन्त्र' का नाम प्राप्त हुआ जिसमें 36 राज्य और आसुजा का संघीय राजधानी क्षेत्र सम्मिलित है। इस प्रकार वहाँ पृथक्करण की प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप संघ बना।

3. अधिकार विभाजन की दृष्टि से

संघीय संविधान में शक्ति वितरण की दो प्रमुख विधियाँ हैं। प्रथम, संविधान में केन्द्र की शक्तियाँ उल्लिखित रहती हैं और अवशिष्ट शक्तियाँ राज्य को प्राप्त हो जाती है। संयुक्त राज्य अमरीका में प्रथम पद्धति को अपनाया गया है। शक्तिकरण के सम्बन्ध में अमरीकी संघ के तीन आधारभूत तत्व उल्लेखनीय हैं। प्रथम संघ सरकार को सिर्फ वे शक्तियाँ प्राप्त हैं जो प्रत्यायोजित या निहित हैं। संविधान की धारा 1 खण्ड 8 में संघ सरकार की शक्तियों की परिगणना की गई है। 10वें संशोधन द्वारा इसे अधिक स्पष्ट किया गया है। "संविधान द्वारा जो शक्तियाँ संयुक्त राज्य को प्रत्यायोजित नहीं की गई हैं तथा जिसका उसके द्वारा राज्यों के लिये निषेध नहीं किया गया है वे राज्यों अथवा जनता के लिये सुरक्षित रहेंगी।"[1]

द्वित्तीय राज्य सरकारों की शक्तियाँ संविधान में उल्लिखित नहीं है, लेकिन वे मौलिक, अन्तर्वत्ती और मुख्यतः अपरिभाषित है।

तृतीय किसी भी सरकार को असीमित अधिकार प्राप्त नहीं हैं।

पूर्व सोवियत संघ और स्विट्जरलैण्ड में प्रथम प्रक्रिया को प्रश्रय दिया गया है। इन देशों में अवशिष्ट शक्तियों को राज्य सरकारों को सौंप दिया गया है। कनाडा की तरह भारत में द्वित्तीय रीति को अपनाया गया है। संविधान में संघ व राज्य की शक्तियाँ केन्द्रीय सूची और राज्य सूची में उल्लिखित हैं। एक तीसरी सूची भी है– समवर्ती सूची जिस पर दोनों सरकारों का समान अधिकार है, लेकिन अवशिष्ट शक्तियाँ केन्द्र को दी गई हैं।

कनाडियन संघ का स्तर डोमीनियन का है और ब्रिटिश महारानी को अभी भी विशेषाधिकार प्राप्त है। कनाडा के संघ में शक्ति वितरण हेतु दो सूचियाँ है एक अधिराज्य के लिये और दूसरी प्रांतों के लिये। अवशिष्ट शक्तियाँ अधिराज्य में निहित हैं। अमेरिका के विपरीत संघीय सरकार अत्याधिक शक्तिशाली है। कुछ महत्त्वपूर्ण मामलों में संघ को हस्तक्षेप करने का अधिकार है। यद्यपि 1982 के संवैधानिक अधिनियम द्वारा राज्यों को उनके प्राकृतिक संसाधनों पर व्यापक अधिकार दिये गये हैं।

---

1. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह पूर्वोक्त, पृ.–113

दक्षिण अफ्रीका के सहकारी संघ के अंतर्गत अन्य संघीय संविधानों से भिन्न विलक्षण व्यवस्था है जिसके अनुसार शासन के तीनों स्तर–केन्द्रीय, प्रांतीय व स्थानीय–विशिष्ट, अंतनिर्भर व अंतर्संबंधित है। जिनका लक्ष्य शांति, राष्ट्रीय एकता व रिपब्लिक की वैयक्तिता बनाये रखना है।

नाइजीरिया के संविधान के द्वारा संघ और राज्यों के बीच दो सूचियों के माध्यम से शक्तियों का विभाजन किया गया है। प्रथम–एकमेव विधायी सूची और द्वितीय–समवर्ती विधायी सूची एकमेव विधायी सूची के विषयों पर संघीय सरकार को ही सर्वोच्चता की स्थिति प्राप्त है तथा समवर्ती सूची पर राष्ट्रीय व राज्यीय सरकारों को निर्णय करने की शक्ति प्राप्त है लेकिन आपसी विरोध की स्थिति में संघ को सर्वोच्चता प्राप्त है। कानून व्यवस्था और सुशासन का दायित्व संघ को प्राप्त है।

आस्ट्रेलिया की संघात्मक व्यवस्था में भी केन्द्र तथा राज्यों में शक्तियों का विभाजन स्पष्ट रूप से किया गया है, अन्य संघात्मक देशों की भांति ऑस्ट्रेलिया में केन्द्र सरकार के आदेशों को प्राथमिकता दी जाती है। परन्तु अमरीका के विपरीत ऑस्ट्रेलिया में गवर्नर जनरल के रूप में एकात्मक व्यवस्था के दर्शन होते हैं, वास्तव में समस्त शक्तियाँ गवर्नर जनरल में ही केन्द्रीभूत रहती हैं, निकोलस के विचार से अंग्रेजी भाषा भाषी संसार के संघात्मक राज्यों में ऑस्ट्रेलिया के संघ इस बात में समान है कि संविधान द्वारा संघ को कुछ शक्तियाँ सौंपी गई हैं और अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों अथवा जनता में निहित हैं और साथ ही न्यायिक शक्ति की रचना में भी। यह कनाडा से इस बात में मिलता है कि उसने उत्तरदायी शासन के तन्त्र को संघात्मक पद्धति के अनुरूप बनाने का प्रयत्न किया है। परन्तु कनाडा के संघ से शक्तियों के विभाजन और केन्द्रीय सत्ता को नई शक्तियाँ सौंपने के ढंग में भिन्न है। प्रतिषेध की शक्ति के बारे में भी जिसका प्रान्तों के कानूनों पर केन्द्रीय सत्ता प्रयोग कर सकती है और न्यायिक पद्धति में भी कनाडा के संविधान से भिन्न है।

जर्मन संघ के अंतर्गत भी केन्द्र व राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण किया गया है। अनुच्छेद 73 केन्द्र की शक्तियों से संबंधित है अनुच्छेद 74 का संबंध केन्द्र व राज्य से है यद्यपि विवाद की स्थिति में केन्द को सर्वोच्चता प्राप्त है अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों के पास हैं।

4. एककों का संविधान

अमेरिका और स्विट्जरलैण्ड के एककों का अपना पृथक संविधान है। संयुक्त राज्य अमेरिका में राज्यों को इच्छानुसार अपने संविधान में संशोधन करने का अधिकार है, लेकिन उनपर दो प्रतिबंध है– संविधान गणतंत्रात्मक होना चाहिये तथा उसे संघीय विधियों के प्रतिकूल नहीं होना चाहिये। स्विट्जरलैण्ड में भी कैंटनों का निजी संविधान हैं लेकिन इस संबंध में उन

पर तीन प्रतिबंध है। अमरीकी प्रतिबंधों के अतिरिक्त तीसरा प्रतिबंध है, कैंटनों का संविधान जनता द्वारा स्वीकृत तथा संशोधित होना चाहिए। सोवियत संघ के एककों का पृथक संविधान नहीं है। भारत में भी जम्मू–काश्मीर को छोड़कर सोवियत रूस की सी स्थिति है।

जर्मन संघ में प्रत्येक इकाई (लैण्ड) का अपना संविधान है जो कि जर्मनी के बेसिक लॉ (संघीय संविधान) के अनुरूप होना अनिवार्य है और इकाई उसे संशोधित कर सकती है। प्रत्येक इकाई की नागरिकता के अपने कानून है।

दक्षिण अफ्रीकी संघ का संविधान देश का सर्वोच्च कानून है। भारतीय संविधान की तरह केन्द्रीय, प्रान्तीय एवं स्थानीय सरकारों का प्रबंधन इसमें निहित है। संविधान संशोधन में प्रांतीय सहमति कम से कम (6 प्रांतों की) अनिवार्य है।

5. नया राज्य–निर्माण और सीमा परिवर्तन

संयुक्त राज्य अमेरिका में वर्तमान एककों की सीमाओं में परिवर्तन करने अथवा किसी राज्य के क्षेत्र में नया राज्य बनाने का अधिकार कांग्रेस को प्राप्त नहीं है। इसके लिये संबंधित राज्य अथवा राज्यों की स्वीकृति प्राप्त करना अनिवार्य है। इसी प्रकार स्विट्जरलैण्ड में भी एककों की सीमा में परिवर्तन करने का अधिकार संघ को नहीं है, एककों की स्वीकृति आवश्यक है। इसके विपरीत भारतीय संसद राज्यों की इच्छा के अभाव में भी उनकी सीमाओं में परिवर्तन कर सकती है, नवीन राज्यों का निर्माण कर सकती है और किसी राज्य का अस्तित्व मिटा सकती है। पूर्व सोवियत संघ में भी संघीय सरकार को यह अधिकार प्राप्त था।

दक्षिण अफ्रीकी संविधान के अंतर्गत भी प्रांतीय सीमाओं, शक्तियों, कार्यों व संस्थाओं तथा किसी प्रांत विशेष के मामले में परिवर्तन करने हेतु राष्ट्रीय सभा के साथ 6 प्रान्तों की सहमति भी आवश्यक है।

6. एककों की समानता

संघात्मक व्यवस्था में सभी एककों के साथ समानता की अपेक्षा होती है। संयुक्त राज्य अमेरिका में एककों को समानता प्राप्त है। सभी–राज्य समस्तरीय है। सीनेट में प्रत्येक राज्य को दो सदस्य भेजने का अधिकार है। स्विस संघीय व्यवस्था में भी एककों को समानता के सिद्धान्त पर स्वीकार किया गया है। लेकिन उनकी दो श्रेणियाँ है– पूर्ण कैण्टन और अर्द्ध कैण्टन भारत में भी राज्य समस्तरीय है। यहाँ दो तरह की इकाइयाँ है–राज्य और केन्द्र प्रशासित क्षेत्र। जहाँ अमेरिका में राज्यों को संघीय उच्च सदन में समानता के सिद्धांत के आधार पर प्रतिनिधित्व मिलता है, भारत में संघीय उच्च सदन में समानता के आधार पर नहीं अपितु जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया गया है। पूर्व सोवियत संघ में एककों की पांच श्रेणियाँ थीं और संघीय उच्च सदन में प्रत्येक श्रेणी का प्रतिनिधित्व पृथक–पृथक तथा निश्चित था।

दक्षिण अफ्रीकी संघ में सभी इकाइयाँ समान है। सभी इकाइयों के अधिकार समान है। सरकार के तीनों स्तर केन्द्रीय, प्रांतीय और स्थानीय तीनों अंतर्निभर, अंतर्संबंधित एवं विशिष्ट है।

ऑस्ट्रेलिया संघ के अंतर्गत इकाइयाँ सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से विभिन्नता लिये हुये हैं। इसके बावजूद ऑस्ट्रेलिया का झुकाव पृथक राज्य और संघीय चरित्र को बनाये रखना है जो उन्हें प्रतिवादों एवं समझौतों के माध्यम से समायोजन को प्रेरित करता है, ज्वाइंट काले बोर्ड तथा प्रीमीयर कांफ्रेंस जैसी उपयोगी संस्थायें भी हैं। The result is a process of compromise, sometimes friendly more often bitter and grudging. (परिणाम यह है कि समझौतों की प्रक्रिया, कभी–कभी मित्रवत प्रायः कटु तथा असंतोषजनक होती है।)

जर्मनी संघ में भी इकाइयों की समानता पाई जाती है, नाइजीरिया में 36 राज्य एवं एक संघीय राजधानी क्षेत्र शामिल है।

7. संविधान की सर्वोच्चता तथा दुष्परिवर्तनशीलता

सभी संघ राज्यों के संविधान लिखित हैं लेकिन सर्वोच्चता और परिवर्तनशीलता में भिन्नता हैं संयुक्त राज्य अमेरिका में संविधान की सर्वोच्चता के सिद्धान्त को अपनाया गया है। स्विट्जरलैण्ड में विधायिका की सर्वोच्चता को स्वीकार किया गया है। भारत में दोनों का सामंजस्य है संविधान की सर्वोच्चता तथा संसदीय सर्वोच्चता का समन्वय किया गया है। पूर्व सोवियत संघ में संविधान सर्वोच्च नहीं था क्योंकि वह साम्यवादी दल का एक राजनीतिक कार्य–साधक मात्र था। जहाँ तक संविधान की दुष्परिवर्तनशीलता का प्रश्न है, संयुक्त राज्य अमेरिका और स्विट्जरलैण्ड में संविधान दुष्परिवर्तनशील संविधान की श्रेणी में आते हैं, क्योंकि अमेरिका में तीन–चौथाई राज्यों की विधायिका सभाओं या कन्वेंशन द्वारा और स्विटजरलैण्ड में जनमन–संग्रह द्वारा अनुसमर्थन आवश्यक है। भारत का संविधान नम्यता और अनम्यता का अपूर्व सम्मिश्रण है। पूर्व सोवियत संघ का संविधान नम्य था, क्योंकि सर्वोच्च सोवियत 2/3 बहुमत से इसमें संशोधन करती थी।[1]

कनाडा का संविधान लिखित व निर्मित है। जिसका निर्माण ब्रिटिश संसद द्वारा ब्रिटिश नार्थ अमेरिका अधिनियम 1867 के रूप में किया गया जिसके अनुसार ब्रिटिश संसद कनाडियन संसद के निवेदन पर ही कोई संशोधन करती है। 1982 के संशोधन द्वारा संविधान संशोधन के विषय में कनाडा की संसद को अंतिम प्राधिकार दे दिया गया है, यह कठोरता व नम्यता का मिश्रण है जहाँ संशोधन प्रक्रिया को चार श्रेणियों में रखा गया है।

---

1. J.D.B. Miller Austrian Government and Politics, Pg.-139

ऑस्ट्रेलिया का संविधान भी निर्मित, लिखित व कठोर है। यहाँ भी संघात्मक व्यवस्था के अनुरूप संविधान को सर्वोच्चता प्रदान की गई है। ब्रिटिश संसद तथा निर्मित संविधान में संशोधन प्रक्रिया विशेष प्रकार की है। जर्मन संविधान संसदीय कौंसिल द्वारा निर्मित है तथा संशोधन प्रक्रिया विशिष्ट होने के कारण कठोर संविधान की श्रेणी में आता है। जापान के संविधान की तरह यह शांति का प्रलेख है।

दक्षिण अफ्रीकी संविधान संघीय व्यवस्था के अनुरूप निर्मित लिखित व कठोर संविधान है। यह रिपब्लिक का सर्वोच्च कानून है। संशोधन प्रक्रिया विशेष है। कुछ विशिष्ट मामलों में राष्ट्रीय सभा के साथ ही कम से कम 6 प्रांतों का मत भी अपरिहार्य है।

नाइजीरिया संघीय गणतंत्र के संविधान के अनुच्छेद (1) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि संविधान सर्वोच्च तथा इसके प्रावधान नाइजीरिया संघीय गणतंत्र में सभी व्यक्तियों पर और सत्ताओं पर बाह्यकारी होंगे। इस अनुच्छेद की उपधारा (2) में कहा गया है कि नाइजीरिया का शासन इस संविधान के अनुसार संचालित होगा तथा उपधारा (3) में इसी बात को और अधिक स्पष्ट करने हेतु तथा ढाल देते हुये यह कहा गया है कि यदि कोई कानून इस संवधिान के प्रावधानों के प्रतिकूल होगा, तो वह कानून नहीं वरन इस संविधान के प्रावधान लागू होंगे तथा यह कानून जिस सीमा तक संविधान के प्रतिकूल है उस सीमा तक अवैध होगा।

8. स्वतंत्र व सर्वोच्च न्यायपालिका

अधिकारों के विभाजन के कारण संघ और राज्य सरकारों में विवाद होने तथा अधिकार क्षेत्रों के अतिक्रमण का भय सदा बना रहता है। संघीय संविधान की सर्वोच्चता का दायित्व भी न्यायपालिका का होता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में सर्वोच्च न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन का अधिकार प्राप्त है। स्विट्जरलैण्ड और पूर्व सोवियत संघ में सर्वोच्च न्यायालय को यह अधिकार प्राप्त नहीं है।

कनाडियन संघीय व्यवस्था में सर्वोच्च न्यायालय को संघीय व प्रांतीय सरकारों के बीच 'एम्पायर' का कार्य सौंपा गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति का प्रयोग करते हुए संविधान के संरक्षक का कार्य किया है तथा संघीय व प्रांतीय सरकारों के बीच सद्भावपूर्ण संतुलन कायम किया है।[1]

---

1. जे.सी. जौहरी, पूर्वोक्त, पृ.–475

दक्षिणी अफ्रीकी संघ के अंतर्गत रिपब्लिक का न्यायिक प्राधिकार संवैधानिक न्यायालय, अपील के सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालयों तथा एवं मजिस्ट्रेट न्यायालयों तथा ऐसे न्यायालयों में अवस्थित हैं जिन्हें संसद कानून द्वारा बनाये। संवैधानिक न्यायालय का निर्णय अंतिम माना जाता है।

अमरीकी संवैधानिक प्रणाली की भाँति ऑस्ट्रेलिया के उच्च न्यायालय को न्यायिक पुनरावलोकन की शक्ति प्राप्त है। संघीय व राज्यों के कानूनों में उत्पन्न विवादों में उनका निर्णय अंतिम हैं। संविधान के निर्वचन का अधिकार भी उसे प्राप्त है यद्यपि इसके विरुद्ध अपील इंग्लैण्ड की प्रिवीकौंसिल में हो सकती है, तथापि ऐसा बहुत ही कम होता है। उच्च न्यायालय संविधान का संरक्षक है परन्तु अमरीकी सर्वोच्च न्यायालय जितना शक्तिशाली नहीं है।

संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, जापान एवं भारत में स्वतन्त्र व सर्वोच्च न्यायिक संगठन देश की कानून व्यवस्था के संरक्षक होने के साथ कानून की व्याख्या भी करते हैं। J.R. Mallory का निम्न कथन उक्त तथ्य को कनाडियन संघात्मक व्यवस्था के सन्दर्भ में स्पष्ट करता है।

"While the relations between the federal Government and the provisions of the confederation were essentially the Colonial model of superior and subordinate it was clear that the courts saw the relationships in a more federal form in which the provinces were within their jurisdiction, the equals of the dominion."[1]

जर्मनी में यह अधिकार संघीय संवैधानिक न्यायालय को दिया गया है। ऑस्ट्रेलिया में भी संविधान की सर्वोच्चता व संरक्षण का दायित्व उच्च न्यायालय को दिया गया है, परन्तु गवर्नर जनरल की विशेष स्थिति उसे अमेरिका की व्यवस्था से भिन्न बना देती है। नाइजीरिया के संविधान द्वारा अनु. (i) व (ii) में उल्लिखित तत्वों अर्थात संविधान की सर्वोच्चता एवं नाईजीरिया के संघीय गणतन्त्र दोनों की रक्षा का दायित्व सर्वोच्च न्यायालय को दिया गया है। जो कि न्यायिक पुनरावलोकन के अधिकार के अन्तर्गत आता है।

2.2 द्वैध शासन व्यवस्था

संघात्मक शासन का एक आयाम दोहरी शासन व्यवस्था भी है संयुक्त राज्य अमेरिका एक आदर्श संघ राज्य है। वहाँ दोहरी नागरिकता, दोहरी न्यायपालिका तथा दोहरा प्रशासन तंत्र है। स्विट्जरलैण्ड में भी यही व्यवस्था है।

---

1. J.R. Mallory : "The struture of the Canadian Government", pg.-341

पूर्व सोवियत संघ में पृथक–पृथक व्यवस्थायें थीं लेकिन साम्यवादी दल की केन्द्रीभूत स्थिति के कारण ये महत्वहीन थी। भारत में राष्ट्रीय एकता और एकरूपता के उद्देश्य से एक नागरिकता तथा एक न्यायपालिका का प्रावधान है। जर्मन संघीय व्यवस्था के अंतर्गत प्रत्येक प्रांत (लैंड) की नागरिकता के अपने कानून हैं। कनाडियन संघ में भी केन्द्र तथा प्रान्तों की सरकारें हैं। उनका आधार 1867 का ब्रिटिश नॉर्थ अमेरिका अधिनियम है जो कनाडा के संविधान के रूप में कार्य करता है। संविधानतः केन्द्र तथा प्रान्तीय सरकारें एक दूसरे के अधीन नहीं बल्कि समस्तरीय है। इस प्रकार मूलतः कनाडियन संविधान में दोहरी शासन व्यवस्था पाई जाती है।

ऑस्ट्रेलिया में भी संघीय एवं प्रान्तीय सरकारें हैं। 1975 तक जो संघ असन्तुष्ट इकाइयों का (Cocercive federation) था वह नवीन संघ के रूप में बेहतर संयोजन है। इसी प्रकार दक्षिण अफ्रीका की सहकारी संघ प्रणाली में द्वैध शासन व्यवस्था है तथा इकाइयाँ अंतर्निर्भर है। नाइजीरिया में भी 36 प्रान्त व 1 संघीय राजधानी क्षेत्र हैं।

निष्कर्ष

संघों के तुलनात्मक विवेचन से स्पष्ट है कि संयुक्त राज्य अमेरिका का संघ एक 'आदर्श संघ' है। यहाँ राष्ट्रीय एकता और सुरक्षा, राज्यों की स्वतन्त्रता और सार्वभौमिकता पर समान रूप से जोर दिया गया है। फिर भी केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति प्रबल है। स्विट्जरलैण्ड में भी संघ की शक्तियों में अपार वृद्धि हो रही है। भारत में तो संविधान द्वारा ही ऐसी व्यवस्था की गयी है कि केन्द्र शक्तिशाली रहे और राज्यों की सार्वभौमिकता पर केन्द्र का नियन्त्रण रहे। इसे स्वयंभू संघ कहा गया है। सोवियत संघ में एकदलीय प्रथा के कारण इकाइयों की स्थिति नगण्य थी, उन्हें राजनीतिक स्वायत्तता प्राप्त नहीं थी, इसीलिए ऑग और जिंक ने कहा है कि– "वस्तुतः यह व्यवस्था किसी भी अर्थ में संघात्मक नहीं है।"[1]

कनाडियन अधिराज्य में पायी जाने वाली एकात्मक संविधान की प्रवृत्तियाँ प्रमुख स्थान रखती हैं, जैसे प्रान्तीय सूची का नगण्य होना, अवशिष्ट शक्तियों का केन्द्रीय सरकार को सौंपा जाना, संघीय सरकार को प्रान्तीय विषयों पर निषेधाधिकार प्राप्त होना, द्वितीय सदन में सभी प्रान्तों को समान प्रतिनिधित्व प्राप्त न होना, प्रान्तीय गर्वनरों की अधिराज्य सरकार द्वारा नियुक्ति आदि के कारण अधिकांश संविधानवेत्ता इसे पूर्णतः संघीय न मानकर अर्द्धसंघीय मानते हैं। लेकिन इनके बावजूद कनाडा का संविधान मूलतः संघात्मक हैं।

---

1. डॉ. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह, पूर्वोक्त पृ.–117

दक्षिणी अफ्रीकी संघ 'सहकारी संघवाद' का प्रतिमान है। जिसमें सरकार के सभी क्षेत्रों एवं राज्य के समस्त अंगों को शांति, राष्ट्रीय एकता और रिपब्लिक की वैयक्तिकता बनाये रखना है। एक संघीय प्रणाली की प्रमुख समस्या अलगाववादी प्रवृत्तियों को नियंत्रित रखना है। इस दृष्टि से दक्षिण अफ्रीकी संविधान एककों को यूनियन छोड़ने की अनुमति देता है, साथ ही उसके पास क्रियान्वयन हेतु योग्य मशीनरी भी है जो देश को एकजुट रख सके। अतः वह संयुक्त राज्य अमेरिका की तरह अविनाशकारी राज्यों का अविनाशकारी यूनियन बन गया है।[1]भारतीय संघ की कुछ संस्थाओं जैसे वित्त आयोग, अंतर्राज्यीय परिषद, राष्ट्रीय विकास परिषद, राज्यपालों व मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन की तरह दक्षिण अफ्रीकी संघ में वार्षिक प्रीमियर कांफ्रेंस, केन्द्र राज्य संबंधों को सामान्य बनाये रखने का कार्य करती है।

ऑस्ट्रेलियन संघ प्राकृतिक या 'गैर–सरकारी' संघवाद का प्रतिमान है। यहाँ धर्म, भाषा, संस्कृति की खाइयाँ चौड़ी नहीं है। जिससे संघीय प्रणाली में समायोजन की प्रवृत्ति आसान है। कम आबादी होने से स्थानीयता की भावना भी मजबूत है। यह सहकारी संघवाद के सिद्धान्त को क्रियान्वित करता है। यहाँ कई उपयोगी संस्थायें हैं जो केन्द्र राज्य संयोजन बनाये हुये है। जैसे ज्वाइंट कोल बोर्ड। ऑस्ट्रेलिया के लोग व राजनेता राज्यों की स्वायत्तता से अधिक संघीय प्रणाली को प्रभावी प्रशासन का प्रतीक मानते है। आस्ट्रेलियन संघ–संयोजन, सहयोग, संघर्ष और नवीन सहयोग के चार चरणों को पार करता हुआ केन्द्रीकरण की सामान्य प्रवृत्ति तक आ पहुंचा है।[2]

जर्मन संघ को 'केन्द्रीकृत' संघ कहा जाता है। प्रथम केन्द्र का कानून राज्यों पर भी लागू होना, द्वितीय राज्य केन्द्र के निर्देश मानने हेतु बाध्य है, तीसरे केन्द्र को अधिकार है कि कानूनी एवं आर्थिक एकता बनाये रखने हेतु किसी भी क्षेत्र के लिये कानून बना सकता है। चतुर्थ समवर्ती मामलों पर केन्द्र का हस्तक्षेप करने का अधिकार गलत हो ही नहीं सकता। पांचवे संघीय संवैधानिक न्यायालय को केन्द्रीय कानून के विपरीत किसी भी लैंड (इकाई) के कानून को समान करने का अधिकार है। इनके बावजूद जर्मन विधायक अपने संघ को अपनी संस्कृति व राष्ट्रीय परम्पराओं के अनुरूप पाते हैं। प्रथम संघवाद के लिये जिन विघटनकारी प्रवृत्तियों से खतरा होता है, वे यहाँ बहुत ही कम होता है।

द्वितीय यहाँ संघीय परिषद मूलभूत रूप से संघीय ढांचे व राज्यों की सहभागिता के बीच शक्ति संतुलन बनाने का कार्य करता है।

---

1. J.C. Johri, select world constitution, pg.-618

2. पूर्वोक्त, पृ.–617

नाईजीरिया में संविधानवाद अर्थात् सीमित शासन की धारणा अपनी जड़ें नहीं जमा पायी है और संविधानवाद के बिना संघात्मक व्यवस्था स्वाभाविक रूप से अपना कार्य नहीं कर सकती है। नाईजीरियन संघ राज्य में संघीय केन्द्रीकरण की स्थिति और प्रवृत्ति बहुत अधिक प्रबल रूप से है।

स्विट्जरलैण्ड में न्यायपालिका की प्रधानता के अतिरिक्त सभी संघीय लक्षण विद्यमान है। संविधान के अनु.3 में कहा गया है कि– "संघीय संविधान की सीमाओं के अंतर्गत कैण्टन प्रभुता संपन्न हैं।" लेकिन व्यवहार में केन्द्र की स्थिति ही सर्वोच्च है। कैण्टन का कानून संघीय कानून के विरुद्ध नहीं होना चाहिये, कैण्टनों का अंतर्राष्ट्रीय स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं है, सभी संप्रभु शक्तियाँ केन्द्र के पास है। लेकिन उक्त विवेचन का अर्थ यह नहीं कि कैण्टन केवल संवैधानिक शून्य मात्र है। वास्तव में कैण्टन ही संघ के आधार है। नागरिकों के जीवन में संघ की अपेक्षा कैण्टनों का प्रभाव ही अधिक व्यापक है। ब्रुक्स के शब्दों में– "प्रत्येक कैण्टन सक्रिय राजनीतिक जीवन का केन्द्र है।"[1] कालांतर में संघ की शक्तियों में वृद्धि हुई है। उसमें कैण्टनों को भी हिस्सा मिला है।

गत वर्षों में संघीय सरकार की शक्तियों में वृद्धि हुई है और उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। इसके लिये उत्तरदायी कुछ कारक सामान्य है तथा कुछ विशिष्ट है। प्रायः चार बातों ने केन्द्रीयकरण की दिशा में मुख्य रूप से प्रभाव डाला है– युद्ध, आर्थिक अवसाद, सामाजिक सेवाओं के लिये निरंतर बढ़ती हुई मांग और यातायात के साधनों तथा उद्योग में यन्त्रीकरण और औद्योगिक क्रांति वर्तमान काल में वैज्ञानिक आविष्कारों एवं अनुसंधानों ने इस प्रवृत्ति को बढ़ाया है। राज्यसत्ता का केन्द्रीयकरण एक कल्याणकारी राज्य की अनिवार्य दशा है।

2.3 भारतीय संघात्मक व्यवस्था का विकास व राज्य सभा

लोकतन्त्र व संघवाद भारतीय संवैधानिक संरचना के प्रमुख संस्थान हैं। संघवाद केन्द्र व राज्यों के बीच शक्ति के वितरण को सुनिश्चित करता है, जबकि लोकतंत्र शक्ति के प्रयोग में जन भागीदारी को सुनिश्चित करता है।[2] भारत में स्वतन्त्रता के बाद से ही संघात्मक व्यवस्था को अपनाने के विषय में आम सहमति थी। संविधान सभा में संघात्मक व्यवस्था को अपनाने के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं था, परन्तु किस प्रकार की संघात्मक व्यवस्था को अपनाया जाये इस प्रश्न को लेकर कुछ तीव्र मतभेद अवश्य सामने आये।[3]

---

1. ब्रुक्स, उद्धृत, वीरकेश्वर प्रसाद सिंह, पूर्वोक्त, पृ.–121
2. Garner W.J. ; Pol. Science and Government 2nd Indian Edition; Pg.-348
3. Jera B.B. ;Contradictions of Equal soverignities in India: An article in Indian Journal of Pol. Science : Vol III no.1 1962 pg.-71

अंततः राष्ट्र के भौगोलिक विस्तार, जनसंख्या तथा सामाजिक–आर्थिक विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुये, भारतीय मान्यता 'अनेकता में एकता' को कार्यान्वित करते हुये संघात्मक व्यवस्था को कुछ एकात्मक तत्वों के समावेश के साथ अपनाया गया। संविधान निर्माताओं ने भी स्वीकार किया कि भारतीय संविधान पूर्णतः संघात्मक संविधान की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

"But strictly speaking and applying the test more closely we see that neither historical antecedents nor the socioeconomic condition nor even the essential federal principle in reality, exist in this constitution and we cannot call it at all a federal constitution in the strict sense."[1] (परन्तु यदि कठोरता से कहें तथा नजदीक से परीक्षण करें तो हम देखते हैं कि वास्तव में न तो ऐतिहासिक प्रमाण है, न ही सामाजिक–आर्थिक दशायें, यहां तक कि आवश्यक संघीय सैद्धांतिक आधार भी इस संविधान में नहीं है और कठोर अर्थों में हम इसे संघीय संविधान बिल्कुल नहीं कह सकते।) भारतीय संघात्मक व्यवस्था विकास क्रम में अपने मूल रूप से परिवर्तित होती रही है। इसके कुछ स्वाभाविक कारण रहे हैं जिनमें सर्वप्रमुख है केन्द्र–राज्य सम्बन्धों का तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप परिभाषित किया जाना। केन्द्र राज्य सम्बन्ध राजनीतिक बाध्यताओं जैसे कि गठबन्धन सरकारों से प्रभावित होकर भी संघात्मक व्यवस्था के मूल स्वरूप में परिवर्तन का कारण बनते हैं।

भारत में संघीय विचारधारा का क्रमिक विकास ब्रिटिश शासनकाल में ही प्रारम्भ हो गया था। यद्यपि ब्रिटिश शासकों ने स्वहित के लिये भारत में विदेशी राज्य की सुरक्षा और दृढ़ता के दृष्टिकोण से एकात्मक व्यवस्था को अपनाया। यह व्यवस्था व्यवहारतः पूरे ब्रिटिश शासनकाल तक कायम रही। यहाँ तक की ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों को (यद्यपि दोनों एक ही भूखण्ड के अंग थे) एक राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत नहीं रखा गया। सरकारी तौर पर संघीय व्यवस्था का बीजारोपण लॉर्ड मेयो (1870) की विकेन्द्रीकरण की नीति में पाया जाता है। औपचारिक रूप से 1918 में सर्वप्रथम मांटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट ने अप्रत्यक्ष रूप से संघीय व्यवस्था के पक्ष में अपना मत प्रकट किया।

उक्त रिपोर्ट में प्रस्ताविक द्वैध शासन प्रणाली ने संघीय विचारधारा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

---

1. K.B. Rao : Parliamentary Democracy in India : pg.-224

मांटेग्यू चेम्सफोर्ड, भारत शासन अधिनियम (1919) द्वारा राज्यों में द्वैध शासन की व्यवस्था की गई। यह भारत में उत्तरदायी सरकार का पहला आंशिक प्रयोग था। इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों की व्यवस्थापिकाओं को सीमित आर्थिक अधिकार प्रदान किये गये। (पूर्व में 1861 में इन्हें विधायन सम्बन्धी अधिकार प्रदान किये गये थे) प्रान्तीय शासन को दो भागों में बांटा गया– हस्तांतरित विषयों के प्रशासन हेतु प्रान्तीय विधानमण्डल उत्तरदायी था, जबकि संरक्षित विषयों का प्रशासन गवर्नर के हाथ में रखा गया।[1] परन्तु केन्द्रीय स्तर पर संघात्मक व्यवस्था को पूर्णतः नकार दिया गया, यद्यपि 1919 के इस अधिनियम द्वारा अखिल भारतीय मामलों में वायसराय को परामर्श देने के लिये देशी राजाओं के एक नरेश मण्डल की स्थापना की गई, जिसे 'Chambers of Princes' का नाम दिया गया। साइमन कमीशन की रिपोर्ट में भी उक्त तथ्य पर बल दिया गया।[2]

भारतीय व्यवस्थापिका सभा के अध्यक्ष सर हेडरिक व्हाइट ने 1923 में संघीय व्यवस्था की स्थापना का सुझाव दिया। हैली ने संघात्मक प्रावधानों को नवजात भारतीय राजनैतिक व्यवस्था की समस्याओं का उपयुक्त समाधान माना। सर्वप्रथम 1930 में साइमन कमीशन ने प्रत्यक्ष रूप से संघ राज्य की स्थापना हेतु व्यवहारिक सुझाव दिये। चूँकि कमीशन की स्थापना एक संदिग्ध व विरोधी वातावरण में हुई थी अतः भारतीय जनमत ने इसके सुझावों को अस्वीकार कर दिया। नेहरु रिपोर्ट के अनुसार प्रस्तावित व्यवस्था पूर्णतः एकपक्षीय थी, साथ ही इसे प्रतिक्रियावादी और राष्ट्रीयता विरोधी माना गया। 1930 में गोलमेज सम्मेलन में आम सहमति बनने के बाद, 1931 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्पष्ट रूप से संघात्मक व्यवस्था का सर्मथन किया।[3] अंततः संयुक्त संसदीय समिति ने संघात्मक व्यवस्था का सुझाव दिया, यद्यपि इसके साथ गंभीर संवैधानिक जटिलतायें संभावित थीं।

भारत शासन अधिनियम 1935 द्वारा संघात्मक तत्वों सहित एकात्मक राज्य की स्थापना का प्रयास किया गया। इस अधिनियम द्वारा एक सुनियोजित संघीय योजना प्रस्तावित की गई जिसका स्वरूप निम्न है।

1935 भारत शासन अधिनियम द्वारा प्रस्तावित संघीय योजना

संगठन – 1935 ई. के अधिनियम द्वारा भारत के लिये एक संघीय व्यवस्था का प्रावधान किया गया था। इसमें 14 गवर्नर प्रान्त, 6 चीफ कमिश्नर प्रान्त व देशी रियासतें शामिल होनी थीं।

---

1. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह : भारतीय शासन व राजनीति, पृ.–54

2. The Report of the Indian Statutory Commission Vol. II pg.-15

3. Memorendum submitted by Gandhi, on the behalf of INC, at the round table conference 38th Oct. 1931

ब्रिटिश भारत के प्रान्तों का शामिल होना अनिवार्य था, जबकि देशी रियासतों का शामिल होना ऐच्छिक/संघीय इकाइयों को अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त होती।

केन्द्र व राज्यों के बीच तथा राज्यों के पारस्परिक झगड़ों को सुलझाने के लिये एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गई थी। संविधान को संशोधित करने की प्रक्रिया जटिल थी। संशोधन का अधिकार केन्द्रीय विधानमण्डलों को नहीं दिया गया बल्कि यह अधिकार ब्रिटिश संसद ने अपने पास रखा।

भारतीय संघ की स्थापना के लिये कुछ विशेष शर्तें रखी गईं थी। पहली शर्त यह थी कि संसद के दोनों सदन सम्राट से प्रार्थना करें कि संघ की स्थापना की जाये। दूसरी शर्त यह थी कि जब इतनी भारतीय देशी रियासतों को विलयन की स्वीकृति दे दें कि उनकी जनसंख्या कुल रियासती प्रजा की जनसंख्या की आधी हो जाये और उच्च सदन में 52 स्थानों से अधिक स्थानों के अधिकारी हों, संघ की स्थापना शाही घोषणा द्वारा की जायेगी। संघ सरकार के दो अंग थे– संघीय कार्यपालिका और संघीय विधानमण्डल। ब्रिटेन का सम्राट संघीय कार्यपालिका का प्रधान होता, यद्यपि गर्वनर जनरल उसकी शक्तियों का वास्तविक प्रयोग करता। गर्वनर जनरल का अधिकार उन विषयों तक फैला हुआ था जो संघीय सूची में थे और जिन पर संघीय विधानमण्डल कानून बना सकता था। संघीय व्यवस्थापिका के दो सदन थे– राज्य सभा (Council of states) और संघीय सभा (Federal Assembly)। देशी रियासत संघीय सभाओं में 125 सदस्य और राज्य सभा में 104 सदस्य भेजती है। ब्रिटिश प्रान्त के प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार थी संघीय सभा 250 और राज्य सभा 1561 प्रान्तों के प्रतिनिधियों का चुनाव पृथक निर्वाचन प्रणाली के अनुसार होता था और भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों का नामांकन देशी रियासतों द्वारा होता था।

1935 ई. के अधिनियम में प्रस्तावित संघ योजना में कुछ ऐसी अनूठी विशेषतायें थी जो साधारणतः अन्य संघों में नहीं पाई जाती है। उनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं–

1. साधारणतः संघ की स्थापना कुछ स्वतन्त्र राज्यों के मिलने से होती है। भारत में संघ की स्थापना एकात्मक ब्रिटिश भारत को स्वायत्तशासी प्रान्तों में खण्डित कर तथा उनके साथ स्वतन्त्र देशी रियासतों को मिलाकर की गई थी।
2. संघ शासन की स्थापना विभिन्न स्वतन्त्र राज्यों के स्वैच्छिक समझौते द्वारा होती है, जो कि सुरक्षा, व्यापार, आर्थिक उन्नति आदि सामान्य उद्देश्यों पर आधारित होता है। 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत भारतीय संघ राज्यों की स्वेच्छा का परिणाम नहीं था, बल्कि राज्यों को इस हेतु बाध्य किया गया था।
3. प्रस्तावित संघ की इकाइयों की स्थिति व प्रकृति एक समान नहीं थी। देशी रियासतों में निरंकुश शासन था जिसमें प्रजा को राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। इन राज्यों के

प्रतिनिधि देशी नरेशों द्वारा नामांकित होते थे। इसके विपरीत ब्रिटिश भारत की जनता को राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे और वे अपने प्रतिनिधियों का चुनाव निम्न सदन में प्रत्यक्ष रूप से तथा उच्च सदन में अप्रत्यक्ष रूप से करते थे।

4. संघ राज्य के उच्च सदन में इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। इन व्यवस्था को वर्तमान सभा के संगठन में भी अपनाया गया है, जिसमें इकाइयों को जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया गया है।
5. संघीय संविधान में संशोधन लाने के लिये कठिन तथा जटिल प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। यह अधिकार संघीय तथा प्रान्तीय विधानमण्डलों को दिया जाता है। 1935 ई. की संघ योजना के अन्तर्गत संवैधानिक संशोधन का अधिकार ब्रिटिश संसद में निहित था।
6. संघ में सम्मिलित होने के इच्छुक राज्यों को क्राउन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता था। इस कारण इन देशी रियासतों को संघ के बाहर भी संवैधानिक स्थिति प्राप्त रहती। दूसरी ओर ब्रिटिश भारत के प्रान्तों को क्राउन से सीधे संपर्क बनाये रखने के विशेषाधिकार से वंचित कर दिया था। इस प्रकार संघीय इकाइयों में कानूनी समानता नहीं थी।
7. साधारणतः संघ सरकार स्वतन्त्र व प्रभुत्व सम्पन्न होती है। प्रस्तावित संघ सरकार में इस गुण की कमी थी। उसे भारत सचिव तथा गवर्नर जनरल के अधीन कार्य करना पड़ता था।
8. प्रायः सभी संघों में निचले सदन का प्रत्यक्ष चुनाव होता है तथा ऊपरी सदन का अप्रत्यक्ष। प्रस्तावित भारतीय संघ में संघीय सभा का चुनाव अप्रत्यक्ष रखा गया तथा ऊपरी सदन का प्रत्यक्ष। इसका मूल उद्देश्य लोकतन्त्रात्मक सदन को दुर्बल करना था।
9. संघीय संविधान की अवशिष्ट शक्तियाँ प्रायः संघ या इकाइयों में निहित कर दी जाती है, जबकि भारत में यह व्यवस्था की गई कि गवर्नर जनरल को इस बारे में अंतिम निर्णय करने का अधिकार होगा।

वस्तुतः विदेशी शासकों ने प्रस्तावित संघ द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवाद, भारतीय राष्ट्रवाद और देशी रियासतों के सामन्तवाद के बीच समझौता करने का प्रयास किया। परन्तु संघ सरकार का अधिकार क्षेत्र अलग–अलग इकाइयों में अलग–अलग था। यह एक मौलिक संघ विरोधी सिद्धान्त था। केन्द्र में द्वैध शासन की व्यवस्था भी संघीय विचारधारा के प्रतिकूल थी महत्वपूर्ण विभागों पर गवर्नर जनरल व उनके पार्षदों का अधिकार था जबकि महत्वहीन विषयों पर मन्त्रियों का हस्तांतरित विषयों पर ही पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना संभव थी।

निःसन्देह तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुये भारत हेतु संघीय व्यवस्था की आवश्यकता थी, किन्तु इसकी अनूठी विषमताओं तथा त्रुटियों के कारण भारतीयों ने एक स्वर में

इसे अस्वीकृत कर दिया। पं. नेहरु के अनुसार "अधिनियम में प्रान्तीय स्वायत्तता और संघीय ढाँचे की व्यवस्था की गई है। लेकिन इसमें इतने अधिक संरक्षण और नियन्त्रण थे कि देश की राजनीतिक और आर्थिक शक्ति ब्रिटिश सरकार के हाथों में केन्द्रित बनी रहेगी। संघीय ढाँचा ऐसा था कि उसके अन्तर्गत कोई भी प्रगति असंभव हो जाती यह इतना प्रतिक्रियावादी था कि इसमें स्वविकास का बीज तक नहीं था।"[1]

1945 में सप्रू कमेटी द्वारा संघात्मक व्यवस्था की सिफारिश की गई।[2] परन्तु जहां प्रगतिवादियों ने इसे स्वशासन के विरुद्ध एक कदम माना, वहीं प्रान्तों और देशी राज्यों ने इसमें सम्मिलित होने में हिचकिचाहट दिखाई। पं. नेहरू ने इस योजना का विरोध करते हुये लिखा "संघात्मक योजना प्रगति में बाधक है। इसका ढाँचा प्रतिक्रियावादी है और यह ब्रिटिश सरकार, देशी राज्य, जमींदार व प्रतिक्रियावादी तत्वों के गठबन्धन को दृढ़ करेगा।"

"The federal structure was so envisaged as to make any real advance impossible, reactionary as the structure was sort of some kinds of revolutionary reaction. The act strengthened landlords and other reactionary elements in India."[3]

इस प्रकार संविधान निर्माताओं के समक्ष यह स्पष्ट था कि संघीय व्यवस्था को अपनाया जाना अनिवार्य था, परन्तु मूल प्रश्न यह था कि इसे किस रूप में अपनाया जाये। 1929 में बटलर समिति के अनुसार– "राजनीतिक दृष्टिकोण से दो भारत हैं, उन्हें एक सूत्र में जोड़ना राजनीतिज्ञों के सम्मुख प्रमुख समस्या थी।" ("Practically there are two India, The problem of statemanship is to hold them together")[4]

स्वतन्त्रता के पश्चात् समस्त प्रान्तों व देशी राज्यों का विलयन साथ ही उनके प्रशासन का प्रजातन्त्रीकरण भी आवश्यक था। संघात्मक भारत के अन्तर्गत ही उन्हें विलीन किया जा सकता था, क्योंकि इसी व्यवस्था में राज्य की स्वायत्तता व राष्ट्र की एकता का समन्वय संभव था। अतः विलयन व एकीकरण की प्रक्रिया द्वारा देशी राज्यों को प्रान्तों की भांति भारतीय संघ में शामिल किया गया।

---

1. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह : भारतीय शासन व राजनीति, पृ.–69
2. De. J.R. op. cit pp 112-113
3. J.L. Nehru : "Discovery of India" pg.-1
4. बटलर समिति (1930) as quoted in the white paper on Indian constituent assembly debates

के.बी. राव के अनुसार– "भारत मूलतः एवं स्वभावतः संघात्मक व्यवस्था हेतु उपयुक्त देश था।" "India was basically and inherently a country fit for federal system"[1] भारत विभिन्न धर्म, भाषा, जाति व संस्कृति से युक्त एक विशाल देश है, जिसे एकात्मक व्यवस्था के माध्यम से एक सूत्र में बांधना असंभव था। शासन की सुगमता के दृष्टिकोण से उसे विभिन्न स्वायत्तपूर्ण प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित करना अवश्यंभावी था। इस प्रकार विशाल आकार तथा विभिन्नतायें संघात्मक व्यवस्था हेतु निर्धारक तत्व बने।"भारत की व्यापक विभिन्नता को देखते हुये भी इस व्यवस्था को अपरिहार्य माना गया।"[2]

संघ निर्माण के साधारणतः दो तरीके हैं

1) सम्मिलन (Integration)

2) पृथक्करण (Disintegration)[3]

भारतीय संघ के निर्माण में दोनों पद्धतियों को अपनाया गया है। विभिन्न देशी राज्य सम्मिलन की प्रक्रिया द्वारा भारतीय संघ में शामिल हुये। इससे पूर्व इनका पृथक अस्तित्व था। वे स्वेच्छा से भारतीय संघ में शामिल हुये। दूसरी ओर ब्रिटिश भारत का स्वरूप एकात्मक था, जिसमें अनेक प्रान्त थे। इन प्रान्तों को संघ की अवयवी इकाई के रूप में मान्यता प्रदान की गई। पृथक्करण की प्रक्रिया द्वारा ब्रिटिश भारत के प्रान्त संघ के राज्य बन गये।

संविधान के प्रथम अनुच्छेद के अनुसार –"India that is Bharat shall be a Union of States" अर्थात 'भारत राज्यों का संघ है।' यद्यपि संविधान निर्माता राज्य संघ की स्थापना करना चाहते थे, फिर भी संघ शब्द के स्थान पर 'यूनियन' शब्द का प्रयोग किया गया।

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार प्रान्तीय एकीकरण की आवश्यकता तथा राजनीतिक स्थायित्व ऐसे कारण हैं जिनके कारण संघवाद शब्द का प्रयोग संविधान में नहीं किया गया है।[4] संविधान निर्माता संघात्मक व्यवस्था को अपनाने के विरुद्ध नहीं थे। उनका मानना था कि संघवाद भारतीय संविधान की आत्मा के रूप में विद्यमान रहे इसके लिये यह अनिवार्य नहीं है कि यूनियन शब्द के स्थान पर फेडरेशन शब्द का प्रयोग किया जाये।

---

1. K.B. Rao : Parliamentary democracy in India, pg.-262
2. Gandhi M.K. : India of My Dreams, pg.-20-30
3. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह ; 'भारतीय शासन व राजनीति' पृ.–502
4. डॉ. भीमराव अम्बेडकर : Constituent Assembly debates Vol.III, pg.-43

एक फुटनोट में ड्राफ्टिंग कमेटी ने यह स्वीकार किया है कि भारत को यूनियन का दर्जा देना गलत नहीं है। हालांकि संरचनात्मक दृष्टिकोण से संविधान संघात्मक ही रहेगा।[1] ऐसा संघवाद की प्रचलित परिभाषाओं (राज्य इकाइयों की स्वायत्तता) व नवजात प्रजातन्त्र के एकीकरण की अपरिहार्यता को ध्यान में रखकर किया गया था। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार यूनियन शब्द दो बातों की ओर संकेत करता है।[2]

1. भारतीय संघ इसके एककों में हुये समझौते का परिणाम नहीं है। एककों को संघ से पृथक होने का अधिकार नहीं है। ब्रिटिश भारत के प्रान्तों व देशी राज्यों को एकत्र कर भारतीय संघ की स्थापना की गई। परन्तु संघ के इन अवयवी एककों के बीच इस उद्देश्य से कोई समझौता नहीं हुआ, बल्कि एककों व संघ का निर्माण एक संविधान सभा ने संविधान द्वारा किया।

संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों के अतिरिक्त राज्यों को अन्य कोई अधिकार नहीं है। राज्यों को संघ से अलग होने या उसे समाप्त करने का अधिकार नहीं है। इसके विपरीत संयुक्त राज्य अमेरिका राज्यों के बीच समझौते का परिणाम है। डॉ. अम्बेडकर ने अमरीकी व भारतीय संघ की तुलना करते हुये कहा– "अमेरिका में केन्द्र व राज्यों के बीच ढीला सम्बन्ध है जबकि भारत एक संगठन है, जिससे कोई अलग नहीं रह सकता है।"[3]

2. भारतीय संघ राज्यों के बीच नहीं बल्कि जनता के बीच समझौते का परिणाम है। इसका आधार अवयवी एककों के बीच संप्रभुता नहीं बल्कि जनसंप्रभुता है। सरदार पटेल ने इस सम्बन्ध में कहा है कि भारतीय संविधान "प्रजातन्त्रों व राजवंशों के मध्यम एक गठबंधन नहीं बल्कि सार्वभौम जनता के मूलसिद्धान्त पर आधारित भारतीय जनता का एक संघ है।"("The Indian Constitution did not form an alliance between democracies and dynasties, but a ready union of the Indian people build upon the basic concept of the sovereign people.")[4]

प्रस्तावना पर चर्चा करते समय 'संघ' शब्द पर पुनः विचार किया गया और अंततः इस शब्द को संविधान में शामिल करने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया गया। इस सम्बन्ध में मौलाना हसरत मौलानी ने एक संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसके अनुसार 'सम्प्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य' (Sovereign Democratic Republic) के स्थान पर 'सम्प्रभु संघात्मक गणतन्त्र' (Sovereign Federal Republic) को शामिल किया जाये। यह प्रस्ताव लगभग बिना बहस के नकार दिया गया।

1. Constitutent Assembly debates Vol.7 : pg. 399-404
2. CAD Vol VI pg.-43
3. Ambedkar ibid, pg.-33-44
4. Sardar Patel CAD vol.-V 161

संविधान निर्माताओं ने 'यूनियन' शब्द कनाडा के संविधान से लिया है। डॉ. अम्बेडकर ने अपने वक्तव्य में कहा भी था– "आप देखेंगे कि प्रारूप समिति ने संघ के स्थान पर यूनियन शब्द का प्रयोग किया है। यद्यपि नाम का कोई विशेष महत्व नहीं है फिर भी समिति ने 1867 ई. के ब्रिटिश उत्तरी अमरीका की प्रस्तावना की भाषा को आधार बनाया है। उनका यह विचार है कि भारत को यूनियन कहना अधिक उपयुक्त होगा, यद्यपि इसके संविधान का स्वरूप संघीय होगा।" "It will be noticed that the committee has used that term 'Union', instead of Federation, Nothing much turns on the name but the committee has prefessed to follow the language, the preamble to the British North America act. 1867 and considered that there are advantages in describing India as a union, although it's constitution may be federal in character."[1]

निःसन्देह संविधान निर्माता एक संघात्मक राज्य की स्थापना करना चाहते थे, परन्तु संघ के स्वरूप के सम्बन्ध में उनके विचारों में एकरूपता नहीं थी। संविधान के अंतिम वाचन के समय अनेक सदस्यों की यह शिकायत थी कि संघात्मक राष्ट्र के आदर्शों की अवहेलना करते हुये एक केन्द्रीकृत संघ की स्थापना की गई।("I like a strong united centre, much stronger than the centre we had created under the government of India act 1935)."[2]

संविधान के लागू होने के समय से ही राज्यों का हमेशा यह आरोप रहा है कि उन्हें बहुत ही सीमित अधिकार दिये गये हैं। संविधान निर्मात्री सभा में भी कई सदस्यों ने केन्द्र–राज्यों के मध्य सम्बन्ध में अपनी आपत्ति प्रकट करते हुये कहा था कि इससे भारतीय संघवाद का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा व राज्यों की स्थिति नगरपालिका के समान हो जायेगी। केन्द राज्य शक्ति विभाजन के आधार पर ही कुछ राजनीतिक विचारक भारतीय संविधान को के.सी. व्हीयर के मत से सहमत होते हुये भारतीय संघवाद को अर्द्धसंघीय बताते हैं।"India is the unitary state with subsidiary federal features rather than a federal state with subsidary unitary features."[3] (भारत कुछ संघात्मक लक्षणों के साथ एकात्मक राज्य है बजाय, एक संघीय राज्य के, कुछ एकात्मक लक्षणों के साथ)अपने इस कथन की औचित्यता को सिद्ध करने के लिये विचारक कुछ तथ्यों का सहारा लेते हैं जैसे–"केन्द्र को व्यापक अधिकार प्रदान किये गये हैं, केन्द्रीय संसद राज्यों की सीमाओं में एकपक्षीय रूप से परिवर्तन कर सकते हैं, केन्द्र का सैद्धान्तिक व समन्वयकारी प्राधिकार जिसे केन्द्र राज्य स्वायत्तता के क्षेत्र के किन्हीं खण्डों में प्रयोग कर सकता है और आपातकालीन स्थितियों के दौरान संघीय सम्बन्धों के वास्तव में समाप्त किये जाने की व्यवस्था है।"[4]

---

1. CAD vol.-X – pp. 429-34
2. Ambedkar CAD Vol.-IX pg.-99
3. K.C. wheare ; Federal Govt. (London) 1963
4. K.R. Bombwall : The foundation of Indian Federalism, pg.-323

भारतीय संविधान संघवाद के उन सभी आवश्यक तत्वों की पूर्ति करता है, जो किसी भी देश को संघीय कहलाने के लिये आवश्यक हैं। जैसे– एक लिखित व कठोर संविधान, संविधान की सर्वोच्चता, शक्तियों का बंटवारा, एक स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायालय व द्विसदनात्मक केन्द्रीय व्यवस्थापिका। यही कारण है कि डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था।

"भारतीय संविधान ने एक दोहरे शासन की व्यवस्था की है, जिनमें केन्द्र में संघ है व परिधि में राज्य हैं। दोनों को विशिष्ट शक्तियाँ प्राप्त हैं, जिनका प्रयोग संविधान द्वारा प्रदान किये गये क्षेत्र के अन्दर ही किया जा सकता है। संघ राज्यों का समुदाय नहीं है, जिनमें वे ढीले रूप में मिले हों और न ही वे संघ की सहायक संस्थायें हैं जो संघ से अपनी शक्तियाँ प्राप्त करती हों। संघ व राज्य दोनों का निर्माण संविधान द्वारा किया गया है और दोनों ही संविधान से अपनी शक्तियाँ प्राप्त करते हैं। एक अपने क्षेत्र में दूसरे के अधीन नहीं है बल्कि एक की शक्ति दूसरे की शक्ति में सहायक हैं।"[1] भारतीय संघीय शासन की विश्व की अन्य संघात्मक व्यवस्थाओं से तुलना करने पर यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि भारतीय संघवाद क्षैतिज है, जिसमें सशक्त एकात्मक अभिनति है।

"Here is a constitution which we say is a federal constitution, but in essence is almost a unitory constitution and I may call it instead of a federal constitution or a unitary constitution a union constitution."[2] (यहाँ एक ऐसा संविधान है जिसे हम एक संघात्मक संविधान कहते है परन्तु वास्तव में यह लगभग एकात्मक संविधान ही है और मैं उसे संघीय संविधान या एकात्मक संविधान नही बल्कि एक यूनियन संविधान कह सकता हूं।) इस प्रकार सैद्धान्तिक तौर पर भारत के लिये एक ऐसे संघवाद का निर्माण किया गया, जिसमें कनाडा की तरह एक शक्तिशाली केन्द्र हो ताकि अखण्ड भारत का निर्माण किया जा सके, पर साथ ही संविधान निर्माता प्रान्तों को पर्याप्त स्वायत्तता देना चाहते थे। यही कारण है कि भारतीय संविधान में संघात्मक व एकात्मक दोनों प्रकार के तत्त्वों को स्थान दिया गया है।

समस्त शासन व्यवस्थाओं के अन्तर्गत द्वितीय सदनों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। यह परीक्षण करना उपयोगी होगा कि प्रमुख व्यवस्थाओं में द्वितीय सदन की स्थिति और भूमिका किस प्रकार की है? इस तुलनात्मक विश्लेषण के आलोक में द्वितीय सदन की कसौटी पर राज्य सभा का परीक्षण गहराई से सम्भव हो सकेगा।

---

1. CAD-Vol VIII, p-33
2. K. Hanumanthaiya CAD-Vol-II pg.- 614-713

2.4 विश्व के प्रमुख संघात्मक व प्रजातान्त्रिक राष्ट्रों में द्वित्तीय सदन

राज्यसभा भारतीय संसद का उच्च एवं द्वितीय सदन है। उच्च सदन का अस्तित्व विधायिका की द्विसदनात्मकता का प्रतीक है। व्यवस्थापिका के संगठन के संबंध में दो सिद्धान्त पाये जाते है– एकसदनीय प्रणाली (Unicameral System) तथा द्विसदनीय प्रणाली (Bicameral System)।विश्व की संसदों का विभाजन, एकसदनीय अथवा द्विसदनीय प्रतिमानों में करना विश्व की संवैधानिक संरचना का प्रतिनिधित्व करना है तथा सरकार की प्रणाली पर गहरा प्रभाव छोड़ता है।

प्रायः सभी संघात्मक प्रणाली वाले देशों में द्वितीय सदन इकाइयों का प्रतिनिधित्व करता है। अतः संघात्मकता एवं द्विसदनात्मकता परस्पर पूरक है। यह परीक्षण करना शोध विषय के लिये उपयुक्त होगा कि क्या द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका राजनीतिक व्यवस्था को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करती है? क्या संघराज्य के लिये द्वितीय सदन आवश्यक है? द्वितीय सदनों के सामान्य लक्षण विश्व के द्वितीय सदनों में किस सीमा तक पाये जाते हैं? सशक्त अथवा दुर्बल द्विसदनात्मकता के परिणाम किस रूप में सामने आते हैं? अंततः द्विसनात्मकता किन चुनौतियों का सामना कर रही है?

व्यवस्थापिका के अंतर्गत एकसदनात्मक प्रणाली की धारणा अठारहवीं शताब्दी के अंत और उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में अत्याधिक लोकप्रिय रही। यूनान, इस्टोनियाँ और यूगोस्लाविया आदि यूरोपीय देशों में एकसदनीय विधानमण्डल ही है। समकालीन प्रजातांत्रिक शासनप्रणाली में जहाँ व्यवस्थापिका को कल्याणकारी कानूनों के निर्माण का दायित्व सौंप दिया गया है। वहाँ कानूनों की निर्माण–प्रक्रिया से उत्तेजना, उतावलेपन एवं अस्थिरता को दूर करने के लिये व्यवस्थापिका में दो सदनों का अस्तित्व महत्वपूर्ण माना जाने लगा है। इस प्रकार द्विसदनात्मकता संसदीय संरचना का एक प्रचलित प्रतिमान है।

द्विसदनात्मक प्रणाली ऐतिहासिक विकास तथा संयोग का परिणाम है। यह व्यवस्था ब्रिटिश संवैधानिक विकास की देन है, इंगलैण्ड की संसद जो सबसे प्राचीन संसद है, संयोग से द्विसदनात्मक हो गयी। अन्य प्रजातांत्रिक देशों में भी ब्रिटिश संसद द्विसदनात्मक न होती तो शायद संसार के विधानमण्डल भी द्विसदनात्मक नहीं होते।[1] आज सभी प्रजातांत्रिक देशों में दो सदन होते है। एक सदन में उच्च या द्वितीय सदन और दूसरे को निम्न या प्रथम सदन कहते हैं। निम्न सदन देश की सर्वसाधारण जनता का प्रतिनिधित्व करता है। उसका निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होता है। द्वितीय सदन सर्वसाधारण का नहीं अपितु कुछ विशेष वर्गों, हितों तथा संस्थाओं का प्रतिनिधित्व करता है। इसके संगठन का कोई सर्वमान्य निश्चित संवैधानिक आधार नहीं है।

---

1. विलोबी, उद्धृत, वीरकेश्वर प्रसाद सिंह, पूर्वोक्त पृ. 157

भिन्न–भिन्न देशों में इसके संगठन का आधार भिन्न है। उदाहरणार्थ इंगलैण्ड की लार्ड सभा का आधार वंश परम्परा है, इटली, जापान और कनाडा में द्वितीय सदन के सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित तथा मनोनीत होते हैं और अमेरिका, ब्राजील, ऑस्ट्रेलिया तथा पोलैण्ड में द्वितीय सदन के सदस्यों का प्रत्यक्ष निर्वाचन होता है।

प्रारम्भ में द्वितीय सदन की स्थापना कतिपय उच्च आदर्शों को ध्यान में रखते हुये की गयी थी। इनकी स्थापना का उद्देश्य था कि देश के बुद्धिमान तथा विवेकशील व्यक्तियों को कानून–निर्माण सभा में स्थान मिले जो जनता के प्रतिनिधियों के साथ–साथ अन्य छोटे–छोटे एवं उपेक्षित हितों का प्रतिनिधित्व करे तथा जन–प्रतिनिधियों की आवेशमयी एवं उत्तेजनापूर्ण गति को रोककर तर्कपूर्ण एवं लोककल्याणकारी कानूनों के निर्माण में मार्गप्रदर्शन करे। लेकिन कालांतर में द्वितीय सदन के प्रति सम्मान की भावना पूर्ववत नहीं रही। समकालीन राजनीतिक व्यवस्थाओं में लोकतंत्रात्मक पद्धति के अत्याधिक विकास एवं जनता में राजनीतिक चेतना के प्रार्दुभाव के कारण प्रथम सदन के समक्ष द्वितीय सदन गौण स्थिति में पहुंच गया। लेकिन ऐसा सभी व्यवस्थाओं में नहीं हुआ। नवीन समकालीन परिवर्तनों तथा लोकतंत्र के उतावले ज्वार ने अनेक स्थानों पर द्वितीय सदन की उपयोगिता सिद्ध की है। अतः द्विसदनात्मकता का मूल्यांकन आवश्यक है क्योंकि प्रस्तुत अध्ययन हेतु चयनित विषय द्वितीय सदन राज्यसभा पर केन्द्रित है।

द्विसदनात्मकता–प्रजातंत्र के अनुकूल

द्विसदनीय पद्धति प्रजातांत्रिक सिद्धांतों के अनुकूल है। वैयक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिये आवश्यक है कि संप्रभुता का केन्द्रीयकरण किसी एक अंग या सभा के रूप में नहीं होने पाये इसी उद्देश्य से यह आवश्यक है कि व्यवस्थापिका के अंतर्गत एक सदन के हाथों में शक्ति को केन्द्रित होने से बचाने के लिये द्विसदनात्मक प्रणाली अपनायी जाए।

द्विसदनात्मक पद्धति प्रथम सदन की स्वेच्छाचारिता एवं निरंकुशता को रोकती है। व्यवस्थापिका के प्रथम सदन के सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं। वे उतावलेपन एवं भावावेश के प्रभाव में बहकर अनुत्तरदायी और स्वेच्छाचारी शासन की स्थापना कर नागरिकों की स्वतंत्रता का हनन कर सकते हैं सारटोरी ने ठीक ही लिखा है।

"दूसरे सदन के अभाव में एक सदन निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी हो जाता है। अतः अविभाजित सत्ता के दूषित प्रभाव को रोकने के लिये दूसरा सदन आवश्यक है।"[1]

---

1. सारटोरी, उद्धृत, पूर्वोक्त, पृ. 158

विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व

द्वितीय सदनों का शास्त्रीय (Classical) उद्देश्य प्रथम सदन से भिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करना है। प्रारंभ में ये हित वर्ग पर आधारित होते थे। जैसा कि लॉवेर बर्ग तथा पेटर्सन ने उल्लेख किया है–"Bicameralism originated in the essential pre-democratic view that the representation of the nation recognised both an upper and lower house in the class-consions sense of 'Upper and Lower'[1] (द्विसदनात्मकतावाद का उदय महत्त्वपूर्ण उस पूर्व–प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण में हुआ कि राष्ट्र के प्रतिनिधित्व को उच्च एवं निम्न दोनों सदनों की आवश्यकता है, वर्ग–चेतना के अर्थ में 'उच्च' एवं 'निम्न') इसी प्रकार इंगलैण्ड में लार्ड सभा कुलीनतंत्र का प्रतिनिधित्व करती है जबकि निम्न सदन 'कॉमन्स' (आम जनता) का प्रतिनिधित्व करते हैं। विगत में इसी प्रकार के कुलीनतंत्रीय द्वितीय सदन अस्तित्व में थे। यूरोप में फ्रांस, स्पेन व इटली इसमें शामिल हैं।

द्वितीय सदन विशिष्ट वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व करता हैं ये विभिन्न हित महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। निम्न सदन बहुमत का प्रतिनिधित्व करता है।

इस बहुमत के आतंक जिनका निम्न सदन के निर्वाचित सदस्यों के रूप में प्रतिनिधित्व होता है, से ये हित सुरक्षा प्रदान करते हैं। बहुत से अनुभवी और योग्य व्यक्ति निर्वाचन की राजनीति में नहीं जाना चाहते इस त्रुटि की पूर्ति उच्च सदन द्वारा होती है। जैसे राज्यसभा में देश के अनुभवी और योग्य, कुशल एवं बुद्धिमान व्यक्तियों को मनोनीत किया जाता है।

उच्च सदन ज्ञान, बुद्धि, परम्परा एवं राजनीतिक अनुभव के कोष होते हैं। जे.एस. मिल ने कहा है कि– "यदि निम्न सदन जनता के प्रतिनिधियों का सदन है तो उच्च सदन राजनीतिज्ञों और कलाकारों का सदन होता है।"

उच्च सदन के माध्यम से अल्पसंख्यकों का संरक्षण होता है जो कि भू–क्षेत्रीय, धार्मिक या भाषायी होता है। इसका समकालीन उदाहरण बेल्जियम की सीनेट है जो कि मिश्रित चयनित सदन है। जिसके सदस्य निर्वाचक मंडल एवं सामूहिक परिषदों द्वारा चुने जाते हैं। (फ्रेंच, फ्लेमिश तथा जर्मन भाषायी समूहों द्वारा)

द्विसदनात्मक पद्धति के दो उल्लेखनीय लक्षण आज ये है कि वे दोनों ही बड़े व संघीय राज्यों में विद्यमान है। संघात्मक शासन प्रणाली के लिये तो द्विसदनात्मक प्रणाली का होना अति आवश्यक है। संघ शासन में अनिवार्यतः दो तत्वों का प्रतिनिधित्व होता है–

---

1. Loewenberg, Gerhard and Samuel c. Patterson 1979 compairing Legislatures, Bosten Little Brown, Page 121

एक जनता का और दूसरा संघीभूत इकाइयों का। अतः जनता के प्रतिनिधित्व के लिये निम्न या प्रथम सदन तथा संघीभूत इकाइयों के लिये उच्च या द्वितीय सदन की व्यवस्था की जाती है। उदाहरणार्थ अमेरिका, भारत आदि संघ राज्यों में द्वितीय सदन इकाइयों का प्रतिनिधित्व करते हैं। संसदों का दो सदनों में विभाजन अपरिहार्य कारणों से भी अति आवश्यक हो जाता है विभिन्नता से पूर्ण समाज के विभिन्न हितों को प्रतिनिधित्व प्रदान करना अधिक आवश्यक है। 1996 में द्विसदनात्मक राज्यों की आबादी 47 मिलियन थी तथा एकसदनात्मक राज्यों की 24 मिलियन थी। उसी वर्ष संघात्मक लोकतंत्रों की संख्या 22 थी जिनमें से 18 में द्विसदनीय संसद थी जबकि 156 एकात्मक लोकतंत्रों में 40 में द्विसदनीय संसद थी।

उच्च सदनों में प्रतिनिधित्व हेतु सर्वाधिक प्रचलित रूप संघीय व एकात्मक दोनों की व्यवस्थाओं में आज भू–क्षेत्रीय है। इस प्रकार की व्यवस्थाओं में सदस्य प्रायः सरकार के उप–राष्ट्रीय स्वर के निर्वाचन क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्रांतों, क्षेत्रों अथवा राज्यों का प्रतिनिधित्व या तो उन प्रशासकीय क्षेत्रों की सरकारों, विधानसभाओं या वहाँ के नागरिकों का हो सकता है। जर्मनी में बुन्ड्रासैट (द्वितीय सदन) में राज्य सरकार के सदस्य होते हैं। ऑस्ट्रेलिया और भारत में उच्च सदनों का निर्वाचन राज्य विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा होता है जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में सीनेट सदस्यों का निर्वाचन प्रत्येक राज्य के नागरिकों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से होता है। यहाँ तक कि जहाँ देश संघात्मक नहीं है उन देशों में प्रायः उच्च सदन के माध्यम से सरकार के उपराष्ट्रीय स्तर से जुड़ाव होता है। इसी प्रकार फ्रांस और आयरलैण्ड में द्वितीय सदन के सदस्यों का चयन स्थानीय सत्ताहीन पार्षदों के निर्वाचन मण्डलों द्वारा होता है।

उक्त प्रबन्धन स्वयं अल्पसंख्यकों को कोई संरक्षण प्रदान नहीं करता है यद्यपि यह उच्च सदन के सदस्यों को विशिष्ट दृष्टिकोण और उपराष्ट्रीय सरकार की एक समझ प्रदान करता है। शक्तिशाली द्वितीय सदन का प्रतिमान संयुक्त राज्य अमेरिका की सीनेट है, जहाँ बिना जनसंख्या का विचार किये, प्रत्येक राज्य का प्रतिनिधित्व दो सदस्यों के द्वारा होता है। ऐसे में न्यून जनसंख्या वाले क्षेत्र गैर आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्राप्त करते हैं। जर्मनी में सबसे बड़े राज्य की जनसंख्या लघुत्तम राज्य से 30 गुना अधिक है परन्तु बुन्ड्रासैट (द्वितीय सदन) में सदस्यों की संख्या मात्र दो गुनी है।

अल्पसंख्यक हितों की सुरक्षा की दृष्टि से उक्त प्रबंधन किस सीमा तक प्रभावी है, यह प्रश्न आधुनिक दल–आधारित संसदों में प्रायः विवादित है। ऑस्ट्रेलियन व्यवस्था इसका उदाहरण है। यहाँ यह आरोपित किया जाता है, कि जबसे सीनेटर दलीय ब्लॉकों में वोट करने लगे हैं, सीनेट एक भू–क्षेत्रीय दृष्टिकोण प्रदान नहीं करती। यद्यपि भू–क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व द्वितीय सदनीय सदस्यों के चयन का सर्वाधिक प्रचलित तरीका है। कुछ अन्य पारंपरिक प्रणालियां भी

है। सर्वाधिक स्पष्ट उदाहरण ब्रिटिश लॉर्ड सभा है जिसके अधिकांश सदस्य अपने व्यवसाय के उच्च स्तर तक पहुंच चुके होते है। कनाडा में भी इसी प्रकार की व्यवस्था है भारत एवं इटली में इसी प्रकार के कुछ सदस्यों को उच्च सदन में शामिल किया जाता है। भारत में साहित्य, कला, विज्ञान, सामुदायिक आन्दोलन या समाज सेवा में विशेष शाखा अथवा व्यवहारिक अनुभव प्राप्त विशिष्ट गणों को राज्य सभा में राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जाता है। इस प्रकार की व्यवस्थाओं में सदन (Great and Good) महान एवं श्रेष्ठ वर्ग का कुछ सीमा तक प्रतिनिधित्व कर पाता है जो नीतिनिर्माण में निम्न सदनीय सदस्यों से भिन्न दृष्टिकोण प्रदान करता है।

उच्च सदन के पास निम्न सदन की अपेक्षा एक विशिष्ट दलीय संतुलन भी होता है जो एक आधुनिक संसद में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो सकता है। विभिन्न हितों के प्रतिनिधित्व हेतु उच्च एवं निम्न सदन के सदस्यों के चयन के भिन्न–भिन्न तरीकों के कारण उनका राजनीतिक स्वरूप नितांत भिन्न होता है। ऑस्ट्रेलियन सीनेट जहाँ छोटे दल और निर्दलीय,शक्ति संतुलन को संभालते हैं। जो कि निम्न सदन से ठीक विपरीत है, यह वैकल्पिक मतदान से चुनी जाती है। वहाँ छोटे दल और निर्दलीय अनुपस्थित रहते हैं और शासक दल पूर्ण बहुमत बनाये रखना है। इसलिये उच्च सदन के पास एक बिल्कुल भिन्न राजनीतिक गतिशीलता होती है और मुख्यतः अंतर्दलीय सौदेबाजी व समझौते पर टिकी रहती है।

एक सदन–कार्यपालिका से अधिक स्वतंत्र

केवल संगठन एवं प्रतिनिधित्व की दृष्टि से ही द्वितीय सदन महत्वपूर्ण नहीं है, उनकी शक्तियाँ भी प्रभावी हो सकती है। यद्यपि प्रथम सदन की तुलना में उनकी विधायी शक्तियाँ कम है, तथा ऐसा सभी द्वितीय सदनों के साथ नहीं है। ऑस्ट्रेलियन एवं अमेरिकी सीनेट समस्त विधायन को अवरोधित कर सकता है। एक संसदीय प्रणाली में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है द्वितीय सदनों का राजनीतिक प्रशासकों पर न्यून अधिकारों का होना। अपने बहुमत के चलते कार्यपालिका निम्न सदन पर और अविश्वास प्रस्ताव के माध्यम से निम्न सदन कार्यपालिका पर नियंत्रण बनाये रखते हैं। यहाँ तक कि जिन द्वितीय सदनों का लोकतंत्रीकरण हो चुका है, वहाँ भी (आस्ट्रेलिया, चैक रिपब्लिक व जापान में) उच्च सदन, निम्न सदन के साथ सरकार को हटा नहीं सकती, जबकि प्रशासक निम्न सदन को भंग कर सकते हैं। वहीं द्वितीय सदन प्रायः पूरा कभी समाप्त नहीं होता, आंशिक नवीनीकरण होता रहता है। संसदीय निम्न सदनों में सत्ताधारी दलीय सदस्यों को प्रशासकों पर अपनी नियंत्रण संबंधी भूमिका को संतुलित रखना होता है ताकि उनकी पार्टी सत्ता में बनी रहे। अविश्वास प्रस्ताव का अस्तित्व, सरकार की स्थिरता हेतु दलीय अनुशासन को अनिवार्य बना देता है। यह अनुशासन निम्न सदन की स्क्रूटनी संबंधी (जांच संबंधी) भूमिका पर दबाव बनाये रखता है। जैसा कि ऑलसन का कहना है–"Paradoxically the system intended to ensure Parliaments control over the executive has led to

exactly the opposite flow of control."[1] (यह विरोधाभास ही है कि वही व्यवस्था जो प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण को सुनिश्चित करती है, नियंत्रण के एकदम विपरीत प्रवाह की ओर ले जाती है।

ऐसी स्थिति में द्वितीय सदन कार्यपालिका के एकाधिपत्य वाली संसद को एक महत्त्वपूर्ण प्रतिसंतुलन प्रदान करता है। सदन में अविश्वास प्रस्ताव की अनुपस्थिति दलीय अनुशासन के लिये एकदम भिन्न परिवेश संभव बनाती है। विवादास्पद विधेयक निम्न सदन में आसानी से पारित हो जाते हैं, जहाँ कि सरकार बहुमत में होती है। दूसरी तरफ उच्च सदन में सरकारी विधेयकों के विभिन्न आयामों पर बोलना अधिक आसान होता है। इस प्रकार उच्च सदन संसदीय स्क्रूटनी (जांच) के लिये तथा संसद की सरकार पर पूर्णरूपेण मजबूती प्रदान करने के लिये महत्त्वपूर्ण मंच प्रदान करता है।

एक अन्य लक्षण जो द्वितीय सदन की स्वतंत्रता को बल प्रदान करता है वह है उसका कार्यकाल जो सामान्यतः निम्न सदन से अधिक रहता है। सदन के गठन की प्रक्रिया भी सदस्यता को अधिक निरंतरता प्रदान करती है। लार्ड सभा इसका सर्वाधिक स्पष्ट उदाहरण है। जिसके सदस्य जीवनपर्यन्त अपने पद पर रहते हैं। वैसे ही कनाडियन सीनेटर 75 वर्ष तक के लिये निर्वाचित रहते हैं। अन्य व्यवस्थाओं में सदस्यता का नवीनीकरण समय–सारिणीबद्ध तथा अंशों में होता है। ऑस्ट्रेलिया में निम्न सदन 3 वर्ष के लिये तथा सीनेट 6 वर्ष के लिये तथा सीनेट प्रति तीन वर्ष बाद नवीनीकृत होती है।

फ्रांस में सीनेटर 9 वर्ष के लिये सत्ता के सदस्य होते है प्रति तीन वर्ष बाद निर्वाचित होते है जबकि निम्न सदन का कार्यकाल 5 वर्ष है। चैक रिपब्लिक के उच्च सदन के सदस्य 6 वर्ष के लिये निर्वाचित होते हैं। (प्रति दो वर्ष के बाद में सदस्य नवीनीकृत होते हैं) जबकि निम्न सदन प्रति चार वर्ष में निर्वाचित होती है। यह वास्तविक तथ्य है कि उच्च सदन के सदस्य पुनर्निवाचन और पुनर्चयन की प्रक्रिया का सामना कम करते हैं जिससे वे पार्टी व्हिप से स्वतंत्र और अपनी स्थिति को मजबूत बनाने हेतु समर्थ होते है। उच्च सदनीयसदस्यता का आंशिक नवीनीकरण निर्वाचन चक्र के प्रभाव को कम करता है और संसद में स्थिरता लाता है। यह तथ्य भी द्वितीय सदनों को बहुमत के विरुद्ध कार्य करने के लिये सामर्थ्य प्रदान करता है।

कुछ अन्य तथ्य भी भूमिका निभाते हैं। "The great and the good" (महान एवं उत्तम) का द्वितीय सदनों में शामिल होना। उन्हें निम्न सदनों की अपेक्षा कम नियंत्रणकारी बनाता है। अनुभवी, योग्य व्यक्ति स्थायी सदनों (प्रायः) में शासन की जटिलता से अधिक परिचित भी होते हैं।

---

1. M. Olson, 'Democratic Legislative Institutions', A Comparative View; M.E. Sharpe 1994

द्वितीय सदनों के सदस्यों की औसत आयु अधिक रही है। कनाडा में कॉमन सभा के सदस्यता के लिये 18 वर्ष अनुमन्य है परन्तु सीनेट की सदस्यता के लिये 30 वर्ष से अधिक होना आवश्यक है । फ्रेंच असेम्बली में कम से कम 23 वर्ष परन्तु सीनेटर कम से कम 35 वर्ष, इटली डिप्युटीज 25 वर्ष परन्तु सीनेटर 40 वर्ष से अधिक होना चाहिये। इसके परिणाम स्वरूप द्वितीय सदन के सदस्य बेहतर स्वरूपित विचार रखते हैं।

कहीं–कहीं द्वितीय सदन के गठन का तरीका भी महत्त्वपूर्ण है। वहाँ गैर–दलीय, सहायक–दलों के सदस्यों या छोटे दलों के प्रतिनिधियों को चुना जाता है। उदाहरण के लिये इंगलैण्ड की निर्वाचन प्रणाली, जहाँ लार्ड सभा पर पार्टी व्हिप का कोई असर नहीं है। आयरलैण्ड में कुछ सीनेटर विश्वविद्यालयों द्वारा चयनित होते हैं जो स्वतंत्र होते हैं। भारतीय संसद की राज्यसभा में इन सदनों की शक्तियाँ भले ही कम हो परन्तु वे सदन की चर्चा तथा बहस का स्वर बदल देते हैं जिसके परिणामस्वरूप नीति–निर्माण सुविचारित रूप में सामने आता है।

द्वितीय सदनों के गठन संबंधी अंतिम तथ्य जो उन सदनों के मूड को प्रभावित करता है,वह है उनका लघुतर आकार। केवल लॉड सभा का ही आकार विशाल है जो निम्न सदन से बड़ा है। प्राय द्वितीय सदन का औसत आकार किसी निम्न सदन का मात्र 60% होता है। इस प्रकार उक्त अनेक कारण द्वितीय सदन के माध्यम से संसद को पृथक् दृष्टिकोण प्रदान करते हैं। यह तथ्य दल–आधिपत्य वाली संसद के लिये महत्त्वपूर्ण देन सिद्ध हो सकता है।

वीटो–खिलाड़ी के रूप में

उच्च सदन का एक महत्त्वपूर्ण कार्य निम्न सदन द्वारा पारित कार्यवाही पर विभिन्न दृष्टिकोणों की अभिव्यक्ति भी है। विशेषतः विधायन पर द्वितीय सदन का यह कार्य संसदीय प्रणाली को अधिक प्रभावी बनाता है, भले ही इससे निश्चित देरी व दोहराव होता है। आवश्यक होने पर उच्च सदन विधायन को अवरोधित भी कर सकता है और इस प्रकार नीति निर्माण प्रक्रिया के अंतर्गत 'वीटो खिलाड़ी' की भूमिका निभाता है। दूसरे शब्दों में द्वितीय सदन एक प्रकार से 'नियंत्रण एवं संतुलन' की प्रणाली तथा नीति के संबंध में जनचेतना को सुनिश्चित करता है इसकी तुलना में निम्नसदन एकांगी तथा पक्षपातपूर्ण बहुमत से प्रेरित होता है।

एकसदनीय व्यवस्थापिका में जनता द्वारा निर्वाचित सदस्य, जनता की क्षणिक भावनाओं या आदेशों से प्रभावित होकर कानून निर्माण में अत्याधिक जल्दबाजी कर सकते हैं। परिणामतः एकपक्षीय एवं तर्कहीन कानूनों के निर्माण होने की आशंका रहती है। इसके विपरीत जहाँ द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका है, वहाँ दूसरे सदन में मनोनीत सदस्यों द्वारा विधेयकों पर विवेकपूर्ण विचार कर उनकी त्रुटियों को दूर कर दिया जाता है।

लेकी का कथन उचित है, "नियंत्रण करने संशोधन करने तथा रुकावट डालने में जो काम द्वितीय सदन करता है, उसकी आवश्यकता स्वयं सिद्ध है। यह कानून पर सुधारात्मक, रोकात्मक एवं क्रमबद्धात्मक प्रभाव डालता है।"[1]

प्रथम कनाडियन प्रधानमंत्री सर जान मैकडानल्ड ने उच्च सदन को 'द्वितीय गंभीर विचार' (Second sober thought) के रूप में उद्धृत किया है द्वितीय सदन के द्वितीय विचार से उन बिंदुओं को उठाया जाता है जो राजनीति से परिपूर्ण निम्न सदन के परिवेश में नहीं उठाये जा सके थे। वास्तव में दो सदनों द्वारा कार्यान्वित विधायन सरकार को विधेयक पारित करने में जल्दबाजी करने से रोकना है। ऐसे विधायक/सांसद जो भिन्न–भिन्न भौगोलिक क्षेत्रों, राजनीतिक व सांस्कृतिक दृष्टिकोणों के कारण यह अवसर प्रदान करते हैं।

इस प्रक्रिया में विधेयक को दोषों से मुक्त भी कर दिया जाता है। अतः विधेयक को दोहराने का कार्य महत्त्वपूर्ण है। विधेयक पारित करने में देरी लगाने से कुछ ऐसे संशोधन भी सामने आते हैं जो सरकार को अस्वीकार्य हों जिन्हें कई बार अधिक देरी के भय से सरकार को उन्हें स्वीकार करना पड़ता है। विधेयक संशोधन में जो समय लगता है उसमें लोकमत का अनुमान लग जाता है जो विधेयक के लिये उपयोगी होता हैं। उक्त संबंधों में दोनों सदनों के बीच हुये विवाद की स्थिति में जनता एवं मीडिया का ध्यान विधेयक के इन आयामों पर केन्द्रित हो जाता है जिनपर विवाद हो। इस प्रकार स्क्रूटनी (जांच) का स्तर तथा उसका भय ही सरकार को रोकने के लिये पर्याप्त है।

कई द्वितीय सदनों के पास सामान्य विधायन पर सीमित शक्तियाँ है, उनकी शक्तियाँ संवैधानिक परिवर्तनों पर अधिक होती है। भारत तथा फ्रांस में प्रस्तावित संवैधानिक संशोधन दोनों ही सदनों द्वारा पारित होना आवश्यक है। जापान में 2/3 बहुमत तथा ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, यू.एस.ए. में इस संदर्भ में प्रांतीय सहमति भी आवश्यक है।

विभिन्न संसदीय कर्तव्यों का निर्वाह

समकालीन प्रजातांत्रिक युग में लोकल्याणकारी राज्य के कार्यों में पर्याप्त वृद्धि हुई है। व्यवस्थापिका के निम्न सदन के कार्य अत्याधिक बढ़ गये हैं। ऐसे में द्वितीय सदन संसद को सांसदों की एक अतिरिक्त संस्था प्रदान करती है जो संसदीय कार्यभार को हल्का करती है। द्विसदनात्मकता विधायी व्यवस्था को संगठित तरीके से पूरक कार्यों को करने योग्य बनाती है। जहाँ निम्नसदनीय सदस्य प्रतियोगी दबावों के चलते विधायन कार्य की प्राथमिकताओं पर कार्य नहीं कर पाते वहीं विभिन्न शक्तियों एवं संरचना वाले उच्च सदनों से विधायन कार्य के विस्तार वाले पक्ष पर ध्यान केन्द्रित करना संभव हो जाता है।

---

1. Leki; Decision Making In Political System; "Veto Players In Presidentalism, Parliamentarism, Multi-cameralism" British Journal Of Political Science 1995

उच्च सदनीय सदस्यों को अपने निर्वाचन क्षेत्रों के दबाव से संबंध रखने या लगाव रखने की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वे नियुक्त होते हैं (जैसे यू.के.एवं कनाडा में) या अप्रत्यक्ष रूप से (जैसे फ्रांस या आयरलैण्ड) या व्यापक भौगोलिक क्षेत्रों (जैसे ऑस्ट्रेलिया में) जिन देशों में वे अप्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं उनके पास संसदीय कार्यों के लिये पर्याप्त समय रहता है जिससे महत्वपूर्ण विधायन कार्य अधिक कुशलतापूर्वक होता है। निर्वाचकों के प्रति कम उत्तरदायी होना कई द्वितीय सदनों को अधिक परिपक्व और कम लालसा रखने वाला बनाता है। परिणामस्वरूप वे निम्न सदनीय सदस्यों की अपेक्षा मीडिया तथा अपने राजनीतिक दलों के प्रति भी कम जवाबदेह होते हैं।

जहाँ सरकार के पास निम्न सदन में बहुमत न हो तो उच्च सदन और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यह स्क्रूटनी की गुणवत्ता को प्रभावित करता है और संसदीय प्रक्रिया को प्रभावित कर सकता है। यहाँ तक कि ऑस्ट्रेलिया सीनेट को 'Legislative Power house of Parliament' (संसद का विधायी पावर हाउस) कहा जाने लगा है। द्वितीय सदन संसदीय कार्यों के अन्य आयामों पर परिपूरक उपागम के लिये संभावनायें भी प्रदान करता है तथा प्रथम सदन द्वारा उपेक्षित कार्यों को कर लेता है। उदाहरण के लिये ऑस्ट्रेलियन सीनेट में समितियाँ जो मानव अधिकारों के क्रियान्वयन से संबंधित विधेयकों तथा स्पेनिश सीनेट जो विधायन के भू–क्षेत्रीय क्रियान्वयन का मूल्यांकन करती है।

द्वितीय सदनों की प्रभावोत्पादकता

पूर्व विवरण से स्पष्ट है कि द्वितीय सदन संसद को अनेक अभीप्सित, सशक्त, गुणवत्तापूर्ण विशिष्टतायें प्रदान करते हैं– कार्यपालिका से स्वतंत्रता, नीति–निर्माण पर जनचेतना, सरकार तथा उसके विधायन की सूक्ष्म जाँच–पड़ताल आदि। वास्तव में निम्न स्तरीय प्रोफाइल के बावजूद वे प्रथम सदन की अपेक्षा, (जो कि कार्यपालिका तथा राजनीतिक दलों के वर्चस्व से ग्रस्त हैं) संसद के शास्त्रीय कार्यों को अधिक प्रभावी तरीके से करती हैं। उक्त सकारात्मक विशेषतायें समस्त द्वितीय सदनों में न्यूनाधिक पाई ही जाती है। भले ही एक बड़ी सीमा तक उक्त भूमिकाओं का निर्वहन भिन्न हो सकता है। उदाहरणार्थ अमेरिका की सीनेट वहाँ की शासन व्यवस्था का मजबूत स्तम्भ कही जाती है, दूसरी ओर कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका, न्यूजीलैण्ड आदि देशों की शासन प्रणाली में द्वितीय सदन की भूमिका नगण्य ही है।

द्विसदनात्मक विधायिकाओं की समस्यायें भी है। उत्तरदायित्व के विभाजन अपव्यय तथा संगठन संबंधी अनिश्चतता आदि कारणों से द्वितीय सदन की आलोचना होती रही है। सबसे बड़ा संकट संसदीय पूर्ण अवरोधात्मक स्थिति का है। यह तब होता है जब दोनों सदन विपरीत दृष्टिकोण रखते हो, और द्वितीय सदन को विधेयक रोकने का अधिकार हो। उन व्यवस्थाओं में जहां विवाद समाधान का प्रवधान हो, पूर्ण अवरोध नहीं हो सकता, यद्यपि विलम्ब हो सकता है। लेकिन जिन सदनों को विधेयक को रोकने का अधिकार है वहां अवरोध अधिक गंभीर हो सकता है।

द्वितीयतः द्विसदनात्मकता के अंतर्गत व्यवस्था में इतना दोहराव हो जाता है आवश्यक रूप से व्यवस्था में अक्षमता आ जाती है जो अनावश्यक कार्य व विलम्ब का वाहक बनता है। यह स्थिति वहाँ अधिक होती है जहाँ दोनों सदन गठन की दृष्टि से विशिष्ट न हो, वहाँ द्वितीय सदन कोई नवीन दृष्टिकोण नहीं उपजाता अपितु धीमी नीति–निर्णय प्रक्रिया को जन्म देता है, यह दुर्बलता इटेलियन संसदीय व्यवस्था में दिखाई देती है। जहाँ दोनों सदन एक ही समान निर्वाचन प्रणाली से चुने जाते हैं, परिणामतः उनके पास समान राजनीतिक संतुलन तथा समान प्रकृति के राजनीतिज्ञ होते हैं, (यद्यपि सीनेट को लघु आकार तथा अविश्वास प्रस्ताव के अधिकार जैसे विशिष्ट लक्षण प्राप्त हैं) तथा समान गठन है। इसीलिये अनेक इटैलियन सुधारक द्विसदनात्मकता के सिद्धान्ततः तो समर्थक हैं परन्तु चाहते हैं कि द्वितीय सदन गठन एवं कार्यों में अधिक विशिष्ट हो।

तीसरा संकट अवरोधात्मक स्थिति (Gridlock) से ठीक विपरीत है वह यह है कि द्वितीय सदन को शक्तिहीन कर नीति–निर्माण प्रक्रिया से किनारे कर दिया जाता है। ऐसे में भले ही विधेयक के संबंध में भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तावित करे, वह निम्न सदन व कार्यपालिका द्वारा पारित कर दिया जाता है। ऐसी स्थिति में द्विसदनात्मकता का लाभ समाप्त हो जाता है। उदाहरण के लिये आयरिश द्वितीय सदन जो कि औपचारिक रूप से दुर्बल है, वहाँ प्रशासकीय बहुमत है तथा वह जनता से विलग है। यह तालमेल सुनिश्चित करता है कि सीनेट शायद ही कभी सरकार को चुनौती देती है और आसानी से किनारे कर दी जाती है। अतः उसका अस्तित्व निष्प्रभावी है। (यद्यपि वह अनेक शास्त्रीय द्विसदनीय विशेषतायें रखती है तथा विधायी जांच पड़ताल करती है।) अतः आयरलैण्ड में सुधार के तौर पर द्वितीय सदन की समाप्ति पर चर्चा है।

सरकारों द्वारा द्वितीय सदनों को कलंकित करने के प्रयास वहाँ अधिक सफल हुये हैं जहाँ उनका जनतांत्रिक गठन कम स्पष्ट है। कनाडा में जहाँ सीनेट पूर्णतः नियुक्ति प्रक्रिया से गठित है, वहाँ सरकारें निरन्तर हस्तक्षेप कर रही हैं जो कि न्यायोचित नहीं है। सीनेट की अन्वेषण समिति की निरंतर अवहेलना की जाती है।

यहाँ कि C.F.S. Franks का कथन उल्लेखनीय है। "Appointment by the Prime Minister from among Party supporters has by now reduced the legitimacy of the senate to the point where it harms not only the senate but also parliament as a whole and even the government."[1]

---

1. C. F. S. Frank, "Not Dead, Yet, But Should It Be Resurrected?" The Canadian Senate In Patterson a. Mughan Page 156

(प्रधानमंत्री द्वारा अपने दलीय समर्थकों में से नियुक्ति ने सीनेट की वैधता में इस बिन्दु तक कमी की है जहाँ वह न केवल सीनेट को बल्कि संसद को पूर्णरूपेण और सरकार तक को नुकसान पहुँचा रहा है।) इंगलैण्ड में भी हाल के सुधारों के बावजूद वही प्रणाली दिखाई देती है। लार्ड सभा से आनुवांशिक पियर्स को हटाने से सरकार का मत है कि द्वितीय सदन अधिक वैध बन गया है, लेकिन वह विधेयक पर इस व्यापक सदन के हस्तक्षेप का स्वागत नहीं करती है।

यह स्पष्ट तथा विवेकपूर्ण है कि यदि इन संस्थाओं (द्वितीय सदनों) के गौरव व सम्मान की रक्षा हेतु इनके गठन को लोक–अन्वेषण का विषय न बनाया जाए। द्विसदनात्मक प्रणाली की प्रभावी भूमिका के लिये कुछ विशिष्ट तत्व विचारणीय हैं।

1. **महत्त्वपूर्ण शक्तियों** के बिना एक उच्च सदन सरकार तथा नीति–निर्माण पर पर्याप्त प्रभाव नहीं रख सकती। भले ही इन शक्तियों का प्रयोग आवश्यक रूप से न हो परन्तु उनका अस्तित्व सदन को मजबूत सौदेबाजी की स्थिति में रख सकता है।

2. **विशिष्ट गठन** द्विसदनात्मकवाद के पीछे तर्क दिया जाता है कि वह विभिन्न हितों का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसे में यदि दोनों सदनों की सदस्यता एकदम समान हो विधायी व्यवस्था बिल्कुल कमजोर हो जायेगी। आधुनिक दल–आधारित संसदों में द्वितीय सदन तभी प्रभावी हो सकता है जब प्रथम सदन से भिन्न दलीय संतुलन हो।

3. **पर्याप्त वैधता –** द्वितीय सदनों के पास पर्याप्त वैधता हो साथ ही उसे दिखाई भी देना चाहिये। उदाहरण के लिये कनाडा और इंगलैण्ड के उच्च सदन के लिये विशिष्ट सदस्यता एवं महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ पर्याप्त नहीं है, प्रयोग में भी उन्हें वैध दिखना चाहिये अन्यथा उनकी प्रभावोत्पादकता को हानि पहुंचेगी।

वर्तमान में सशक्त व निर्बल दोनों ही प्रकार की द्विसदनात्मक संसदों में असंतोष दिखाई देता है तथा सुधार की मांग भी है। उनकी शक्तियों, गठन व वैधता के लक्षणों के बीच कठिन संतुलन है।

निष्कर्ष I– शासन की संसदीय व्यवस्था को एक द्वितीय सदन जो प्रदान कर सकता है, वह है–

1. विभिन्न हितों को प्रतिनिधित्व
2. कार्यपालिका से स्वतंत्रता
3. प्रजातांत्रिक सिद्धांतों के अनुरूप
4. एक संघ राज्य के लिये वांछनीय
5. सामर्थ्यवान वीटो खिलाड़ी
6. संसदीय कार्यभार को हल्का करना

II द्विसनात्मक विधायिकाओं की समस्यायें भी है। इनमें विधायन–कार्य में अवरोध, दोहराव, विलम्ब, अपव्यय, संगठन संबंधी अनिश्चतता तथा उत्तरदायित्व का विभाजन आदि है।

III वर्तमान द्विसदनीय विधायी–व्यवस्था के सम्मुख चुनौतियाँ भी हैं। इस संदर्भ में 3 अपरिहार्य विशिष्टतायें विचारणीय है विशिष्ट गठन, महत्त्वपूर्ण शक्तियों के प्रावधान तथा वैधता का अस्तित्व।

≈≈≈≈

समस्त संघीय प्रणालियों में दो परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ केन्द्राभिमुखी व केन्द्रपरामुखी सदैव क्रियाशील रहती हैं। संवैधानिक यन्त्रों के माध्यम से इन बलों को इस प्रकार संयोजित किया जाता है कि सामान्य राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति की जा सके, साथ ही इन परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों को स्वर प्रदान करने तथा संघ की विविधताओं को समायोजित करने हेतु क्रियाशील राजनीतिक नेतृत्व के माध्यम से दलीय प्रणाली अस्तित्व में आती हैं। यह दलीय प्रणाली संघ के चरित्र को प्रभावित करती है, साथ ही संघ की विशेषताओं से प्रभावित होती भी है। इस प्रकार राजनीतिक दल, राजनीतिक व्यवस्था के समानान्तर विकसित व अग्रसर होते हैं। उदाहरण के लिये स्विट्जरलैण्ड में दलों का विकास कैण्टनों के आधार पर हुआ है, वहीं संयुक्त राज्य अमेरिका में राजनीतिक दल स्वयं क्षेत्रीय दलों के संघ के समान हैं। संघ में क्षेत्रीय इकाइयाँ पृथक, स्वपोषित सत्ता के केन्द्र होती हैं, जो दलों के विकास हेतु उपयुक्त परिवेश उपलब्ध करवाती है, जो सीमित कार्यक्षेत्र में प्रभावी हों। निष्कर्षतः संघीय इकाइयाँ क्षेत्रीय स्तर पर दलों को संगठित होने में सहायता प्रदान करती हैं।

संघीय व्यवस्था एक क्रियाशील दलीय प्रणाली के बिना राष्ट्रीय व क्षेत्रीय स्तर पर शिथिल बनी रहती है। संघवाद के सफल क्रियान्वयन हेतु राजनीतिक व्यवस्था के पास पर्याप्त प्रतिकार क्षमता होनी चाहिये, यह क्षमता राजनीतिक दल उपलब्ध करवाते हैं। प्रत्येक संघ में संवैधानिक संघवाद के ध्रुव के समानान्तर एक राजनीतिक संघवाद अस्तित्व में रहता है, जिसके विभिन्न दल (राष्ट्रीय और क्षेत्रीय) संघीय व्यवस्था की वास्तविक प्रवृत्ति का निर्धारण करते हुये निर्णयकर्ता के समान कार्य करते हैं। संघात्मक राज्य की इकाइयाँ स्वयं में स्वतन्त्र होते हुये भी एक वृहद संरचना का भाग होती है तथा साझा नीतियों व निर्णयों को समवेत स्वर प्रदान करती हैं। इस प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाते हुये क्षेत्रीय दल, क्षेत्रीय हितों को राष्ट्रीय हितों के अनुरूप समायोजित करने का काम करते हैं। यह व्यवस्था संघीय प्रक्रिया को गत्यात्मकता व सुदृढ़ता प्रदान करती है।

उक्त इकाइयों को संस्थात्मक रूप प्रदान करने तथा राज्य इकाइयों की स्वायत्तता व राजनीतिक व्यवस्था में उनकी सहभागिता सुनिश्चित करने हेतु संघीय राष्ट्र के लिखित संविधान में अनेक प्रावधान समाविष्ट किये जाते हैं। इसी क्रम में भारतीय संघ के अन्तर्गत केन्द्रीय स्तर पर द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका की स्थापना की गई है, जिसका द्वित्तीय सदन (राज्य सभा) केन्द्रीय व्यवस्थापिका में राज्य इकाइयों को प्रतिनिधित्व प्रदान करता है। यद्यपि यह राज्य सभा की स्थापना का एकमात्र उद्देश्य नहीं है। राज्यों की मांगों को स्वर देने के साथ–साथ यह लोक सभा के आनुषांगिक सदन के रूप में भी काम करता है। संविधान निर्माताओं द्वारा राज्य सभा को ऐसे सदन के रूप में निर्मित करने का प्रयास किया गया जो विशिष्ट अभिजन वर्गों को भी प्रतिनिधित्व प्रदान करें साथ ही विधायी प्रक्रिया में भी सक्रिय व रचनात्मक सहयोग दें।

सदन के कुल 250 सदस्यों में से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामांकित किये जायेंगे। जबकि शेष सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में राज्य सभा का भाग होंगे।[1]

अनु. 80(4) के अनुसार राज्य सभा के प्रतिनिधित्व के लिये आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को अपनाया गया है। "राज्य की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा अप्रत्यक्ष निर्वाचन स्वीकार किया गया, जिससे अल्पसंख्यक समुदायों तथा दलों का प्रतिनिधित्व हो सके। संघ राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधि ऐसी विधि द्वारा चुने जायेंगे जैसा कि संसद विहित करे।"[2] मतदान का अधिकार नागरिकों को न देकर निर्वाचित प्रतिनिधियों को दिया जाना राज्य सभा चुनाव को विशिष्टता प्रदान करता है। इस प्रक्रिया के मूल में संविधान निर्माताओं का मंतव्य स्पष्ट था, **संविधान निर्माता राज्य सभा के माध्यम से संघात्मक व्यवस्था के अनुकूल व संतुलित प्रतिनिधित्व का निर्माण करना चाहते थे तथा द्वितीय सदन को दलगत राजनीति की स्वाभाविक दुर्बलताओं से अप्रभावित रखना चाहते थे। राज्य व्यवस्थापिकाओं के विधायकों को केन्द्रीय व्यवस्थापिका के उच्च सदन के सांसदों के निर्वाचन हेतु मतदान का अधिकार प्रदान करने का एक स्वाभाविक परिणाम राज्य राजनीति व राष्ट्रीय राजनीति में अन्तर्सम्बन्ध स्थापित होना रहा है और यही एक संघीय प्रणाली के लिये श्रेयस्कर व्यवस्था है। जिसके फलस्वरूप राज्य राजनीति को प्रभावित करने वाले कारक स्वतः ही राष्ट्रीय राजनीति से सम्बद्ध होने लगे।** अतः राज्यों के प्रतिनिधि सदन के रूप में राज्य सभा के विकास का अध्ययन यह अपेक्षा करता है कि इस प्रकार के कारकों का गंभीरता से विश्लेषण किया जाये। यह संघवादी व्यवस्था के सन्दर्भों में भी उचित होगा, क्योंकि एक संघ राज्य इकाइयों की विभिन्नता का ही समुच्चय है। राज्य सभा में राज्य विशेष के प्रतिनिधियों की संख्या, सम्बद्ध राज्य की जनसंख्या के अनुसार निर्धारित की जाती है। इस सम्बन्ध में संविधान यह व्यवस्था करता है—"एक राज्य की जनसंख्या के प्रथम पचास लाख व्यक्तियों तक हर दस लाख व्यक्तियों के लिये एक और उसके बाद 20 लाख व्यक्तियों पर एक प्रतिनिधि के अनुसार राज्य के प्रतिनिधियों की गणना की जायेगी ।" अतः जहाँ राज्य सभा में उत्तर प्रदेश के 31 सांसद हैं, वहीं मिजोरम, मणिपुर, सिक्किम जैसे राज्यों के केवल 1 प्रतिनिधि है। कुछ केन्द्रशासित प्रदेश ऐसे भी हैं जहाँ जनसंख्या कम होने के कारण राज्य सभा में उनका कोई प्रतिनिधि नहीं है। राज्य सभा में राज्यवार सीटों का आवंटन निम्न है।[3]

---

1. अनुच्छेद 80(1) व (3)
2. अनुच्छेद 80 (4)
3. अनुसूची (4) के अनुसार

रेखाचित्र संख्या – 2

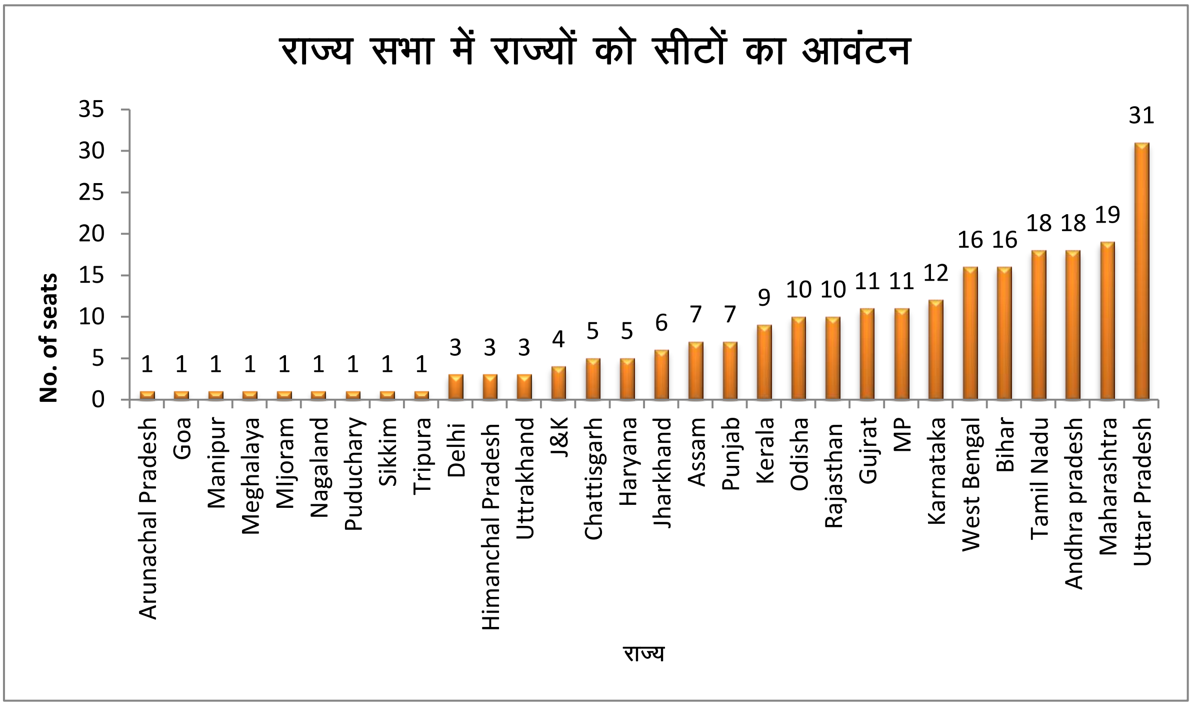

अण्डमान व निकोबार द्वीप समूह, चण्डीगढ़, दादरा व नागर हवेली, दमन व द्वीप तथा लक्षद्वीप ऐसे केन्द्रशासित प्रदेश हैं जिनका राज्य सभा में प्रतिनिधित्व नहीं है। इसके अतिरिक्त 12 व्यक्ति राष्ट्रपति द्वारा नामित किये जाते हैं।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संविधान निर्माता ऐसे सदन का निर्माण करना चाहते थे जिसमे मूलत: राज्यों व केन्द्रशासित प्रदेशों के प्रतिनिधि हो तथा साथ ही मनोनीत सदस्यों के माध्यम से इसमे अभिजन तत्व का समावेश हो। राज्यस्तरीय सीटों का आवंटन संविधान की चौथी अनुसूची में दिया गया है। केन्द्रशासित प्रदेशों का राज्य सभा में प्रतिनिधित्व सातवें संशोधन विधेयक 1956 के अनुरूप है। इन प्रदेशों से प्रतिनिधियों का चयन उस विधि द्वारा होता है जैसा कि संसद विहित करे। राज्य सभा की 244 सीटों में से 6 सीटें केन्द्र शासित प्रदेशों से सम्बन्धित है (दिल्ली से 3, पुडुचेरी, मिजोरम, अरूणाचल प्रदेश से 1–1)

प्रस्तुत अध्याय का उद्देश्य भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य सभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव को विश्लेषित करना है, जो कि राज्यों के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से किया जाना है। इस विश्लेषण हेतु तीन आधारों का चयन किया गया है–

- → **संरचना के आधार पर विश्लेषण**
- → **दलीय प्रतिनिधित्व के आधार पर विश्लेषण**
- → **इकाइयों के आकार के आधार पर विश्लेषण**

3.1 संरचना के आधार पर विश्लेषण

सर्वप्रथम संरचना के आधार पर विश्लेषण का अर्थ है, राज्य सभा की संरचना अथवा संगठन में क्षेत्रीय दलों की सहभागिता का अध्ययन करना अर्थात शोध हेतु चयनित अध्ययनकाल में राज्य सभा में उपस्थित क्षेत्रीय दलों के संख्या बल सम्बन्धी आंकड़ों का विश्लेषण करके राज्य सभा की संरचना पर इन दलों के प्रभाव को समझने का प्रयास किया जायेगा।

द्वितीय आयाम दलीय प्रतिनिधित्व के आधार पर विश्लेषण का है। यद्यपि दलीय प्रतिनिधित्व मूलत: इस तथ्य पर निर्भर करता है कि सम्बद्ध राज्य को राज्यसभा में कितने स्थान आवंटित किये गये हैं तथापि निरपेक्ष दृष्टि से यह जानना भी वांछनीय है कि विविध क्षेत्रीय दल समग्र रूप से राज्यसभा में किस अनुपात में उपस्थित रहे हैं।

तृतीय आयाम के अन्तर्गत दलीय प्रतिनिधित्व का विश्लेषण इकाइयों के आकार के आलोक में करने का प्रयास किया जायेगा। इसके अन्तर्गत यह जानने का प्रयास किया जायेगा कि इकाइयों का आकार किस प्रकार क्षेत्रीय दलों की उपस्थिति व प्रतिनिधित्व को प्रभावित करता है, साथ ही यह जानने का प्रयास भी किया जायेगा कि क्या सभी बड़े/छोटे राज्यों में क्षेत्रीय दलों का विस्तार एक समान है अथवा उनमें किसी प्रकार की विसंगति पाई जाती हैं।

उक्त सन्दर्भों में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि राज्यसभा स्वयं में एक सम्पूर्ण व्यवस्था नहीं है, बल्कि संसद (व्यवस्थापिका) रूपी व्यवस्था में अवस्थित एक संरचना है। व्यवस्थावादी विचारक आमण्ड द्वारा प्रतिपादित 'व्यवस्थाओं में उपस्थित संरचनाओं की अन्तर्निर्भरता के सिद्धान्त' के अनुरूप राज्यसभा के कार्यकरण व संरचना का विकासात्मक दृष्टिकोण से परीक्षण (क्षेत्रीय दलों के सन्दर्भों में) लोक सभा के सापेक्ष करना उचित होगा। राज्य सभा सांसदों का निर्वाचन राज्य व्यवस्थापिका के निर्वाचित विधायकों द्वारा किया जाता है, जिनका मतदाता समूह वही है जो लोक सभा सांसदों का निर्वाचन करता है इस प्रकार दोनो सदनों में स्वत: ही एक अन्तर्निर्भरता व्याप्त हो जाती है। लोक सभा भारतीय संसद का प्रतिनिधि सदन व भारतीय राजनीतिक पटल का मुखर मंच है। प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रणाली के आधार पर गठित होने के कारण इस सदन के दलीय व्यवस्था की विकासात्मक प्रक्रियाओं से स्वत: प्रभावित होने की संभावना सर्वाधिक है।

ऐसा सामान्यीकरण स्वीकार करने के पर्याप्त आधार हैं जिनमें से प्रमुख निम्न हैं।

1. संसदात्मक शासन व्यवस्था के संगठन का प्रमुख आधार राजनीतिक दल होते हैं। भारतीय संसद के प्रतिनिधि सदन लोक सभा का निर्वाचन प्रत्यक्ष रीति से सम्पन्न होता है तथा सदन का संगठन पूर्णतः दलीय आधार पर होता है अतः दलीय व्यवस्था में किसी भी प्रकार का परिवर्तन लोकसभा के कार्यकरण को प्रभावित कर सकता है। विशेषकर जब दलों की प्रकृति में मूलभूत परिवर्तन हों। जैसे कि यदि दलों के आयाम

राष्ट्रीय न होकर क्षेत्रीय होंगे तो उनके सन्दर्भ भी तदनुसार परिवर्तित होंगे और यह परिवर्तन लोकसभा के कार्यकरण व संगठन में अवश्य परिलक्षित होगा।

2. दल प्रतिनिधि जन भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम होते हैं तथा लोकसभा प्रतिनिधि सदन के रूप में इन्हें मंच प्रदान करता है। अतः यह स्वाभाविक ही है कि राज्य राजनीति में मुखर होते क्षेत्रीय दल, लोक सभा में भी प्रभावी भूमिका का निर्वहन करें।

प्रस्तुत अध्याय हेतु चयनित परिकल्पना **"संघीय इकाइयों के प्रतिनिधि सदन के रूप में राज्य सभा का विकास उत्तरोत्तर दलीय प्रतिमानों से प्रभावित हो रहा है।"** का परीक्षण करने से पूर्व क्षेत्रीय दलों के उदय का लोकसभा के सन्दर्भों में परीक्षण करना समीचीन होगा। जिससे इस सन्दर्भ में राज्य की विशिष्टता को पूर्णरूपेण उजागर किया जा सके। यह प्रयास शोध के निष्कर्षों को पूर्णता प्रदान करेगा। अतः संविधान लागू होने के बाद से अब तक के लोक सभा चुनावों का विश्लेषण इस परिप्रेक्ष्य में करने का प्रयास किया गया है कि क्षेत्रीय दलों के उदय का मूल प्रारूप किस प्रकार का रहा है।

निम्न ग्राफ (रेखाचित्र 3) द्वारा यह प्रदर्शित किया गया है कि प्रथम लोक सभा चुनाव से 16वीं लोक सभा चुनाव तक विभिन्न प्रकार के राजनीतिक दलों की सहभागिता किस प्रकार की रही।

रेखाचित्र संख्या – 3

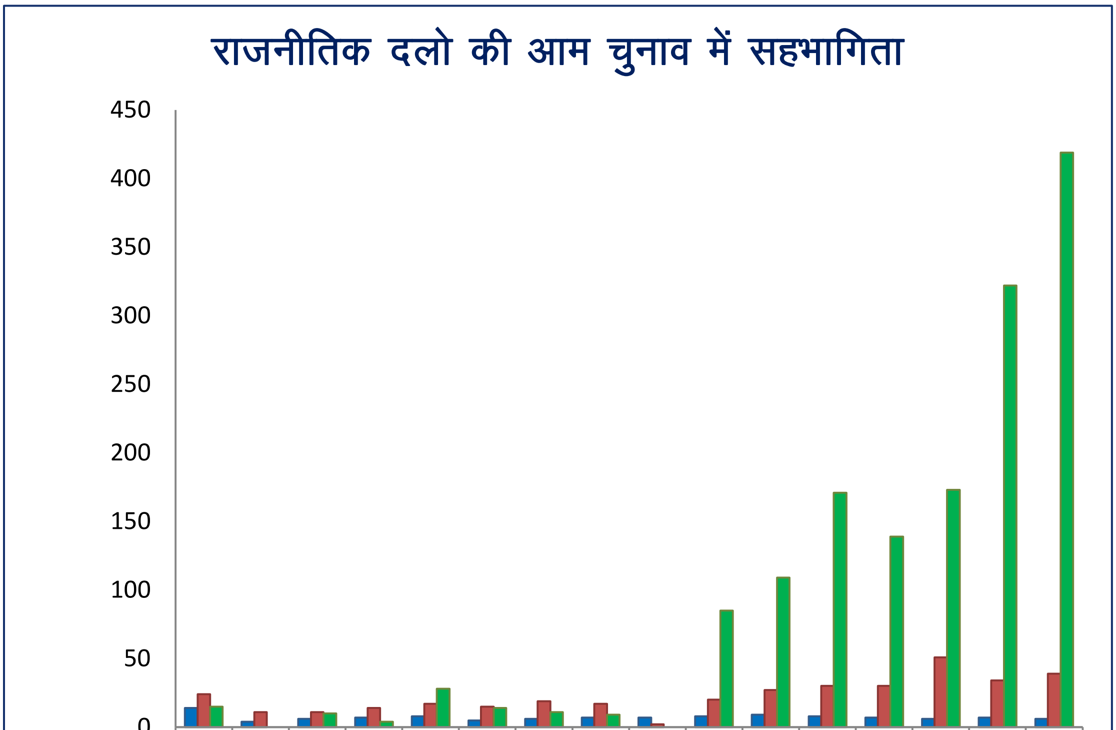

	1st	2nd	3rd	4th	5th	6th	7th	8th	9th	10th	11th	12th	13th	14th	15th	16th
national	14	4	6	7	8	5	6	7	7	8	9	8	7	6	7	6
state	24	11	11	14	17	15	19	17	2	20	27	30	30	51	34	39
regional	15	0	10	4	28	14	11	9	0	85	109	171	139	173	322	419

ग्राफ में प्रदर्शित आंकड़ों से ज्ञात होता है।

चुनाव आयोग द्वारा दलों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया गया है।

1. राष्ट्र स्तरीय पार्टियाँ
2. राज्य स्तरीय पार्टियाँ
3. रजिस्टर्ड (Unrecognised) पार्टियाँ

राष्ट्र स्तरीय दलों को छोड़कर शेष दोनों श्रेणियों के उद्गम व आधार क्षेत्रीय हितों पर आधारित है। वृहत्तर कार्यक्षेत्र के आधार पर कुछ दलों को राज्य स्तरीय माना गया है, परन्तु मूलाधार क्षेत्रीय होने के कारण अंतिम दोनों श्रेणियों को अध्ययन में शामिल किया गया है।

- जैसा कि उक्त ग्राफ से स्पष्ट है कि 1952 (प्रथम लोक सभा) से 2014 (16वीं लोक सभा) तक निर्वाचन में सहभागी क्षेत्रीय दलों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। यह वृद्धि 10वीं लोक सभा चुनाव परिणाम व उसके पश्चात् स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। इसमें पूर्व दूसरे व नवें लोक सभा चुनाव में क्षेत्रीय दलों की संख्या शून्य थी, जो उल्लेखनीय रूप से 10वीं लोक सभा में 85 हो गई।
- वृद्धि दर की दृष्टि से तुलना करने पर यह तथ्य स्पष्ट होता है कि जहाँ राष्ट्रीय पार्टियों की संख्या 1952 से 2014 तक 14 से घटकर 7 रह गई, वहीं राज्य स्तरीय दल 24 से बढ़कर 39 हो गई। रेखाकिंत करने योग्य वृद्धि क्षेत्रीय दलों ने दर्शाई तथा 1952 में 15 के स्तर से 10वीं लोक सभा (वर्ष 1991) में 85 तथा 16वीं लोक सभा में 419 हो गई।
- राज्य स्तरीय दलों की संख्या में विशेष वृद्धि 14वीं लोक सभा चुनावों में देखी गई। 13वीं लोक सभा में 30 राज्य स्तरीय दल थे जो 14वीं लोकसभा में 51 हो गये तथा 15वीं लोक सभा में पुनः 34 हो गये।

दलों की संख्या में वृद्धि के साथ–साथ यह जानना भी महत्त्वपूर्ण होगा कि इस वृद्धि का क्षेत्रीय दलों द्वारा लोक सभा में प्राप्त किये गये स्थानों पर क्या प्रभाव पड़ा।

रेखाचित्र संख्या – 4

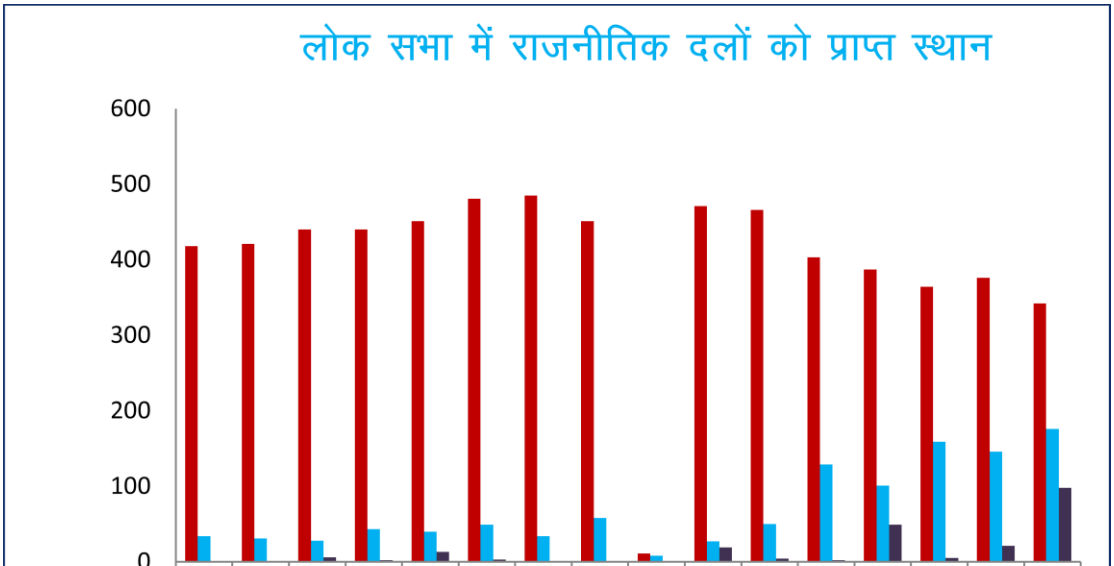

	1st	2nd	3rd	4th	5th	6th	7th	8th	9th	10th	11th	12th	13th	14th	15th	16th
national	418	421	440	440	451	481	485	451	11	471	466	403	387	364	376	342
state	34	31	28	43	40	49	34	58	8	27	50	129	101	159	146	176
regional	0	0	6	2	13	3	1	0	0	19	4	2	49	5	21	98

- ग्राफ 4 के परिणामों की तुलना ग्राफ 3 के परिणामों से करने पर यह स्पष्ट है कि जिस अनुपात में क्षेत्रीय दलों की सहभागिता में वृद्धि हुई है उसके सापेक्ष क्षेत्रीय दलों को प्राप्त सीटों की संख्या में उस अनुपात में वृद्धि नहीं देखी गई।
- राष्ट्रीय दलों से सम्बन्धित आंकड़े देखने पर ज्ञात होता है कि प्रथम आम चुनाव में प्राप्त 418 स्थानों की तुलना में 2014 के आम चुनाव में यह संख्या 342 रही अर्थात कमी आई।
- राज्य स्तरीय दलों को प्रथम आम चुनाव में 34 स्थान प्राप्त हुये, वहीं उतार चढ़ाव के साथ 11वीं लोक सभा में राज्य स्तरीय दलों ने 50 स्थान प्राप्त किये। 12वीं लोक सभा में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज करते हुये यह स्थान 129 हो गये, जबकि इसी काल में राज्य स्तरीय दलों के बढ़ते प्रभाव का स्पष्ट संकेत माना जा सकता है। 14वीं, 15वीं व 16वीं लोकसभा में दन दलों ने क्रमशः 159, 146 व 176 स्थान प्राप्त करके क्षेत्रीय दलों के प्रभाव क्षेत्र में विस्तार की धारणा को पुष्ट किया।
- क्षेत्रीय दलों के विषय में महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि प्रत्येक लोक सभा चुनाव के साथ इनकी संख्या द्रुत गति से बढ़ती गई, परन्तु यह बढ़त इनके द्वारा प्राप्त स्थान में 12वीं लोकसभा तक परिलक्षित नहीं हुई। 13वीं लोक सभा में 49 स्थान प्राप्त करके इन दलों ने अपनी उपस्थिति प्रभावी रूप से दर्शाई। वहीं 16वीं लोक सभा में 98 सीटों के साथ इन दलों ने स्वयं को भारतीय राजनीति के महत्त्वपूर्ण तत्व के रूप में स्थापित कर दिया।

निष्कर्षतः

1. उक्त आकलन इस धारणा को सुदृढ़ करने हेतु पर्याप्त है कि संविधान लागू होने के बाद से अब तक न केवल राज्य राजनीति बल्कि राष्ट्रीय राजनीति में भी क्षेत्रीय दल निरन्तर अपनी सक्रियता व सहभागिता का विस्तार करते रहे हैं।
2. ग्राफ 3.1 के अनुसाररजिस्टर्ड क्षेत्रीय दलों ने 10वीं लोकसभा चुनावों से और राज्य स्तरीय क्षेत्रीय दलों ने 14वीं लोकसभा चुनावों से अपनी प्रभावी उपस्थिति दर्ज की।

पुनः विचारणीय प्रश्न यह है कि क्षेत्रीय दलों के विस्तार का प्रारूप क्या रहा, अर्थात सभी राज्यों में क्षेत्रीय दलों का विस्तार एक समान रहा अथवा असमान रहा। इस प्रश्न के लिये अध्ययन काल में सम्पन्न दो लोक सभा चुनावों (2004 व 2009) का विश्लेषण राज्यवार किया गया।

2004 व 2009 के लोक सभा चुनाव परिणाम

तालिका संख्या – 4

राज्य	2004		2009	
	राष्ट्रीय	क्षेत्रीय	राष्ट्रीय	क्षेत्रीय
आन्ध्र प्रदेश (42)	31	11	33	09
अरुणाचल प्रदेश (2)	02	00	02	00
आसाम (14)	11	02	11	03
बिहार (40)	08	32	18	20
छत्तीसगढ़ (11)	11	00	11	00
दिल्ली (07)	07	00	07	00
गोवा (2)	02	00	02	00
हरियाणा (10)	10	00	09	01
हिमाचल प्रदेश (4)	04	00	04	00
जम्मू–कश्मीर (6)	02	03	02	03
झारखण्ड (14)	08	06	09	03
कर्नाटक (28)	26	02	25	03
केरल (20)	15	04	17	03
मध्य प्रदेश (29)	29	00	29	00
महाराष्ट्र(48)	35	13	34	13
मणिपुर (2)	01	00	02	00
मेघालय (02)	01	01	02	00
मिजोरम (01)	00	01	01	00
नागालैण्ड (01)	00	01	00	01

उड़ीसा (21)	09	12	07	14
पंजाब (13)	05	08	09	04
राजस्थान (25)	25	00	24	00
सिक्किम (01)	00	01	00	01
उत्तराखण्ड (05)	04	01	05	00
उत्तर प्रदेश (80)	38	41	51	28
तमिलनाडु (39)	14	25	10	29
त्रिपुरा (02)	02	00	02	00
पं. बंगाल (42)	35	7	18	23
गुजरात (26)	26	00	26	00
अण्डमान(1)	01	00	01	00
चण्डीगढ़(1)	01	00	01	00
दमन और दीव (1)	01	00	01	00
दादर और नागर हवेली (1)	00	01	01	00
लक्षद्वीप(1)	00	01	01	00
पुडुचेरी(1)	00	01	01	00
योग	**364**	**174**	**376**	**158**

उक्त आंकड़ों के आधार पर क्षेत्रीय दलों की सक्रियता के अनुसार राज्यों को 4 श्रेणियों में बांटा जा सकता है, जिन्हें मानचित्र की सहायता से प्रदर्शित किया गया है।

क्षेत्रीय दलों की सक्रियता के आधार पर राज्यों का विभाजन

मानचित्र संख्या –1

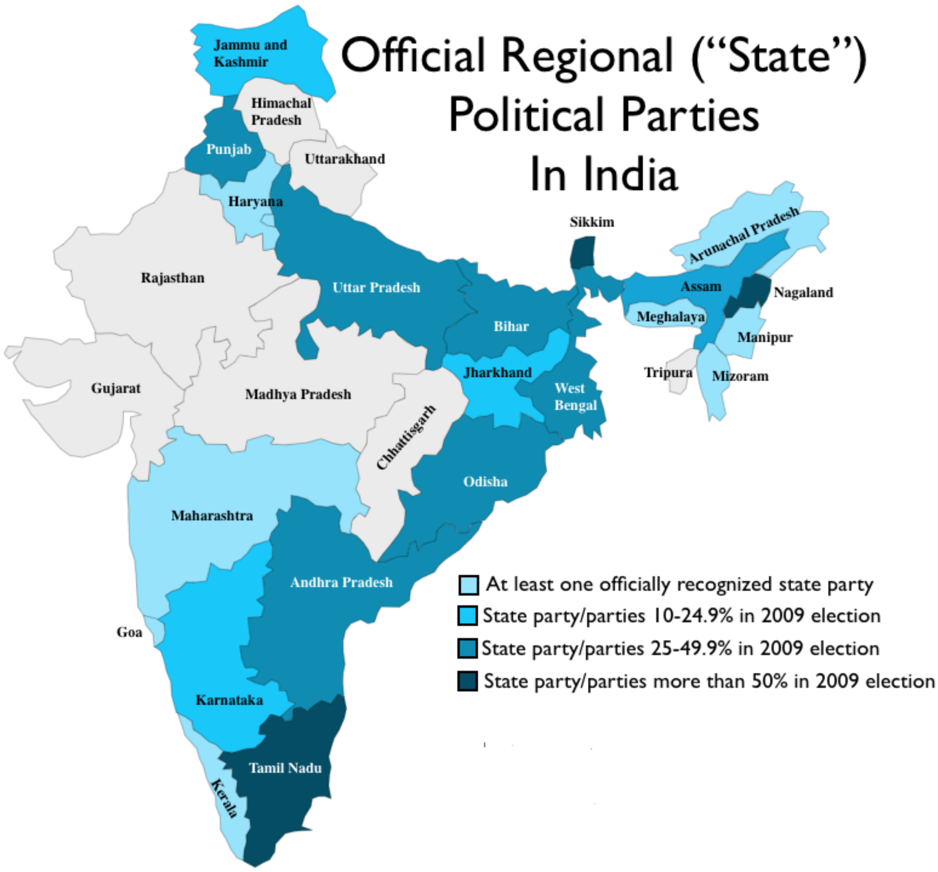

राज्यों का श्रेणीवार विभाजन लोक सभा चुनाव (2004 व 2009) में सक्रिय राज्य स्तरीय दलों व उन्हें प्राप्त वोटों तथा स्थानों के आधार पर किया गया है। इस विभाजन द्वारा यह स्पष्ट है कि यद्यपि दलों ने अपने प्रभाव क्षेत्र में वृद्धि की परन्तु यह विस्तार समस्त संघीय क्षेत्र में एक समान नहीं रहा। एक ओर तमिलनाडु जैसे राज्य हैं जहाँ राज्य राजनीति में क्षेत्रीय पार्टियों का पूर्ण वर्चस्व है, वही उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा व आन्ध्रप्रदेश जैसे राज्य भी हैं जहाँ क्षेत्रीय दल व राष्ट्रीय दल लगभग समान रूप से सक्रिय हैं। अंत में कर्नाटक, झारखण्ड जैसे राज्य हैं जहाँ क्षेत्रीय दल सक्रिय तो हैं परन्तु प्रभुत्व राष्ट्रीय दलों का हैं। राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात आदि वे राज्य हैं जहाँ क्षेत्रीय दलों का कोई अस्तित्व नहीं है।

उक्त मानचित्र के आधार पर राज्यों की चार श्रेणियाँ (जिनमें क्षेत्रीय दल सक्रिय हैं) निम्न हैं–

क्षेत्रीय दलों की सक्रियता के आधार पर राज्यों का श्रेणीवार विभाजन

तालिका संख्या – 5

प्रथम श्रेणी	**द्वितीय श्रेणी**	**तृतीय श्रेणी**	**चतुर्थ श्रेणी**
तमिलनाडु	आन्ध्र प्रदेश	कर्नाटक	महाराष्ट्र
सिक्किम	उड़ीसा	झारखण्ड	हरियाणा
	पं. बंगाल	जम्मू – कश्मीर	अरुणाचल प्रदेश
नागालैण्ड	असम	केरल	मिजोरम
	बिहार		
	उत्तर प्रदेश		
	पंजाब		

लोक सभा चुनावों के आधार पर राज्यों के श्रेणीवार विभाजन से भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत क्षेत्रीय दलों का वितरण व प्रभाव की तीव्रता स्पष्ट है, चूँकि क्षेत्रीय दल सर्वप्रथम राज्य राजनीति में सक्रिय होते हैं, जिसका स्वाभाविक परावर्तन राज्य विधान सभाओं में परिलक्षित होता है। राज्य इकाईयों की विधान सभायें समेकित रूप में राज्य सभा के निर्वाचक मण्डल के रूप में कार्य करती हैं, ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि राज्य राजनीति की दलीय संरचना विधान सभाओं के माध्यम से राज्य सभा में प्रतिबिम्बित हो।

प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी द्वारा राज्य सभा के संगठन पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव के अध्ययन हेतु तीन आधारों का चयन किया गया है (पूर्व में उल्लिखित)। इनमें से प्रथम आधार राज्य सभा की संरचना पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव से सम्बन्धित है। राज्य सभा की संरचना पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव का विश्लेषण तालिका 5 के आलोक में करने हेतु निम्न प्रक्रिया को अपनाया गया हैं।

सर्वप्रथम राज्य सभा की सम्पूर्ण सदस्य संख्या में क्षेत्रीय दलों की सहभागिता में आने वाले परिवर्तन का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। राज्य सभा की प्रथम बैठक 3/4/1952 को हुई, जिसमें 212 सदस्य उपस्थित थे। इसमें 77% राष्ट्रीय दलों के तथा 2% क्षेत्रीय दलों के सदस्य शामिल थे। शेष सदस्य मनोनीत व निर्दलीय थे। नियमित अंतराल में राज्य सभा की सदस्य संख्या में क्षेत्रीय दलों के प्रतिशत का आकलन कर यह जानने का प्रयास किया गया है कि प्रादेशिक राजनीति में प्रभावी ये दल उच्च सदन में किस सीमा तक अपना स्थान बना पाये हैं। इसके लिये आकलन में शामिल प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र की सदस्य संख्या में क्षेत्रीय दलों के प्रतिशत के माध्यम से उनकी सहभागिता को दर्शाया गया है।

प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र को संगठन सम्बन्धी आंकड़ों के संकलन हेतु चुने जाने का प्रमुख कारण अध्ययन में एकरूपता लाना है। राज्य सभा एक स्थायी सदन है जिसमें प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल 6 वर्ष निर्धारित है अर्थात प्रत्येक 2 वर्ष बाद एक तिहाई सदस्य सेवानिवृत हो जाते हैं। तथापि विभिन्न कारणों से लगभग हर वर्ष किसी न किसी राज्य में राज्यसभा चुनाव सम्पन्न होते हैं। प्रत्येक वर्ष के प्रथम सत्र की सदस्य संख्या को अध्ययन में शामिल करके इन नवीन सदस्यों का समावेशन किया जा सकेगा। प्रस्तुत तालिका 6 में अध्ययनकाल में (वर्षवार) राज्यवार राज्य सभा सदस्यों के वर्गीकरण को राष्ट्रीय व क्षेत्रीय श्रेणियों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है।

अध्ययनकाल में राज्यवार राज्य सभा सांसदों का वर्गीकरण

तालिका संख्या – 6

क्र.	राज्य		2004		2005		2006		2007		2008		2009		2010		2004 लोक सभा	2009 लोक सभा
			N	R	N	R	N	R	N	R	N	R	N	R	N	R	N / S 364 / 174	N / S 376 / 158
1	उत्तर प्रदेश	31	13	14	10	19	10	19	7	24	6	25	6	25	6	24		
2	तमिलनाडु	18	2	16	3	15	3	15	3	15	4	14	4	11	5	11		
3	जम्मु कश्मीर	4	1	2	1	2	1	2	2	2	2	2	0	2	2	2		
4	टसम	7	6	0	7	0	5	0	6	0	4	1	4	3	4	3		
5	मध्य प्रदेश	11	11	0	10	0	11	0	10	0	10	0	11	0	11	0		
6	हिमाचलप्रदेश	3	3	0	3	0	3	0	3	0	3	0	2	0	3	0		
7	महाराष्ट्र	19	9	6	11	6	12	5	11	5	12	5	17	4	12	4		
8	गुजरात	11	11	0	11	0	11	0	11	0	11	0	11	0	11	0		
9	झारखण्ड	6	6	0	5	0	4	1	4	1	4	1	4	1	4	1		
10	दिल्ली	3	3	0	3	0	3	0	3	0	3	0	3	0	3	0		
11	केरल	9	6	3	4	3	6	3	7	1	8	1	8	1	8	1		
12	कर्नाटक	12	7	1	10	1	9	1	8	2	6	2	9	2	9	1		
13	राजस्थान	10	8	0	10	0	10	0	10	0	10	0	10	0	10	0		
14	आन्ध्र प्रदेश	18	3	8	9	9	9	9	12	6	12	6	15	1	16	2		
15	उड़ीसा	10	4	4	4	5	4	5	5	4	5	4	7	3	6	4		
16	बिहार	16	5	8	5	10	5	11	4	12	3	11	4	12	6	11		
17	उत्तरांचल	3	2	0	3	0	3	0	3	0	3	0	3	0	3	0		
18	छत्तीसगढ़	5	4	0	5	0	5	0	5	0	5	0	5	0	5	0		
19	पं. बंगाल	16	10	4	10	4	8	5	8	6	9	6	10	4	10	4		
20	हरियाणा	5	0	5	0	4	0	4	1	2	3	2	3	1	3	0		
21	त्रिपुरा	1	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0		
22	मिजोरम	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1		
23	नागालेण्ड	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1		
24	सिक्किम	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1		
25	मेघालय	1	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0		
26	पुंडुचेरी	1	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0		
27	पंजाब	7	5	1	5	2	5	2	4	2	4	3	4	3	4	3		
28	गेआ	1	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0		
29	मणिपुर	1	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0	1	0		
30	अरूणाचल	1	1	0		IND		IND	0	IND	0	IND	0	IND	1	0		
			125	**74**	**134**	**83**	**132**	**85**	**131**	**85**	**132**	**86**	**142**	**76**	**152**	**73**		

उपरोक्त तालिका के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन काल के प्रत्येक वर्ष में राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों के सदस्यों की सहभागिता का प्रतिशत निम्न है।

अध्ययनकाल में राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों का प्रतिशत

तालिका संख्या – 7

वर्ष क्षेत्रीय	दलों का प्रतिशत (राज्य सभा में)	तत्कालीन लोक सभा में क्षेत्रीय दलों का प्रतिशत
2004	29.36%(74 सदस्य)	31.3% (164 सदस्य)
2005	32.93%(83 सदस्य)	
2006	33.73%(85 सदस्य)	
2007	33.73%(85 सदस्य)	
2008	34.12%(86 सदस्य)	
2009	30.16%(76 सदस्य)	30.7% (167 सदस्य)
2010	28.97% (73 सदस्य)	

जैसा कि तालिका से स्पष्ट है राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों का न्यूनतम प्रतिशत 28.97% (2010) रहा, वही अधिकतम प्रतिशत 34.12% (2008) रहा। यह तत्कालीन लोक सभा में क्षेत्रीय दलों के प्रतिशत के लगभग समकक्ष है। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि संसद के दोनों सदनों में एक चौथाई से अधिक सदस्य क्षेत्रीय दलों से सम्बन्धित हैं। यह तथ्य राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृश्य तथा संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत क्षेत्रीय दलों के व्यापक प्रभाव को स्पष्ट रेखांकित करता हैं।

उक्त तथ्य के आलोक में यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि राज्य सभा का निर्माण द्वितीय व उच्च सदन के रूप में किया गया था, जिसका आधार दल नहीं बौद्धिकता व गंभीरता थी। निर्वाचन की प्रक्रिया को अप्रत्यक्ष व निर्वाचित प्रतिनिधियों पर आधारित रखने के मूल में संविधान निर्माताओं का मंतव्य राज्य सभा को दलगत विसंगतियों से दूर रखना था। ऐसा करना इसलिये भी आवश्यक था क्योंकि प्रतिनिधि सदन (लोक सभा) का संगठन, कार्यप्रणाली पूर्णतः दलीय व्यवस्था पर आधारित है, अतः दलीय सीमाओं के अन्तर्गत लिये गये लोक सभा के निर्णयों के दोहरान कार्य हेतु द्वितीय सदन के रूप में ऐसे सदन की परिकल्पना की गई जो दलगत समीकरणों से बंधा हुआ नहीं हो, परन्तु तालिका (7) के विश्लेषण से प्राप्त महत्त्वपूर्ण

निष्कर्ष यह है कि–**"दोनों सदनों के निर्वाचन की प्रक्रिया व मानक पूर्णतः भिन्न होने पर भी दलीय संगठन के परिप्रेक्ष्य में दोनों सदन क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व की दृष्टि से एक समान होने की दिशा में अग्रसर हैं।"**

3.2 दलीय प्रतिनिधित्व के आधार पर विश्लेषण

राज्य सभा के संगठन पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव के अध्ययन हेतु चयनित द्वितीय आधार दलीय प्रतिनिधित्व है। इस परिप्रेक्ष्य में शोधार्थी द्वारा यह जानने का प्रयास किया जायेगा कि अध्ययन काल में कौन से दल राज्य सभा में सक्रिय रहे। यद्यपि राज्य सभा के संगठन में दलों की भागीदारी इस तथ्य पर निर्भर करती है कि वे किस राज्य का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं तथा उस राज्य हेतु राज्य सभा में कितने स्थान आरक्षित है। तथापि निरपेक्ष दृष्टिकोण से, मात्र सदस्य संख्या के आधार पर चयनित अध्ययनकाल में 32 क्षेत्रीय दल राज्य सभा में सक्रिय रहे। जो कि इस प्रकार हैं–

अध्ययनकाल में राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों की सदस्य संख्या

तालिका संख्या – 8

क्र.सं.	दल	सदस्य संख्या	राज्य
1.	BSP	28	उत्तर प्रदेश
2.	J & KNC	4	जम्मू कश्मीर
3.	ABLC	1	उत्तर प्रदेश
4.	BJD	12	उड़ीसा
5.	RPI	1	महाराष्ट्र
6.	PDP	1	जम्मू कश्मीर
7.	RJD	16	बिहार
8.	DMK	16	तमिलनाडु
9.	ML	2	केरल
10.	JD (U)	12	बिहार, झारखण्ड
11.	SP	28	उत्तर प्रदेश
12.	SS	09	महाराष्ट्र

13.	TDP	13	आन्ध्र प्रदेश
14.	AIADMK	18	तमिलनाडु
15.	AIFB	4	पं. बंगाल
16.	HVP	1	हरियाणा
17.	RSP	4	केरल,पश्चिम बंगाल
18.	INLD	7	हरियाणा
19.	MNF	2	मिजोरम
20.	NPF	3	नागालैण्ड
21.	AITC	4	पं. बंगाल, झारखण्ड
22.	SAMATA	2	बिहार
23.	SDF	2	सिक्किम
24.	SAD	8	पंजाब
25.	JD(S)	2	कर्नाटक
26.	PMK	1	तमिलनाडु
27.	JMM	4	झारखण्ड
28.	SBP	1	महाराष्ट्र
29.	RLD	1	उत्तर प्रदेश
30.	AGP	2	असम
31.	LJP	2	बिहार
32.	BPF	1	असम
	Total	**212**	

उक्त तालिका के अन्तर्गत बहुजन समाज पार्टी (BSP) को उत्तर प्रदेश की क्षेत्रीय पार्टी के रूप में दर्शाया गया है , जबकि तालिका (4) जहां लोक सभा निर्वाचन 2004 व 2009 को दर्शाया गया है वहां बहुजन समाज पार्टी राष्ट्रीय दलों के आंकड़ों में शामिल है। इस विसंगति का कारण अध्ययन की प्रकृति में निहित है। लोक सभा चुनाव के आंकड़ों का प्रयोग राज्यों में क्षेत्रीयता के विस्तार को दर्शाने के लिये किया गया है तथा इन आंकड़ों का स्त्रोत

निर्वाचन आयोग है अत: इन आंकड़ों में शोधार्थी द्वारा किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया गया है। पुन: यह आंकड़े शोध के अन्तर्गत विश्लेषण का भाग नहीं है।

प्रस्तुत शोध राज्यसभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव को रेखांकित करने हेतु किया गया है । यद्यपि बहुजन समाज पार्टी को निर्वाचन आयोग द्वारा राष्ट्रीय दल का दर्जा प्रदान किया गया है तथापि उत्तर प्रदेश राज्य के सन्दर्भों में बहुजन समाज पार्टी द्वारा सदैव क्षेत्रीय चरित्र का निर्वहन व मुखर प्रदर्शन किया है । उत्तर प्रदेश की क्षेत्रीय राजनीति के दो सुदृढ़ ध्रुव समाजवादी पार्टी व बहुजन समाज पार्टी रहे हैं , जिसका स्पष्ट प्रभाव राजनीतिक परिदृश्य पर दृष्टिगोचर होता रहा है । यही कारण है कि विश्लेषण हेतु बहुजन समाज पार्टी को अध्ययन में क्षेत्रीय दल के रूप में शामिल किया गया है ।क्षेत्रीय दलों की तीव्रता के आधार पर राज्यों का विभाजन मानचित्र 1 तालिका 5 में प्रदर्शित किया गया है। इसी श्रेणीवार विभाजन को आधार मानकर राज्य इकाइयों व क्षेत्रीय दलों के प्रतिनिधित्व के अध्ययन का प्रयास किया गया है।

प्रथम श्रेणी के राज्यों के क्षेत्रीय दलों का विश्लेषण

तालिका संख्या – 9

राज्य	राज्यसभा में स्थान	दल	1952 से 2010 तक सदस्य	अध्ययनकाल (2004–2010)
तमिलनाडु	18	AIADMK	61	18
		DMK	50	16
		ML	5	0
		PMK	1	1
		JAN	1	0
नागालैण्ड	01	NPF	3	3
सिक्किम	01	SDF	3	2
		SSP	1	0

तमिलनाडु, नागालैण्ड व सिक्किम प्रथम श्रेणी में शामिल राज्य हैं। तमिलनाडु राज्य में 1952 से अब तक कुल 6 क्षेत्रीय दल (तालिका 9) सक्रिय रहे हैं। जिनमें सर्वप्रमुख अन्ना द्रमुक द्रविण मुनेत्र कड़गम व द्रविण मुनेत्र कड़गम है।द्रविण मुनेत्र कड़गम (DMK)का जन्म 1949 में हुआ। हिन्दी विरोध तथा राज्यों को अधिक स्वायतत्ता इस दल की नीति व कार्यक्रम के प्रमुख

आधार है। डी. एम. के. के अध्यक्ष करुणानिधि व कोषाध्यक्ष एम.जी. रामचन्द्रन के बीच मतभेद उत्पन्न हो जाने पर अक्टूबर 1972 में एम.जी. रामचन्द्रन ने दल से पृथक होकर अन्ना डी.एम. के. का निर्माण किया। निर्माण के समय से ही इस दल की मूल नीति केन्द्र में सत्तारुढ़ शासक दल के साथ सहयोग करने की रही। भारत में अवस्थित 'सौदेबाजी के संघवाद' के परिप्रेक्ष्य में इसे अधिकतम लाभ प्राप्त करने की नीति माना जा सकता है, जो कालान्तर में दल को सुदृढ़ राजनीतिक आधार प्रदान करती है।

सदस्य संख्या की दृष्टि से अन्ना डी. एम. के.तमिलनाडु का सर्वप्रमुख क्षेत्रीय दल माना जा सकता है, जिसके 61 सदस्य प्रथम सत्र (1952) से 221वें सत्र (2010) तक राज्य सभा का भाग रहे। साथ ही इसी काल में 50 सांसदों के साथ द्रविण मुनेत्र कड़गम की सहभागिता भी उल्लेखनीय रही है।

तमिलनाडु के क्षेत्रीय दलों के सांसदों के सम्बन्ध में दूसरा महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि अध्ययन काल में मुस्लिम लीग व JAN का एक भी सांसद राज्य सभा का भाग नहीं रहा।

प्रथम श्रेणी का दूसरा महत्वपूर्ण राज्य नागालैण्ड है। इस राज्य में सक्रिय एक मात्र क्षेत्रीय दल NPF (नागा पिपुल्स फ्रण्ट) है। नागा पिपुल्स फ्रण्ट,नागालैण्ड व मणिपुर में सक्रिय क्षेत्रीय पार्टी है। क्षेत्रीयतावाद पर आधारित राजनीति के साथ–साथ इस दल का मूल उद्देश्य नागा जाति की परम्पराओं व संस्कृति का संरक्षण भी है।

नागालैण्ड से राज्य सभा में सत्र 221 तक नागा पिपुल्स फ्रण्टके 3 सदस्य राज्य सभा में स्थान प्राप्त कर चुके हैं, तथा ये तीनों सदस्य अध्ययनकाल में भी राज्य सभा का भाग थे।

नागालैण्ड के साथ ही एक और पूर्वोत्तर राज्य सिक्किम भी प्रथम श्रेणी का राज्य है। सिक्किम के दो प्रमुख दल SDF(सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट) व SSP (सिक्किम संग्राम परिषद) है। 1979 के अस्थायित्व के दौर के बाद श्री नरबहादुर भण्डारी के नेतृत्व में सिक्किम जनता दल परिषद ने सिक्किम में सत्ता संभाली। 1984 में श्री भण्डारी ने जनता परिषद दल को भंग कर के एक नये दल सिक्किम संग्राम परिषद का गठन किया। 1984 व 1989 के चुनावों के बाद सिक्किम संग्राम परिषद सत्तारुढ़ हुई, परन्तु इसके पश्चात् सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट दल आगे आया तथा 1999 तक सिक्किम संग्राम परिषद किसी चुनाव में विजय प्राप्त नहीं कर सकी। 1999 में सिक्किम संग्राम परिषद का नेशनल कांग्रेस में विलय हो गया। 1952 से सत्र 221 (2010) तक सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्टके 3 व सिक्किम संग्राम परिषद का एक सदस्य राज्य सभा हेतु निर्वाचित हुआ , अध्ययन काल में SDF के दो सदस्य राज्य सभा का भाग थे।

सिक्किम की द्वितीय महत्त्वपूर्ण व वर्तमान में सक्रिय क्षेत्रीय पार्टी सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट की स्थापना श्री पवन कुमार चामलिंगन द्वारा 1993 में की गई। 1994 में सत्तारुढ़ होने के पश्चात् प्रत्येक चुनाव एस.डी.एफ.ने भारी बहुमत से जीता है। मई 2016 में राष्ट्रीय जनतान्त्रिक गठबंधन द्वारा असम में पहली बार विजय प्राप्त करने के बाद NEDA (North East Democratic Alliance) का निर्माण किया गया , जिसका सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट भी एक सदस्य है।

प्रथम श्रेणी के राज्यों के क्षेत्रीय दलों की राज्य सभा में सत्रानुसार उपस्थिति

रेखाचित्र संख्या – 5

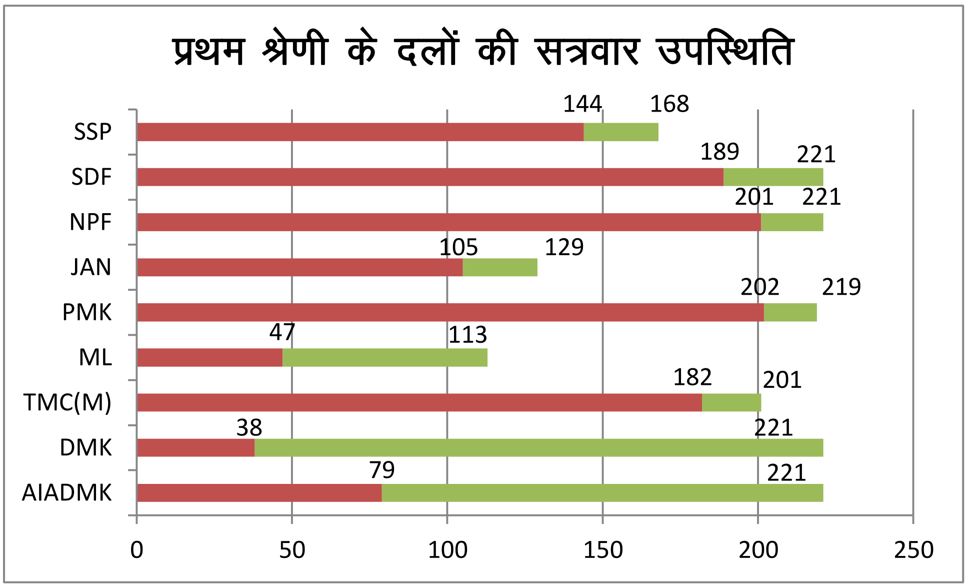

*उक्त ग्राफ में वे सत्र जिनमें सम्बद्ध क्षेत्रीय दल उपस्थित रहे हैं उन्हें हरे रंग से दर्शाया गया है, जबकि लाल रंग द्वारा वे सत्र प्रदर्शित किये गये हैं जिनमें सम्बद्ध दल उनुपस्थित रहा।

→ उक्त ग्राफ के अनुसार द्रविण मुनेत्र कड़गम व मुस्लिम लीग राज्य सभा में सबसे पहले प्रवेश करने वाले दल हैं जिसमें से मुस्लिम लीग सत्र 113 के बाद राज्यसभा में स्थान बनाने में असफल रही वहीं द्रविण मुनेत्र कड़गम ने निरन्तरता के साथ सत्र 221 तक अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई।

→ अन्ना द्रमुक का प्रवेश द्रविण मुनेत्र कड़गम से 41 सत्र बाद हुआ, फिर भी सदस्य संख्या की दृष्टि से अन्ना द्रमुक , द्रविण मुनेत्र कड़गम से आगे है।

→ नागालैण्ड राज्य सभा के निर्माण के समय (1952) से सदन का भाग नहीं था, बल्कि इस राज्य को 1964 में सदन में शामिल किया गया था। नागालैण्ड की ओर से राज्य सभा हेतु प्रथम सांसद का निर्वाचन 18/3/1964 को हुआ जो कि नेशनल कांग्रेस के सदस्य थे। क्षेत्रीय दल की ओर से प्रथम सांसद का निर्वाचन 3/4/2004 (सत्र 201) को नागा पिपुल्स फ्रण्ट के सदस्य टी.आर.जीलिंग के रूप में हुआ।

→ सिक्किम भी नागालैण्ड के समान राज्य सभा की स्थापना के काफी समय बाद (1975 में) सदन का सदस्य बना । 1975 से 1987 तक राज्य सभा में सिक्किम का प्रतिनिधित्व राष्ट्रीय दलों के प्रतिनिधियों द्वारा किया गया। 1987 में सर्वप्रथम क्षेत्रीय सांसद के रूप में सिक्किम संग्राम परिषद सांसद रामसुन नामग्याल का राज्य सभा में प्रवेश हुआ तत्पश्चात् सन 2000 से निरन्तर सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट सांसद द्वारा राज्य सभा में सिक्किम का प्रतिनिधित्व किया गया।

→ दलों की राज्य सभा में सत्रवार उपस्थिति का सूक्ष्म अवलोकन करने पर एक महत्वपूर्ण तथ्य स्पष्ट होता है। नागालैण्ड के अतिरिक्त शेष दोनों राज्यों में मुख्य दलों के अतिरिक्त कुछ अन्य दल भी अस्तित्व में आये परन्तु सुदृढ़ वैचारिक आधार अथवा राजनैतिक इच्छा शक्ति के अभाव में लम्बे समय तक अपना स्थान बनाये न रख सके। तमिलनाडु में JAN, तृणमूल कांग्रेस व मुस्लिम लीग ऐसी ही पार्टियाँ हैं वहीं सिक्किम की सिक्किम संग्राम परिषद सत्र 168 के बाद से राज्य सभा हेतु निर्वाचित नहीं हुई। अर्थात् सिक्किम व तमिलनाडु में एक/दो प्रमुख दलों के पक्ष में एक प्रकार का ध्रुवीकरण स्पष्ट है।

द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत वे राज्य हैं जहां क्षेत्रीय दलों का प्रतिशत 25 – 49.9% के बीच है । इन राज्यों की ओर से राज्य सभा में उपस्थित व क्षेत्रीय दलों की स्थिति तालिका 10 में दर्शाई गई है ।

द्वितीय श्रेणी के राज्यों के क्षेत्रीय दलों का विश्लेषण

तालिका संख्या – 10

राज्य	राज्य सभा में स्थान	दल	1952 से 2010 तक सदस्य	अध्ययन काल 2004 – 2010
आन्ध्रप्रदेश	18	TDP	43	13
		JP	1	0
		JD	2	0
		JAN	4	0
उड़ीसा	10	BJD	13	12
		LD	2	0
		JAN	4	0
		JD	13	0

पश्चिम बंगाल	16	AITC	8	4
		FB	9	0
		JD	1	0
		RSP	9	3
		AIFB	6	4
असम	7	ASDC	1	0
		AGP	10	2
		SSP	1	0
		BPF	1	1
		JAN	1	0
बिहार	16	JD	18	0
		JD(U)	11	11
		RJD	19	16
		LJP	2	2
		JAN	5	0
		SSP	2	0
		JS	1	0
		SAMATA	2	2
		LD	1	0
उत्तरप्रदेश	31	BSP	32	28
		SP	35	28
		JD	17	0
		JAN	14	0
		JS	7	0
		JP	2	0
		RLD	1	1
		JD(S)	1	0

		ABLC	1	1
		LD	3	0
पंजाब	07	AD	4	0
		SAD	19	8

द्वितीय श्रेणी के अंतर्गत राज्यों के विषय में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य इन राज्यों में उपस्थित क्षेत्रीय दलों की संख्या है। बिहार में कुल 9 क्षेत्रीय दल सक्रिय हैं, वहीं उत्तर प्रदेश में भी सक्रिय क्षेत्रीय दलों की संख्या 11 है। पं. बंगाल व आसाम में 5–5 क्षेत्रीय दल व आन्ध्र प्रदेश व उड़ीसा में 4–4 दल राजनीतिक परिदृश्य में उपस्थित हैं साथ ही दल JAN श्रेणी 2 के 7 में से 5 राज्यों में सक्रिय है। यही दल अल्पकाल के लिये तमिलनाडु में भी क्रियाशील रहा है।द्वितीय श्रेणी के राज्यों में पंजाब ही एकमात्र राज्य हैं जहां 1952 अर्थात राज्य सभा की स्थापना के पश्चात् दो क्षेत्रीय दल उपस्थित रहे तथा वर्तमान में सिर्फ एक क्षेत्रीय दल ही सक्रिय हैं।

द्वितीय श्रेणी के प्रथम राज्य आन्ध्र प्रदेश का सर्वप्रमुख क्षेत्रीय दल TDP(तेलगूदेशम पार्टी) है। जिसके 43 सदस्य 1952 से 2010 तक राज्य सभा के लिये निर्वाचित हुये। तेलगूदेशम पार्टी की स्थापना 29 मार्च 1982 को श्री एन. टी.रामाराव द्वारा हुई। पार्टी का आधार लोकलुभावन क्षेत्रीयतावाद व सामाजिक उदारवाद रहा। अल्पसंख्यकों हेतु कल्याणकारी योजनाओं व सामाजिक न्याय से सम्बन्धित कार्य योजनाओं के सम्बद्ध में कई बार तेलगूदेशम पार्टी तमिलनाडु के क्षेत्रीय दल अन्ना द्रमुक द्रविण मुनेत्र कड़गम के समतुल्य परिलक्षित होता है तेलगूदेशम पार्टी के सम्बन्ध में दो विशिष्ट तथ्य इसे शेष क्षेत्रीय दलों से पृथक करते हैं।

1. अपने निर्माण के 9 माह बाद ही तेलगूदेशम पार्टी1984 विधान सभा चुनावों में भारी बहुमत से विजय प्राप्त करके सत्तारुढ़ हुई।
2. तेलगूदेशम पार्टी स्वतन्त्र भारत का प्रथम क्षेत्रीय दल है जो लोक सभा में विपक्ष का महत्वपूर्ण क्षेत्रीय घटक रहा। 8वीं लोक सभा 1984 के निर्वाचन में 33 स्थान जीतकर तेलगूदेशम पार्टी प्रमुख विपक्षी दल बनी जबकि प्रमुख राष्ट्रीय दल भारतीय जनता पार्टी को मात्र दो स्थान मिले व कांग्रेस पार्टी सत्तासीन हुई।

राज्य सभा के सन्दर्भों में तेलगूदेशम पार्टी का महत्व इस तथ्य से स्पष्ट है कि तालिका संख्या –10 के अनुसार 1952 से 2010 तक आन्ध्र प्रदेश में तेलगूदेशम पार्टी के अतिरिक्त तीन अन्य क्षेत्रीय दल क्रियाशील थे। इनमें से तेलगूदेशम पार्टी के चयनित सांसदों की संख्या 43 है जबकि शेष तीनों दलों के चयनित सांसदों का कुल योग मात्र 7 है। वहीं अध्ययनकाल (2004–2010) में तेलगूदेशम पार्टी 13 सदस्यों के साथ राज्य सभा में उपस्थित है।

लगभग यही स्थिति उड़ीसा राज्य के BJD (बीजू जनता दल) की है। बीजू जनता दल का जन्म 26 दिसम्बर 1997 में जनता दल से पृथक होकर हुआ, अतः यह मात्र 18 साल पुराना क्षेत्रीय दल है। बीजू जनता दल के संस्थापक नवीन पटनायक हैं, जिनकी स्वच्छ व धर्मनिरपेक्ष छवि उड़ीसा में पार्टी के जनाधार का निर्णायक तत्व है। बीजू जनता दल उदारवादी, लोकतांत्रिक व क्षेत्रीयतावाद को महत्त्व देने वाला दल है। 2000 व 2004 के विधान सभा चुनावों में बीजू जनता दल व भारतीय जनता पार्टी गठबन्धन ने राज्य में बहुमत प्राप्त किया। 2009 लोस चुनावों से पूर्व भारतीय जनता पार्टी से पृथक होने के बाद बीजू जनता दल ने राज्य की 21 लोस सीटों में 14 स्थान प्राप्त किये, वहीं 2014 के निर्वाचन में यह आंकड़ा 21 में से 20 स्थानों का रहा।

राज्य सभा में भी बीजू जनता दल ने राज्य को सशक्त प्रतिनिधित्व प्रदान किया। 1952 से 2010 तक (वास्तव में 1997 से 2010 तक) बीजू जनता दल ने 13 प्रतिनिधि राज्य सभा हेतु निर्वाचित किये। यह संख्या जनता दल द्वारा भेजे गये प्रतिनिधियों की संख्या के समान है। परन्तु रेखांकित करने योग्य तथ्य यह है कि 2004–2010 के बीच बीजू जनता दल (12 सदस्यों के साथ) राज्य सभा में उड़ीसा का एकमात्र प्रतिनिधि दल है।

उड़ीसा के पड़ोसी राज्य पं. बंगाल में भी 5 क्षेत्रीय दल सक्रिय रहे इनमें से ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस नवीनतम दल होने के बाद भी अधिकतम सदस्य संख्या के साथ राज्य सभा में उपस्थित है। ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस का जन्म 1 जनवरी 1998 को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से पृथक होकर सुश्री ममता बैनर्जी द्वारा हुआ। ज्यादातर क्षेत्रीय दलों के समान इसकी विचारधारा भी लोकतांत्रिक समाजवाद तथा धर्मनिरपेक्षता पर आधारित है। 2009 के लोकसभा निर्वाचन में ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस लोक सभा की छठी सबसे बड़ी पार्टी थी (19 स्थानों के साथ) वहीं 2014 के निर्वाचन के बाद 34 सीटें जीतकर ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेसको राष्ट्रीय दल का दर्जा प्रदान किया गया।ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस के अतिरिक्त फारवर्ड ब्लॉक तथा ऑल इण्डिया फारवर्ड ब्लाक भी पं. बंगाल के महत्वपूर्ण क्षेत्रीय दल हैं। परन्तु अध्ययन काल में फॉरवर्ड ब्लॉक का एक भी सदस्य राज्य सभा हेतु निर्वाचित नहीं हुआ, जबकि ऑल इण्डिया फॉरवर्ड ब्लॉक के दो सदस्य तथा रिवोल्यूशनरी समाजवादी दल के दो सदस्य राज्य सभा हेतु निर्वाचित हुये।

पूर्वोत्तर राज्य असम का सर्वप्रमुख दल असम गण परिषद (AGP) है। 1952–2010 तक इसके 10 सदस्य तथा अध्ययनकाल में दो सदस्य राज्य सभा का भाग रहे असम गण परिषद की स्थापना 1985 में प्रफुल्ल कुमार मोहन्तो द्वारा हुई। इसकी विचारधारा में क्षेत्रीयता व

राष्ट्रीयता के तत्व मिश्रित रूप से उपस्थित हैं। 1985 व 1991 के विधान सभा चुनावों में विजय प्राप्त कर असम गण परिषद सत्तारुढ़ हुई। इसके अतिरिक्त BPF (बोडोलैण्ड पीपुल्स फ्रण्ट) का भी एक सदस्य राज्य सभा में असम का प्रतिनिधित्व कर चुका है। वर्तमान में बोडोलैण्ड पीपुल्स फ्रण्ट, नेशनल डेमोक्रेटिक एलायंस का भाग है।

बिहार व उत्तर प्रदेश द्वितीय श्रेणी के वे दो राज्य है जहाँ क्षेत्रीयता सर्वाधिक मुखर रूप में प्रकट हुई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद से लगभग दो दशक तक (1950–1974) बिहार कांग्रेस सरकार द्वारा प्रशासित होता रहा। यह समय केन्द्र व राज्य दोनों में कांग्रेस के वर्चस्व का था 1974 में श्री जय प्रकाश नारायण के नेतृत्व में बिहार में एक छात्र आन्दोलन का सूत्रपात हुआ जो कालान्तर में बिहार आन्दोलन में परिवर्तित हो गया। इसी आन्दोलन के दौरान जेपी ने श्री वी.एम. ताराकुण्डे के साथ सम्पूर्ण क्रान्ति (Total Revolution) का आहवान किया तथा 1974 में Citizens for Democracy तथा 1976 में People's Union for civil liberties नाम के दो गैर सरकारी संस्थाओं का निर्माण किया। 23 मार्च 1977 को आपातकाल की औपचारिक समाप्ति के पश्चात् हुये लोकसभा चुनाव में एक ओर केन्द्र में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता दल गठबन्धन की सरकार आरुढ़ हुई, वहीं बिहार में सभी 54 लोक सभा स्थानों का परिणाम जनता दल के पक्ष में गया तत्पश्चात् कर्पूरी ठाकुर ने बिहार के मुख्यमंत्री का पदभार संभाला। यह बिहार में जनता दल के उदय का काल था।

5 जुलाई 1997 को लालू प्रसाद यादव के नेतृत्व में 17 लोक सभा सांसदों व आठ राज्य सभा सांसदों का एक दल जनता पार्टी से अलग हो गया तथा इनके द्वारा एक नई क्षेत्रीय पार्टी राष्ट्रीय जनता दल का निर्माण किया गया।राष्ट्रीय जनता दल की औपचारिक विचारधारा। (पार्टी घोषणा पत्र के अनुसार) धर्मनिरपेक्षता व समाजवाद है, परन्तु अनौपचारिक रूप से राष्ट्रीय जनता दल द्वारा राजनीतिक परिदृश्य में अवसरवादिता का ही अवलम्बन लिया है। शोध हेतु चयनित अध्ययनकाल में राष्ट्रीय जनता दल13 सांसदों के साथ बिहार के क्षेत्रीय दलों की सूची में प्रथम स्थान पर रही, वहीं जनता दल युनाइटेड के 11 सांसद इस काल में निर्वाचित हुये। अध्ययन काल से पूर्व जनता दल के 18 सदस्य राज्य सभा में बिहार का प्रतिनिधित्व कर चुके थे, परन्तु अध्ययन काल में जनता दल राज्य सभा में प्रवेश नहीं पा सकी।

बिहार के समान उत्तर प्रदेश भी क्षेत्रीय दलों की संख्या की दृष्टि से समृद्ध राज्य है। दोनों राज्यों का पिछड़ापन व विविधता इसका कारण मानी जा सकती है। राज्य सभा के लिये उत्तर प्रदेश के सबसे पहले क्षेत्रीय दल के सांसद का चुनाव 3/4/1964 को हुआ। यह सांसद JSदल के थे। तब से 2010 तक 11 क्षेत्रीय दल राज्य सभा में उत्तर प्रदेश का प्रतिनिधित्व कर

चुके हैं जिनके कुल 114 सदस्य चुनकर राज्य सभा में भेजे गये इनमें से सर्वाधिक सदस्य समाजवादी पार्टी (35) के हैं। समाजवादी पार्टी का जन्म 4 अक्टूबर 1992 को हुआ। पार्टी घोषणापत्र के अनुसार समाजवादी पार्टी की विचारधारा लोकतांत्रिक समाजवाद है।

यह दल भी जनता दल के विघटन से टूटे अनेक दलों में से एक है। जिसके संस्थापक व वर्तमान नेता श्री मुलायम सिंह यादव है। 16वीं लोकसभा चुनाव तक समाजवादी पार्टी ने यूनाइटेड प्रोग्रेसिव एलांइस को बाहर से समर्थन दिया था। 2009 के आम चुनाव में उक्त दल ने बिहार की राष्ट्रीय जनता दल व लोक जनशक्ति पार्टी के साथ गठबंधन बनाया था। 2014 के आम चुनाव में समाजवादी पार्टी का प्रदर्शन निराशाजनक रहा (5 सीटें)। राज्य सभा में 1952 से 2010 तक समाजवादी पार्टी के सदस्यों की संख्या 35 रही। जो राज्य में दल के महत्व को स्पष्टतः रेखांकित करता है।

राज्य सभा के निर्माण से 2010 तक बसपा के 32 व सपा के 35 सदस्य राज्य सभा का भाग रहे, वहीं अध्ययनकाल में यह संख्या क्रमशः 28 व 28 रही। अध्ययन काल से पूर्व प्रभावी जनता दल व JAN अध्ययनकाल में राज्य सभा में अपना स्थान बनाने में असमर्थ रहे।

द्वितीय श्रेणी के अन्य राज्यों की तुलना में पंजाब में सिर्फ दो क्षेत्रीय दल ही सक्रिय रहे। इनमें शिरोमणि अकाली दल प्रमुख रहा। जिसके 8 सदस्य अध्ययनकाल में राज्य सभा में सक्रिय रहे। शिरोमणि अकाली दल की विचारधारा का प्रमुख आधार पंजाब के विभिन्न भागों में अवस्थित सिक्खों की मांगों को पूरा करना है। शिरोमणि अकाली दल का निर्माण 1920 में शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति द्वारा एक कार्यबल के रूप में हुआ था।

इसके प्रथम अध्यक्ष सरदार सरमुख सिंह थे। भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन के काल में उक्त दल ने बारदोली सत्याग्रह व साइमन कमीशन के प्रतिरोध जैसे आन्दोलनों में सक्रिय सहभागिता निभाई। मास्टर तारा सिंह के नेतृत्व में शिरोमणि अकाली दल ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लिया तथा 1940 में मुस्लिम लीग द्वारा पारित पाकिस्तान प्रस्ताव का पूरी शक्ति से विरोध किया वर्तमान में शिरोमणि अकाली दल, नेशनल डेमोक्रेटिक एलायंस का भाग है।

द्वितीय श्रेणी के राज्यों में सक्रिय क्षेत्रीय दलों की राज्य सभा में सत्रानुसार उपस्थिति निम्न है–

रेखाचित्र संख्या– 6 (द्वितीय श्रेणी के दलों की सत्रवार उपस्थिति)

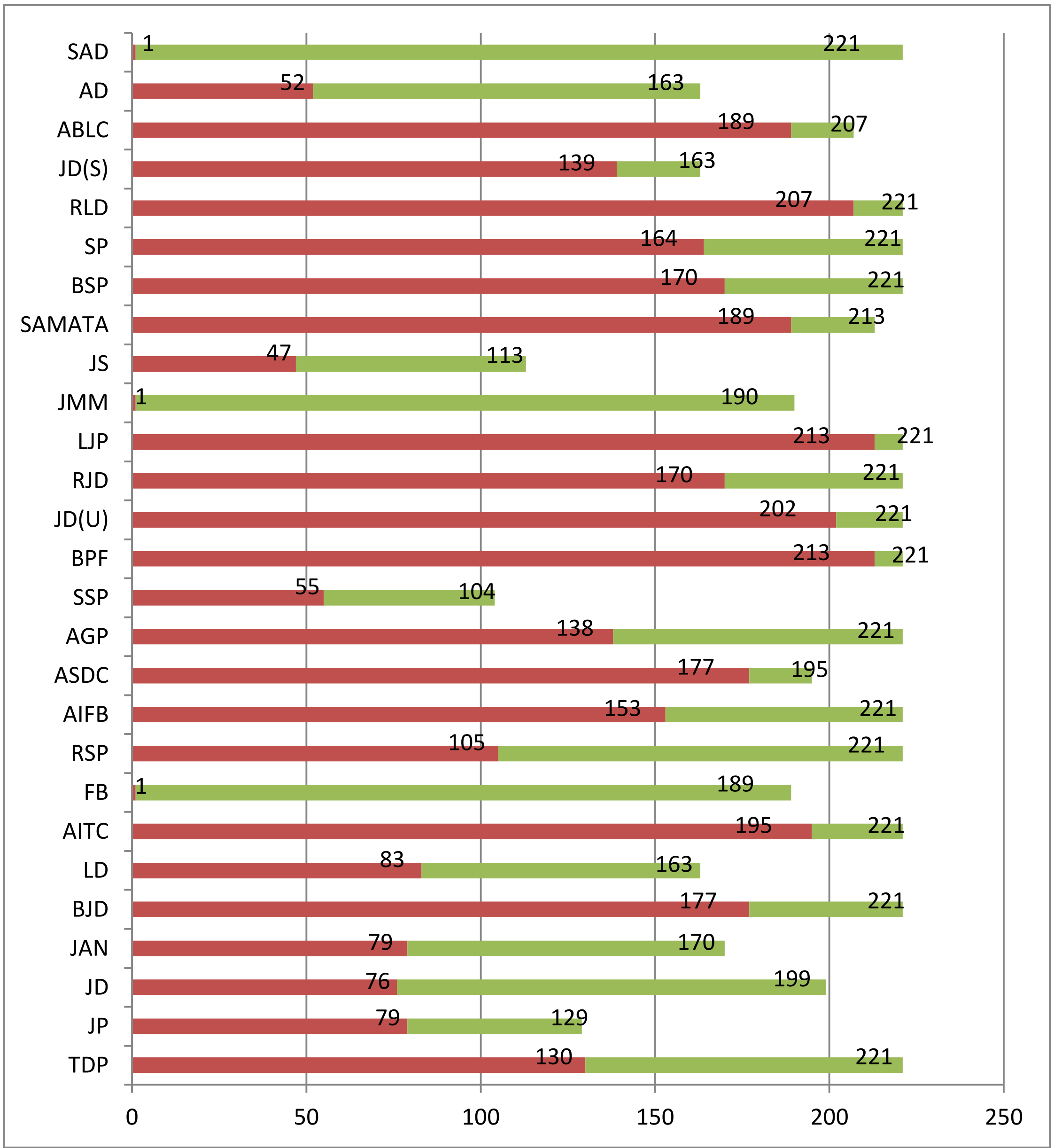

द्वितीय श्रेणी के सदस्यों के सत्रवार आकलन से प्राप्त महत्वपूर्ण तथ्य निम्न हैं।

→ झारखण्ड मुक्ति मोर्चा (JMM), तथा फारवर्ड ब्लॉक (FB), शिरोमणि अकाली दल (SAD) तीन ऐसे क्षेत्रीय दल हैं जो राज्य सभा के प्रथम सत्र से सदन में उपस्थित हैं। इनमें से फारवर्ड ब्लॉक (FB) सत्र 189 के बाद से सदन का सहभागी नहीं है वहीं झारखण्ड मुक्ति मोर्चा (JMM) सत्र 190 तक बिहार का प्रतिनिधि दल रहा। एक मात्र शिरोमणि अकाली दल (SAD) सत्र 1 से सत्र 221 तक निरन्तर राज्य सभा में पंजाब राज्य को प्रतिनिधित्व प्रदान करता रहा है। शिरोमणि अकाली दल (SAD) की सदस्य संख्या भी दल के व्यापक आधार की पुष्टि करती हैं।

→ प्रथम श्रेणी के समान द्वितीय श्रेणी के राज्यों में भी समय के साथ प्रमुख दलों के पक्ष में एक प्रकार का ध्रुवीकरण सामने आया है। आन्ध्र प्रदेश में तेलगूदेशम पार्टी (TDP), उड़ीसा में बीजू जनता दल (BJD), पं. बंगाल में ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस (AITC) व ऑल इण्डिया फॉरवर्ड ब्लॉक (AIFB), RSP, असम में असम गण परिषद (AGP), पंजाब में शिरोमणि अकाली दल (SAD), उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी(SP) तथा बहुजन समाज पार्टी (BSP), बिहार से राष्ट्रीय जनता दल (RJD) व जनता दल यूनाइटेड JD(U) ने अलग–अलग समय पर राज्य सभा में प्रवेश किया व धीरे–धीरे अपने–अपने राज्यों के सर्वप्रमुख प्रतिनिधि दलों के रूप में स्थापित हो गये।

→ कुछ दल पूर्णतया नये हैं जैसे लोक जनशक्ति पार्टी (LJP) व बोडोलैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट (BPF) जिन्हें अभी अपनी शक्ति को मान्यता प्राप्त करवाना शेष हैं।

→ ऑल इण्डिया फारवर्ड ब्लॉक (AIFB) पं. बंगाल की ओर से सत्र संख्या 153 में राज्य सभा में प्रविष्ट हुआ, वहीं ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस (AITC) का प्रवेश सत्र 195 में (42 सत्र बाद) हुआ परन्तु तालिका से स्पष्ट है कि दोनों दल संख्या बल की दृष्टि से समस्तरीय है।

तृतीय श्रेणी के राज्यों के क्षेत्रीय दलों का विश्लेषण

तालिका संख्या – 11

राज्य	राज्य सभा में स्थान	दल	1952 से 2010 तक सदस्य	अध्ययन काल 2004 – 2010
कर्नाटक	12	JD	15	0
		JAN	2	0
		JD(S)	2	2
		JP	1	0
झारखण्ड	6	JMM	3	4
		RJD	1	0
		JD(U)	1	1
		AITC	1	0
जम्मू &कश्मीर	4	J&KNC	20	4
		PDP	1	1
		JAN	1	0

केरल	9	ML	11	2
		KC	2	0
		SP	2	0
		RSP	1	1
		JD	1	0

राज्यों की तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत वे राज्य हैं जहाँ 2009 के आम चुनाव में क्षेत्रीय दलों ने 10% से 25% स्थान प्राप्त किये। ये राज्य हैं कर्नाटक, झारखण्ड, जम्मू और कश्मीर व केरल। जैसा कि तालिका 11 से स्पष्ट है कि प्रत्येक राज्य में सक्रिय दलों की संख्या 3 से 5 के बीच है परन्तु प्रत्येक राज्य में एक दल अन्य से अधिक क्रियाशील है। कर्नाटक में जनता दल,झारखण्ड में झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, जम्मू–कश्मीर में जम्मू कश्मीर नेशनल कांफ्रेन्स व केरल का मुस्लिम लीग ऐसे ही दल हैं, जो अपने–अपने राज्यों के स्पष्टतः प्रतिनिधि दल हैं।

सर्वप्रथम राज्य कर्नाटक का प्रमुख दल जनता दल है जिसकी स्थापना श्री वी.पी. सिंह ने 11 अक्टूबर 1988 को की थी। यह दल जनता दल से टूटकर अलग हुये दलों लोक दल, कांग्रेस (एस) व जन मोर्चा को संयुक्त करके बना था। 1989 में राजीव गांधी की अध्यक्षता में चुनाव लड़ रही कांग्रेस (आई) को पराजित करके जनता दल सत्तारुढ़ हुआ परन्तु 1990 में अयोध्या विवाद के चलते भारतीय जनता पार्टी ने जनता दल सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया तथा अविश्वास प्रस्ताव पारित होने के बाद वी.पी. सिंह सरकार को त्यागपत्र देना पड़ा। 1991 के आम चुनाव में जनता दल लोक सभा की तीसरी सबसे बड़ी पार्टी के रूप में सामने आई।

जुलाई 1999 में जनता दल के विघटन द्वारा जनता दल सेक्यूलर JD(S) का निर्माण हुआ। इसके संस्थापक नेता श्री एच.डी. देवगौड़ा थे। यह दल कर्नाटक व केरल राज्य में सक्रिय है। जनता दल (s) ने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के साथ मिलकर कर्नाटक की पहली गठबन्धन सरकार का निर्माण किया था।

राज्य सभा में सत्र 221 तक जनता दल के कुल 15 सदस्य तथा जनता दल सेक्यूलर JD(S) के 2 सदस्य निर्वाचित हुये। परन्तु अध्ययनकाल से पूर्व जनता दल का विघटन हो जाने के कारण, इस काल में कर्नाटक राज्य की ओर से क्षेत्रीय दलों के प्रतिनिधि के रूप में सिर्फ जनता दल सेक्यूलर के दो सदस्य उपस्थित थे।

झारखण्ड का प्रतिनिधि क्षेत्रीय दल झारखण्ड मुक्ति मोर्चा (JMM) है। यह दल झारखण्ड के निर्माण से पूर्व बिहार में सक्रिय था। झारखण्ड के आदिवासियों के निर्विवाद नेता

श्री शिबू सोरेन हैं। वर्ष 1969 में श्री शिबू सोरेन ने सोनत संथाली समाज की स्थापना की। इसके बाद 04 फरवरी 1973 को श्री शिबू सोरेन ने शिवाजी समाज के विनोद बिहारी महतो के साथ मिलकर झारखण्ड मुक्ति मोर्चा (JMM) की स्थापना की। इस क्षेत्रीय दल का प्रभाव क्षेत्र नव सृजित झारखण्ड एवं उड़ीसा, बंगाल तथा छत्तीसगढ़ के कुछ आदिवासी इलाकों में है।झारखण्ड की ओर से राज्य सभा में जाने वाले प्रथम सदस्य श्री हेमन्त सोरेन थे, जिनका निर्वाचन 24/6/2009 को हुआ था। झारखण्ड राज्य की ओर से उक्त दल के चार सदस्य राज्य सभा हेतु निर्वाचित हुये (चारों ही अध्ययन काल में निर्वाचित)।

जम्मू कश्मीर वह राज्य है जिसे अनु. 370 के अन्तर्गत विशेष दर्जा प्राप्त है। जम्मू कश्मीर की क्षेत्रीय राजनीति के दो प्रमुख सक्रिय दल जम्मू–कश्मीर नेशनल कांफ्रेन्स (J&KNC) व पी.डी.पी. (पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी) है।

जम्मू कश्मीर नेशनल कांफ्रेन्स (J&KNC) का निर्माण 15 अक्टूबर 1932 को शेख अब्दुल्ला व चौधरी गुलाम अब्बास द्वारा हुआ। प्रारम्भ में इस दल का नाम ऑल जम्मू एण्ड कश्मीर नेशनल कांफ्रेन्स कर दिया गया। नेशनल कांफ्रेन्स ने 1947 में रियासतों को समाप्त किये जाने का समर्थन किया था। 1947 से 2002 तक नेशनल कांफ्रेन्स जम्मू कश्मीर में सत्ता में रही। पुनः 2009 में से 2015 तक इस दल ने जम्मू–कश्मीर का प्रशासन संभाला। राज्य सभा के प्रारम्भ से 2010 तक जम्मू कश्मीर नेशनल कांफ्रेन्स (J&KNC) के 20 सदस्य राज्य सभा हेतु निर्वाचित हुये जिनमें से 4 सदस्य शोध हेतु चयनित अध्ययन काल में राज्य सभा में उपस्थित थे।

जम्मू कश्मीर का दूसरा महत्वूपर्ण दल पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी (PDP), श्री मुफ्ती मोहम्मद सईद द्वारा 1999 में स्थापित किया गया था। जम्मू कश्मीर नेशनल कांफ्रेन्स (J&KNC) की तुलना में यह नया दल है, जो जम्मू–कश्मीर को स्वशासन का अधिकार दिये जाने का पक्षधर है। 2004 से 2009 तक पी.डी.पी. कश्मीर में सत्ता में रहा तथा विगत में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन का भाग रह चुके इस दल ने वर्तमान में भारतीय जनता पार्टी के साथ गठबंधन करके कश्मीर में सरकार का निर्माण किया। पी.डी.पी. का एक सदस्य अध्ययनकाल में राज्य सभा का भाग रहा।

रेखाचित्र संख्या – 7 (तृतीय श्रेणी के दलों की सत्रवार उपस्थिति)

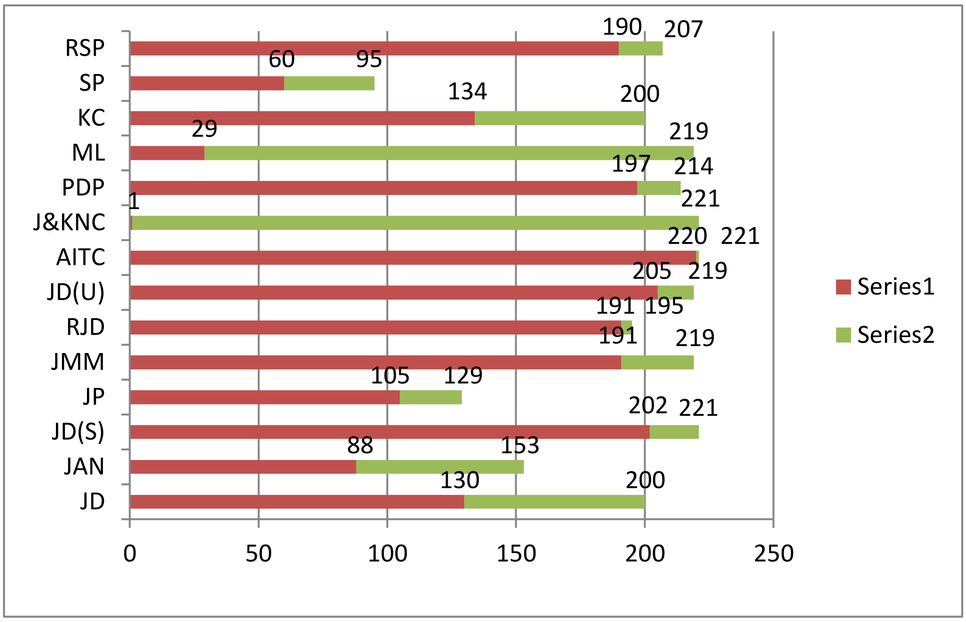

जैसा कि उक्त ग्राफ से स्पष्ट है।

जम्मू कश्मीर का क्षेत्रीय दल नेशनल कांफ्रेन्स राज्य सभा के प्रथम सत्र से सत्र 221 तक सतत् क्रियाशील रहा है।

श्रेणी प्रथम व द्वितीय के समान तृतीय श्रेणी में भी प्रत्येक राज्य में अनेक दल अलग–अलग समय पर सक्रिय रहे व समाप्त होते गये व अंततः प्रमुख दल ही प्रतिनिधि दल के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखने में सक्षम रहे।

चतुर्थ श्रेणी के राज्यों के क्षेत्रीय दलों का विश्लेषण

तालिका संख्या – 12

राज्य	राज्यसभा में स्थान	दल	1952 से 2010 तक सदस्य	अध्ययन काल 2004 – 2010
महाराष्ट्र	19	RPI	5	1
		JD	4	0
		JP	2	0
		SBP	1	1
		SS	13	9
हरियाणा	5	JD	4	0
		INLD	7	7
		HVP	1	1
		LD	2	0
		JAN	3	0
मिजोरम	1	MNF	2	2

अंतिम चतुर्थ श्रेणी के अन्तर्गत महाराष्ट्र, हरियाणा व मिजोरम आते हैं। ये वे राज्य हैं जहाँ क्षेत्रीय दलों ने 2009 के आम चुनाव में 10% से कम स्थान प्राप्त किये। इस श्रेणी के राज्यों में राष्ट्रीय दल, श्रेत्रीय दलों की तुलना में अधिक सक्रिय हैं।

महाराष्ट्र चतुर्थ श्रेणी का प्रथम राज्य है जहाँ के दो प्रमुख क्षेत्रीय दल रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया (Republican Party of India) व शिव सेना (SS) है। रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया (RPI) महाराष्ट्र का सबसे पुराना व राज्य सभा में सबसे अधिक समय तक सक्रिय रहने वाला क्षेत्रीय दल है। इसकी स्थापना 3 अक्टूबर 1957 को हुई। इस दल का मूल भीमराव अम्बेडकर द्वारा स्थापित Scheduled Caste Federation में है। रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया (RPI) की विचारधारा भी इसी के अनुसार परिभाषित हुई है, जिसके मूल तत्व हैं– धर्मनिरपेक्षता, ब्राह्मणवाद का विरोध, दलित राष्ट्रवाद का समर्थन व लोकतांत्रिक विचारधारा। समय के साथ रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया (RPI) अनेक शाखाओं में विभाजित हो गई।

महाराष्ट्र के क्षेत्रीय दलों के विषय में आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि इसका स्थान लेने वाली शिवसेना का वैचारिक आधार रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया से पूर्णतः भिन्न है। शिवसेना का जन्म रिपब्लिकन पार्टी से 9 वर्ष बाद हुआ। इसका मुख्य आधार हिन्दूवादी राष्ट्रवाद है, जो समय के साथ मराठावाद की प्रेरक के रूप में परिवर्तित हो गया।

1952 से 2010 तक रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया (RPI) के 5 तथा शिवसेना (SS) के 13 सदस्य राज्य सभा में प्रवेश कर पाये, वहीं अध्ययनकाल में RPI का एक, व शिवसेना के 9 सदस्य राज्य सभा में उपस्थित रहे।

हरियाणा का सर्वप्रमुख क्षेत्रीय दल INLD (भारतीय राष्ट्रीय लोक दल) है।भारतीय राष्ट्रीय लोक दल की (INLD) स्थापना चौधरी श्री देवी लाल द्वारा 1996 में की गई थी। प्रारम्भ में इसका नाम हरियाणा लोक दल (राष्ट्रीय) था, जो 1998 में बदलकर भारतीय राष्ट्रीय लोकदल (INLD) रखा गया। 1998 में ही भारतीय राष्ट्रीय लोक दल (INLD), नेशनल डेमोक्रेटिक एलायंस (NDA) का भाग बना तथा केन्द्र की सरकार में भी भागीदार रहा। 2005, 2009, 2013 के हरियाणा विधान सभा चुनावों में खराब प्रदर्शन करते हुये भारतीय राष्ट्रीय लोक दल (INLD) एक भी स्थान प्राप्त करने में असमर्थ रहा। 2014 के विधान सभा चुनाव में 19 सीटें हासिल करके भारतीय राष्ट्रीय लोक दल (INLD) वर्तमान में हरियाणा में प्रमुख विपक्षी दल की भूमिका में है। राज्य सभा में भारतीय राष्ट्रीय लोक दल (INLD) के कुल 7 सांसद अपनी भूमिका का निर्वहन कर चुके हैं जिनमें से 7 सांसद अध्ययनकाल (2004–2010) में भी उपस्थित रहे।

चतुर्थ श्रेणी के अंतिम राज्य मिजोरम का एक मात्र क्षेत्रीय दल MNF (मिजो नेशनल फ्रण्ट) हैं। एम.एन.एफ. के निर्माण का मूल 1959 में श्री लाल डेंगा द्वारा निर्मित मिजो नेशनल फेमाइन फ्रण्ट में ढूंढा जा सकता है। इस फ्रण्ट का निर्माण तत्कालीन केन्द्र सरकार की उन नीतियों के विरोध में किया गया जो सरकार द्वारा पूर्वोत्तर के अकाल प्रभावित क्षेत्रों के लिये अपनाई गई थीं। औपचारिक रूप से मिजो नेशनल फ्रण्ट (MNF) का जन्म 1961 में माना जा सकता है। मिजो नेशनल फ्रण्ट (MNF) दो बार मिजोरम में सत्तारुढ़ हुई है प्रथम बार 1986 में लाल डेंगा के नेतृत्व में और दूसरी बार 1998–2008 तक जोरमथंगा के नेतृत्व में। राज्य सभा में एम.एन.एफ. का प्रवेश सन् 2002 में हुआ तथा तब से कुल 2 सदस्य सदन में मिजोरम का नेतृत्व कर चुके हैं।

चतुर्थ श्रेणी के सदस्य दलों की राज्य सभा में सत्रवार उपस्थिति निम्न है।

रेखाचित्र संख्या – 8

(चतुर्थ श्रेणी के दलों की सत्रवार उपस्थिति)

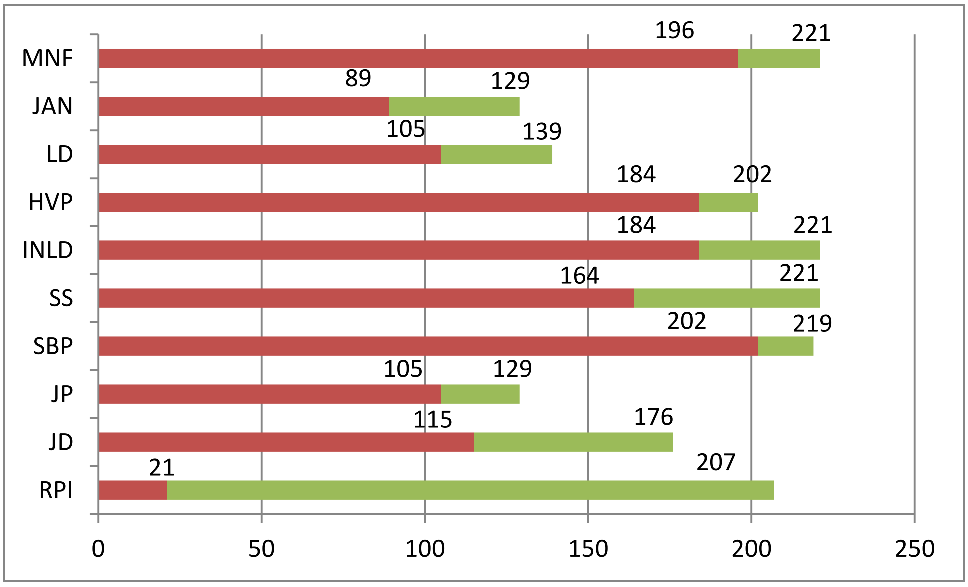

चतुर्थ श्रेणी से सम्बद्ध राज्यों में कुल 10 क्षेत्रीय दल सक्रिय थे। जिनमें से कुल 2 दल ही अध्ययन काल में राज्य सभा में अपनी प्रभावी उपस्थिति दर्ज करवा सके। जो शिवसेना (महाराष्ट्र) व भारतीय राष्ट्रीय लोक दल (हरियाणा) हैं।

3.3 इकाइयों के आकार के आधार पर विश्लेषण

राज्य सभा के संगठन पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव के अध्ययन का तीसरा आयाम इकाइयों के आकार पर आधारित है। यह आकार भौगोलिक न होकर जनसंख्या से सम्बन्धित है अर्थात जिस राज्य की जनसंख्या जितनी अधिक है उसे उतनी बड़ी इकाई माना जायेगा।

इकाइयों का आकार संगठन के अध्ययन के विषय में इसलिये महत्वपूर्ण है, क्योंकि भारतीय संविधान राज्य सभा में राज्य इकाइयों को जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व प्रदान करता हैं यह विश्व में उपस्थित अधिकांश संघीय व द्विसदनात्मक व्यवस्थाओं के विपरीत है।

संविधान सभा में इस विषय पर चर्चा भी हुई थी तथा श्री लोकनाथ मिश्र ने यह प्रस्ताव अग्रसरित किया था कि वास्तविक संघीय सिद्धान्त के अनुरूप राज्यों को राज्य सभा में समान प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहियें। "क्योंकि काउंसिल ऑफ स्टेट्स राज्यों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने जा रही है, अत: राज्यों के दृष्टिकोण से यह उचित होगा कि प्रत्येक इकाई को समान माना जाये और प्रत्येक इकाई को समान प्रतिनिधित्व दिया जाये।"[1]

[Since the Council of states is going to represent the states, it is but fair to the states that these units should be dealt with as units and every unit is equally represented]

के. टी. शाह ने भी लोक नाथ मिश्र के दृष्टिकोण का समर्थन किया। परन्तु अंतत: भारत की विविधतापूर्ण परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुये राज्यों को राज्य सभा में जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिये जाने का निर्णय लिया गया।

स्थापित एवं प्रचलित सिद्धान्त के विलग, संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत इकाइयों को राज्य सभा में जनसंख्या आधारित प्रतिनिधित्व दिये जाने का मुख्य कारण विभिन्न राज्यों में विद्यमान विविधता मानी जा सकती है। भारत का प्रत्येक राज्य दूसरे से पृथक व विशिष्ट चरित्र वाला है, वहीं प्रत्येक राज्य में आन्तरिक दृष्टि से भी अनेक विभिन्नतायें अवस्थित हैं। यही जातिगत, भाषागत, भौगोलिक या संस्कृति आधारित विविधतायें एक राज्य के अन्तर्गत अनेक समूहों को जन्म देती हैं। अधिक जनसंख्या वाले राज्यों में विविधताओं व उनके आधार पर बने समूहों की संख्या अधिक होने की संभावना होती हैं उक्त तथ्य के आलोक में राज्य सभा में राज्यों को जनसंख्या आधारित प्रतिनिधित्व प्रदान करना लोकतांत्रिक व भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अनुकूल है।

राज्य सभा का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रीति से होता है अर्थात लोक सभा चुनाव की भांति सामान्यजन राज्य सभा निर्वाचन में मतदान नहीं करते बल्कि राज्य सभा में राज्यों को स्थान का आवंटन चौथी अनुसूची इस निमित्त अंतर्विष्ट उपबन्धों द्वारा होता है। निर्वाचन का कार्य प्रत्येक राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत से किया जाता है।

---

1. Journal of Constitution and Parliamentary Studies Vol X No. 4 Pg 464

इसका उद्देश्य समस्त विविधताओं को प्रतिनिधित्व प्रदान करना है। इस प्रकार राज्य सभा निर्वाचन व राज्य राजनीति में सक्रिय दलों में स्वतः ही एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तथा यही सम्बन्ध क्षेत्रीय दलों की राज्य सभा में उपस्थिति का महत्वपूर्ण कारक बनता है। क्षेत्रीय दलों की राज्य सभा में उपस्थिति तथा सम्बद्ध राज्य को राज्य सभा में आवंटित स्थानों के तुलनात्मक अध्ययन हेतु निम्न तालिका संख्या–13 के माध्यम से सम्बन्धित तथ्यों को दर्शाया गया है। तालिका में उन राज्यों को ही शामिल किया गया है जिन्हें पूर्व में क्षेत्रीय दलों की सक्रियता के आधार पर चार श्रेणियों में सूचीबद्ध किया गया था।

तालिका संख्या – 13

राज्य सभा में राज्यों की स्थिति

क्र.सं.	राज्य	राज्य सभा में आवंटित स्थान	राज्य सभा में राज्य का प्रतिनिधित्व	राज्य को आवंटित स्थानों में क्षेत्रीय दलों का प्रतिनिधित्व
1.	उत्तर प्रदेश	31	12.04%	74%
2.	तमिलनाडु	18	7.2%	77.8%
3.	आन्ध्र प्रदेश	18	7.2%	27.7%
4.	उड़ीसा	10	04%	50%
5.	पं. बंगाल	16	6.4%	25%
6.	असम	7	2.8%	57%
7.	बिहार	16	6.4%	62.5%
8.	पंजाब	7	2.8%	28.6%
9.	नागालैण्ड	1	0.4%	100%
10.	सिक्किम	1	0.4%	100%
11.	महाराष्ट्र	19	7.6%	31.6%
12.	हरियाणा	05	2%	40%
13.	मिजोरम	01	0.4%	100%
14.	कर्नाटक	12	4.8 %	16.7%
15.	झारखण्ड	06	2.4%	16.7%
16.	J & KNC	04	1.6%	50%
17.	केरल	09	3.6%	22.2%

तालिका के विश्लेषण से निम्न तथ्य स्पष्ट है–

1. राज्य सभा में राज्यों को जनसंख्या के आधार पर स्थानों का आवंटन किया गया है। वे राज्य जिन्हें 10 या उससे अधिक स्थान आवंटित हैं, यदि उन्हें बड़ी इकाइयों की श्रेणी में रखा जाये तो ऐसे कुल 11 राज्य हैं। जिनमें से मात्र तीन राज्य ऐसे हैं (मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान) जिनमें क्षेत्रीयता का विस्तार नहीं हुआ है। इन राज्यों में स्थानीय स्तर पर कुछ दल उपस्थित अवश्य हैं परन्तु उनका जनाधार उन्हें राष्ट्रीय व्यवस्थापिका

में स्थान दिलवाने हेतु पर्याप्त नहीं है। अधिकांश बड़े राज्यों में क्षेत्रीय दलों की सक्रियता पूर्वोक्त कथन की पुष्टि करती है कि अधिक जनसंख्या, विविधताओं को जन्म देती है तथा इन विविधताओं को स्वर देने के लिये क्षेत्रीय दल अस्तित्व में आते हैं।

2. तालिका 13 से स्पष्ट है कि जिन राज्यों को राज्य सभा में अधिक स्थान आवंटित हैं, सदन में उस राज्य का क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व भी अधिक है। जैसे उत्तर प्रदेश (12.4%), तमिललाडु (7.2%), बिहार (6.4%) आदि। वहीं राज्य को आवंटित स्थानों में क्षेत्रीय दलों का सर्वाधिक प्रतिनिधित्व (100%) नागालैण्ड, सिक्किम व मिजोरम में है, जिन्हें सदन में 01–01 स्थान आवंटित है। तत्पश्चात् उत्तर प्रदेश (74%), तमिलनाडु (77.8%) व बिहार (62.5%) का स्थान है।

3. राज्य इकाइयों द्वारा राज्य सभा में प्रदत्त क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व के अध्ययन के पश्चात् यह जानना भी वांछनीय होगा कि राज्य से सम्बन्धित वे कौन से दल हैं जो सम्बद्ध राज्य की ओर से सदन में प्रतिनिधि की भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं।

तालिका संख्या – 14

राज्य सभा में राज्यों के क्षेत्रीय दलों का प्रतिनिधित्व

क्र. सं.	राज्य	दल	राज्य सभा में राज्य का प्रतिनिधित्व
1.	उत्तर प्रदेश	सपा बसपा	45% 25%
2.	तमिलनाडु	DMK अन्नाद्रुमुक	22% 55%
3.	आन्ध्र प्रदेश	तेलगू देशम	45%
4.	उड़ीसा	बीजू जनता दल	50%
5.	पं. बंगाल	अखिल भारतीय तृणमूल कांग्रेस अखिल भारतीय फॉरवर्ड ब्लॉक	25% 25%
6.	असम	असम गण परिषद	28%
7.	बिहार	जनता दल जनता दल (U) राष्ट्रीय जनता दल समता पार्टी	12% 18% 31% 12%
8.	पंजाब	शिरोमणी अकाली दल	28%
9.	नागालैण्ड	नागालैण्ड पीपुल्स पार्टी	100%
10.	सिक्किम	सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट	100%
11.	महाराष्ट्र	शिव सेना	21%

12.	हरियाणा	भारतीय राष्ट्रीय लोक दल	65%
13.	मिजोरम	मिजो नेशनल फ्रण्ट	100%
14.	कर्नाटक	जनता दल (S)	16%
15.	झारखण्ड	झारखण्ड मुक्ति मोर्चा	16%
16.	J & KNC	जम्मू–कश्मीर नेशनल कांफ्रेन्स	67%
17.	केरल	मुस्लिम लीग	33%

स्पष्ट है कि जिन राज्यों में दो या दो से अधिक क्षेत्रीय दल सक्रिय हैं वहाँ एक दल प्रमुखता से राज्य के प्रतिनिधि दल के रूप में राज्य सभा में कार्यरत हैं।

निष्कर्ष

अध्याय –3 का मूल उद्देश्य है भारतीय संघात्मक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में राज्य सभा के संगठन पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव का परीक्षण करना । इस विश्लेषण हेतु अध्याय के प्रारम्भ में तीन आधारों का चयन किया गया है, जिनके निष्कर्ष निम्न हैं–

***संरचना के आधार पर विश्लेषण**

→ राज्य सभा व लोक सभा दोनो में क्षेत्रीय दलों का समग्र रूप से प्रतिशत लगभग एक समान है। दोनो ही सदनों में एक चौथाई से अधिक स्थानों पर क्षेत्रीय दलों का प्रतिनिधित्व है।

→ इसका अर्थ है कि लोक सभा व राज्य सभा के निर्वाचन की प्रणाली व प्रकृति अलग होने के बाद भी राजनीतिक पर्यावरण का असर दोनो सदनों पर समान रूप से पड़ा है।

→ तालिका 7 उक्त तथ्य की पुष्टि करते हुये क्षेत्रीय दलों के संख्या बल की दृष्टि से दोनो सदनों के लगभग समरूपी होने की सम्भावना को आधार प्रदान करती है।

→ राज्य सभा के चुनाव लगभग हर वर्ष सम्पन्न होने के कारण सदन में उपस्थित क्षेत्रीय दलों के सांसदों की संख्या में परिवर्तन रहा। तथा 2010 में यह योग अपने न्यूनतम स्तर पर था। जबकि 2008 .में सदस्य संख्या अधिकतम रही।

रेखाचित्र संख्या – 9

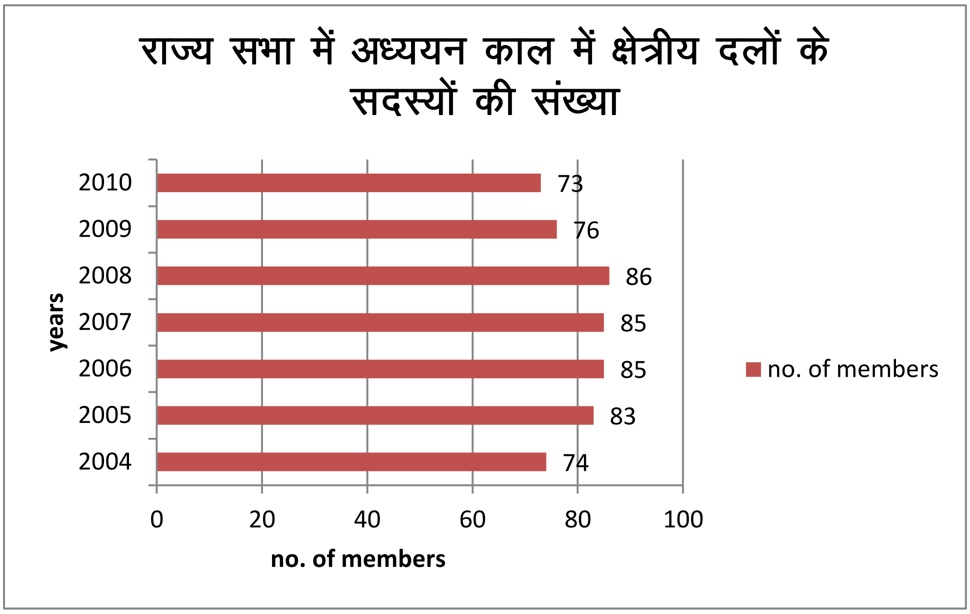

***दलीय प्रतिनिधित्व के आधार पर विश्लेषण**

1. असम – असम से क्षेत्रीय दल के सांसद ने सदन में सन् 2009 में प्रवेश किया।
2. झारखण्ड –झारखण्ड राज्य से क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व सन् 2006 में राज्य सभा का भाग बना।
3. बिहार – क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व की दृष्टि से मुखर राज्य में अध्ययन काल में बढ़ोतरी देखी गई।
4. पंजाब – शिरोमणि अकाली दल के गृहराज्य पंजाब में भी क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व में वृद्धि दर्ज हुई।

- क्षेत्रीय दलों की सक्रियता के आधार पर उत्तर प्रदेश, बिहार व तमिलनाडु को सर्वश्रेष्ठ राज्य माना जा सकता है।
- दलों की सत्रवार उपस्थिति के आकलन के आधार पर वे दल जो राज्य सभा के प्रथम सत्र के राज्य सभा का भाग रहे हैं वे निम्न हैं।

1. शिरोमणी अकाली दल – पंजाब
2. झारखण्ड मुक्ति मोर्चा –बिहार / झारखण्ड
3. फॉरवर्ड ब्लॉक – पं. बंगाल
4. जम्मू कश्मीर नेशनल कांफ्रेस – जम्मू कश्मीर

***इकाइयों के आधार पर विश्लेषण**

बड़े आकार के राज्यों (जिन्हें राज्य सभा में 10 या अधिक सीटें आवंटित है) में से 72.7% (11 में से 8) राज्य ऐसे है जहां क्षेत्रीय दल सक्रिय है तथा राज्य सभा में राज्य को प्रतिनिधित्व प्रदान कर रहे है।

राज्य सभा संघीय सदन है तथा संघ की इकाइयों में समय–समय पर उपस्थित नवीन राजनीतिक स्वरों का क्षेत्रीय दलों के रूप में राज्य सभा में सहभागी होना व सम्बद्ध इकाई को प्रतिनिधित्व प्रदान करना भारतीय संघात्मक व्यवस्था के सफल क्रियान्वयन की ओर संकेत करता है। इस स्थिति को निम्न पाई चार्ट द्वारा सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

रेखाचित्र संख्या – 10

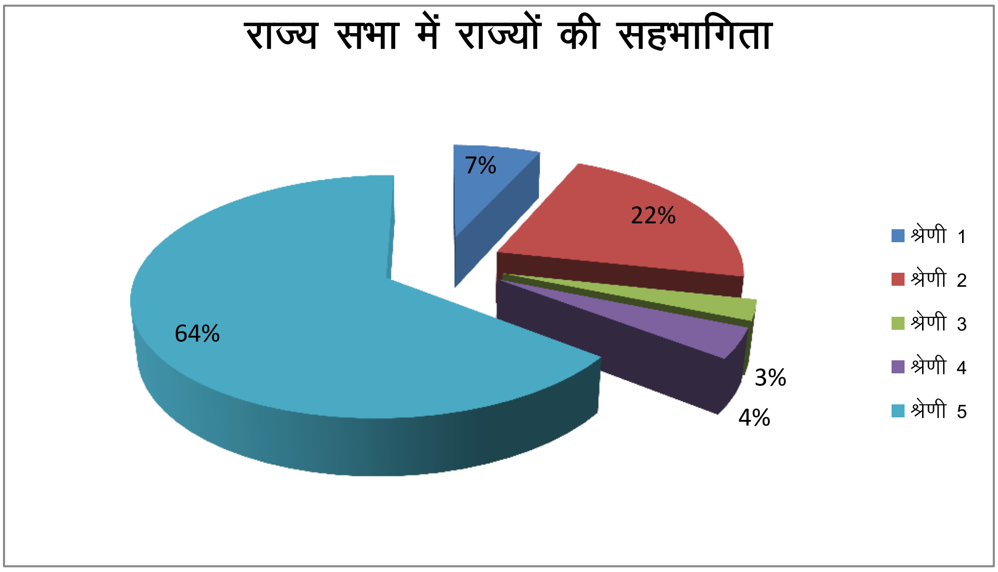

चार्ट के अनुसार राज्य सभा की लगभग 36% सीटों पर क्षेत्रीय दल उपस्थित है, जिसमें श्रेणी–2 के राज्यों का प्रतिशत सर्वाधिक है। श्रेणी–2 के अन्तर्गत वे राज्य आते हैं जिन्होंने लोक सभा 2009 के निर्वाचन में 25% से 49.9% स्थान प्राप्त किये अर्थात अभी भी वे राज्य कम है जहां क्षेत्रीय दल अति प्रभावी हैं।

सामान्य संघात्मक व्यवस्थाओं के विपरीत भारत में द्वितीय सदन में राज्यों को जनसंख्या आधारित प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। भारत की विविधतापूर्ण स्थितियों को ध्यान में रखते हुये यह उचित भी है तथा तुलनात्मक रूप से बड़े राज्यों से (जहाँ एकाधिक सामाजिक समूह सम्भव) एक से अधिक क्षेत्रीय दलों का सक्रिय होना उक्त निर्णय को औचित्य प्रदान करता है। भारत के 64% राज्यों में अभी भी राष्ट्रीय दल उपस्थित हैं व राज्य सभा के लगभग तीन चौथाई स्थानों पर वे सम्बद्ध राज्यों को स्वर प्रदान कर रहे है परन्तु चूंकि ये दल एक समान

विचारधारा के अनुसार कार्य करते है अत: विशिष्ट हितों के प्रतिनिधित्व की दृष्टि से क्षेत्रीय दल शनै:–शनै: बेहतर विकल्प के रूप में उभर रहे हैं।

इस परिवर्तन की व्याख्या राजनीतिक सामाजीकरण के आधार पर भी की जा सकती है। राजनीतिक सामाजीकरण व्यक्तियों को राजनीतिक समाज का सक्रिय सदस्य बनाता है तथा मताधिकार के माध्यम से राजनीतिक प्रणालियों को परिवर्तित व विकसित करने का काम भी करता है। यह प्रक्रिया संरचना व पर्यावरण के बीच अनवरत चलती रहती है तथा संरचना को अद्यतन भी बनाये रखती है।

किसी संरचना के विकास का पूर्णरूपेण अध्ययन करने के लिये मूलत: दो तत्वों का अध्ययन किया जाना वांछनीय है ।

1 संरचना के संगठन का विकास क्रम

2 आवंटित कार्यों को पूर्ण करने की संरचना की क्षमता

राज्य सभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव का अध्ययन संघात्मक व्यवस्था के सन्दर्भों में करना प्रस्तावित है। प्रथम आयाम अर्थात संगठन के विकास क्रम का विश्लेषण (क्षेत्रीय दलों की सक्रियता के आलोक में) प्रस्तुत अध्याय (अध्याय–3) में प्रस्तुत किया गया है । अध्याय–3 से प्राप्त निष्कर्ष राज्य सभा की संरचना में क्षेत्रीय दलों के बढ़ते प्रभाव को रेखांकित करते है । क्षेत्रीय दलों की राज्य सभा में प्रभावी उपस्थिति इस प्रश्न को आधार प्रदान करती है कि क्षेत्रीय विचारधारा के दल राज्य सभा के कार्यकरण में राष्ट्रीय – क्षेत्रीय हितों के वांछनीय संतुलन को किस प्रकार प्रभावित करते है? इस बिन्दु से सम्बन्धित विश्लेषण अगले अध्याय का प्रतिपाद्य विषय है ।

≈≈≈≈

संघीय राजनीतिक व्यवस्थायें वास्तव में संघीय समुदाय की उत्पत्ति होती हैं। संघीय समुदाय प्रादेशिक विभिन्नताओं, मूल्यों, अभिरूचियों, आस्थाओं का समुच्चय होते हैं, जिन्हें स्वर प्रदान करने के लिये संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत ऐसा संकल्पनात्मक तंत्र विकसित किया जाता है जो प्रत्येक स्तर पर संघीय इकाइयों के प्रतिनिधित्व को सुनिश्चित करे। इसी क्रम में भारतीय संसद के द्वित्तीय सदन की संकल्पना संघीय सदन अथवा राज्यों के सदन के रूप में की गई थी। राज्यों के सम्बन्ध में राज्य सभा को प्रदत्त विशेषाधिकार (अनुच्छेद 249)[1], विशिष्ट निर्वाचन प्रक्रिया (अनुच्छेद 80(4))[2], जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1956 के अनुसार राज्य सभा सांसदों का राज्य का नागरिक होने की अनिवार्यता उक्त तथ्य की पुष्टि करते हैं।

"Upper house should represent the states and it's resolution would be tentamount to the authority given by the state".[3] (उच्च सदन राज्यों का प्रतिनिधित्व करे और उनके द्वारा लिया गया संकल्प राज्य द्वारा दी गई सत्ता के समान होगा)

विशिष्ट निर्वाचन प्रक्रिया के कारण संघीय राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत एक संरचना के रूप में अवस्थित राज्य सभा के पर्यावरणीय तत्वों का एक महत्वपूर्ण अंग राज्य राजनीति भी है।

1967 के निर्वाचन के बाद से क्षेत्रीय दल राज्य स्तरीय राजनीति के एक महत्वपूर्ण परिवृत्य के रूप में उभरे जिन्होंने 1989 में गठबन्धन संस्कृति के उदय के साथ केन्द्रीय स्तर पर भी संस्थागत स्वरूप प्राप्त कर लिया। इन दलों ने न सिर्फ केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के पुनर्परिभाषिकरण की आवश्यकता को रेखांकित किया बल्कि भारतीय संघ की कार्यप्रणाली को वास्तव में संघीय स्वरूप में संशोधित कर दिया। अध्याय–3 से प्राप्त निष्कर्षों के अनुसार राज्य व्यवस्थापिकाओं के माध्यम से ये क्षेत्रीय दल राज्य सभा में सशक्त उपस्थिति दर्ज करवा रहे हैं तथा अध्ययन काल में राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों की समग्र रूप से सहभागिता एक चौथाई से अधिक रही।

उक्त निष्कर्ष स्वतः ही इस प्रश्न हेतु आधार प्रदान करता है कि "क्षेत्रीय दलों का कार्यकरण व विधायी व्यवहार, क्षेत्रीय व राष्ट्रीय सन्दर्भों में राज्य सभा के चरित्र को किस प्रकार प्रभावित कर रहा है।"

---

1. अनुच्छेद 249– राज्य सभा के दो तिहाई सदस्य संकल्प के द्वारा राष्ट्रहित में राज्य सूची के किसी विषय पर संसद को विधि बनाने का अधिकार दे सकते है।
2. अनुच्छेद 80(4) - पूर्वोक्त
3. Dr. B.R.Ambedkar; Text of the speech delivered by Shri Kuldip N. (Former Member of RS) in seminar on 200th session of rajya sabha on 14 dec 2003

यह प्रश्न महत्वपूर्ण होने के साथ–साथ स्वाभाविक भी है क्योंकि क्षेत्रीय दलों व राज्य सभा का मूल चरित्र विरोधाभासी है। एक संघीय राज्य में क्षेत्रीय दलों के जन्म का आधार, क्षेत्र विशेष के हितों को स्वर देना, माना जा सकता है। क्षेत्रीय अथवा राज्य स्तरीय दलों की विचारधारा सीमित होती है तथा वे एक क्षेत्र अथवा राज्य विशेष में ही सक्रिय रहते हैं, इसके विपरीत राज्य सभा राष्ट्रीय स्तर का सदन है जिसकी परिकल्पना का आधार अतिव्यापक है, जो विविध हितों को स्वयं में समाहित करता है।

अत: राष्ट्रीय व्यवस्थापिका में क्षेत्रीय दलों की उपस्थिति स्वत: ही निम्न परिकल्पनाओं को आकार देती है।

1. राज्यसभा संघात्मक व्यवस्था की प्रतीक है

2. क्षेत्रीयता राष्ट्रीय हित का विलोम है

प्रथम परिकल्पना का परीक्षण प्रस्तुत अध्याय में किया जायेगा तथा द्वितीय परिकल्पना का परीक्षण अगले अध्याय (अध्याय–5) में किया जायेगा। उक्त परीक्षण का प्रमुख उद्देश्य क्षेत्रीय दलों की राज्य सभा में विधायी प्रक्रिया में सहभागिता का राज्य सभा के विकास के सन्दर्भ में मूल्यांकन करना है। इस परीक्षण द्वारा एक ओर क्षेत्रीय दलों की प्रवृत्ति (क्षेत्रीय/राष्ट्रीय) को जाना जा सकेगा तथा दूसरी ओर राज्य सभा के वास्तविक चरित्र/उद्देश्य/प्रकृति में आये उत्तरोत्तर विकास को उद्घाटित किया जा सकेगा। राज्य सभा के कार्यकरण का विधायी प्रक्रिया के सन्दर्भ में अध्ययन करने हेतु विधायी प्रक्रिया के निम्न उपकरणों का चयन किया गया है–

(1) विधेयक प्रस्तुतिकरण (2) स्पेशल मेन्शन (विशेष उल्लेख)

(3) प्रश्न (4) नियम 193 के अधीन अल्पकालिक चर्चा

(4) ध्यानाकर्षण प्रस्ताव (6) विशेष अनुमति से उठाये गये विषय

4.1 विधि निर्माण में भागीदारी

4.1.1 विधेयक प्रस्तुतिकरण

विधायी प्रक्रिया का सर्वाधिक व्यवहृत कार्य विधेयक प्रस्तुतिकरण है। विधायन सम्बन्धी सभी प्रस्ताव विधेयक के रूप में संसद में पेश किये जाते हैं। विधेयक से अभिप्राय है किसी विषय विशेष की रूपरेखा जिसके आधार पर सरकार द्वारा विधि निर्माण किया जाता है। विधेयक मूलत: तीन प्रकार के होते हैं।

(1) वित विधेयक (2) साधारण विधेयक

(3) संविधान संशोधन विधेयक

वित्त विधेयक के अतिरिक्त शेष दोनो विधेयक राज्य सभा में प्रस्तुत किये जा सकते हैं, यद्यपि विधेयकों के पारित होने की प्रक्रिया में लोक सभा की ही स्थिति महत्वपूर्ण है। राज्य सभा साधारण विधेयक को छह माह व वित विधेयक को मात्र 14 दिन ही विलम्बित कर सकती है। साथ ही राज्य सभा द्वारा की गई सिफारिशों को मानने के लिये लोक सभा बाध्य नहीं हैं। संविधान संशोधन विधेयक के सम्बन्ध में दोनो सदनों की स्थिति समकक्ष है।

विधेयकों को सदन में किसी मंत्री या किसी गैर सरकारी सदस्य द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है, इस प्रकार विधेयक दो प्रकार के होते हैं।

(1) सरकारी विधेयक (Government Bill)

(2) गैर सरकारी विधेयक या व्यक्तिगत सदस्य विधेयक (Private member bill)[1]

राज्य सभा में गैर सरकारी विधेयकों के सम्बन्ध में निम्न प्रणाली को अपनाया गया है। सदन में प्रत्येक दूसरे शुक्रवार 2:30 बजे से 5:00 बजे तक का समय व्यक्तिगत सदस्यों के विधायी कार्यों के लिये निर्धारित किया गया है। यदि शुक्रवार के दिन किसी कारणवश सदन की बैठक नहीं होती है तो सदन के सभापति इसी सप्ताह के किसी अन्य दिन के ढाई घण्टे व्यक्तिगत सदस्यों के विधायी कार्यों के लिये आवंटित कर सकते हैं। विधेयक प्रस्तुत करने हेतु सदस्य को 1 माह पूर्व नोटिस देना होता है। इससे कम समय का नोटिस देकर विधेयक प्रस्तुत करने हेतु सभापति की पूर्व अनुमति अनिवार्य होती है।

विधेयक प्रस्तुतिकरण के सम्बन्ध में 1997 से पूर्व तक यह नियम था कि एक सदस्य, राज्य सभा की एक बैठक में अधिकतम तीन बिल प्रस्तुत कर सकता था। परन्तु इसके कारण लम्बित विधेयकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि को देखते हुये इस नियम में परिवर्तन किया गया तथा वर्तमान में एक सदस्य राज्य सभा के एक सत्र में अधिकतम तीन बिल प्रस्तुत कर सकता है।

उक्त अवस्थाओं को पूर्ण करने में सम्बद्ध सदस्य को राज्य सभा सचिवालय द्वारा पूरी सहायता प्रदान की जाती है, जिससे तकनीकी आधार पर विधेयक अस्वीकृत न हो।

सदस्य सातवीं अनुसूची में उल्लिखित (संघ सूची व समवर्ती सूची) में शामिल विषयों से सम्बन्धित विधेयक प्रस्तुत कर सकते है, तथापि यदि क्षेत्राधिकार के विषय पर विवाद हो तो

सभापति इस पर विचार विमर्श की अनुमति दे सकता है कि यह विधेयक सदन में प्रस्तुत हो सकता है या नहीं। सदन की अनुमति प्राप्त होने के बाद विधेयक सदन में प्रस्तुत किया जाता है।

सदन के व्यक्तिगत सदस्यों से सम्बन्धित विधेयकों के लिये एक विशेष समिति "निजी विधेयक एवं प्रस्ताव समिति" का गठन सभापति द्वारा किया जाता है। इस समिति में सदन के 15 सदस्य होते हैं, जिनका चयन सभापति करता है। समिति का कार्यकाल एक वर्ष होता है। समिति का प्रमुख कार्य सदस्यों द्वारा प्रस्तुत विधेयकों की जांच करना, उन्हें प्रकृति, आवश्यकता व वरीयता के आधार पर वर्गीकृत करना व प्रस्तुतिकरण हेतु समय आवंटित करना होता है। सदस्यों द्वारा प्रस्तुत संविधान संशोधन विधेयकों की जांच प्रस्तुतिकरण से पूर्व की जाती है जबकि शेष विधेयकों की जांच प्रथम प्रस्तुतिकरण के पश्चात् की जाती है।

विधेयक का प्रारूप स्वीकृत होने के बाद सदस्य संख्या के अनुसार बिल की प्रतियाँ छपवाई जाती हैं तथा उनका वितरण सदन में किया जाता है। साथ ही विधेयक की दो प्रतिलिपि सम्बद्ध मंत्रालय व एटॉर्नी जनरल को भी भेजी जाती हैं।

अध्ययन काल में क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत विधेयकों का परीक्षण करने हेतु निम्न प्रक्रिया को अपनाया गया है।

अध्ययन काल में प्रस्तुत समस्त विधेयकों में से गैर सरकारी विधेयकों (व्यक्तिगत सदस्य विधेयकों) को अध्ययन में शामिल किया गया है। ऐसा करना इसलिये आवश्यक था क्योंकि सरकारी विधेयक सदन में सम्बद्ध विभाग की ओर से प्रस्तुत किये जाते हैं तथा वे सरकार की नीतियों पर आधारित होते हैं किसी दल या व्यक्ति विशेष के अनुसार नहीं होते। जबकि अध्ययन का उद्देश्य विशेष रूप से यह जानना है कि क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य स्तरीय तथा राष्ट्र स्तरीय हितों के अनुरूप कितने विधेयक राज्य सभा में प्रस्तुत किये गये।

गैर सरकारी विधेयकों में से क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत विधेयकों को पृथक करके, उनके विश्लेषण के द्वारा क्षेत्रीय दलों की विधायन में सहभागिता के आकलन का प्रयास किया गया है।

---

1. "Private member bill" शब्दावली का उद्भव वेस्टमिनिस्टर प्रणाली द्वारा माना जाता है, जिसमें प्राइवेट मिनिस्टर का अर्थ होता है वह सांसद जो कैबिनेट (कार्यपालिका) का भाग नहीं है।"

तालिका संख्या – 15

क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत विधेयक

वर्ष	कुल विधेयक	कुल गैर सरकारी विधेयक	क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत
2004	56	44	10
2005	123	90	16
2006	105	86	17
2007	79	66	10
2008	72	51	13
2009	50	46	11
2010	92	69	20
कुल	**577**	**452**	**97**

तालिका संख्या – 15 से स्पष्ट है कि आकलन वर्षों में कुल 577 विधेयक प्रस्तुत किये गये जिनमें से 452 गैर सरकारी विधेयक थे। इन 452 गैर सरकारी विधेयकों में से 97 विधेयकों का प्रस्तुतिकरण क्षेत्रीय दलों के सांसदों द्वारा किया गया, जो कि कुल गैर सरकारी विधेयकों का 21.46% है।

क्षेत्रीय दलों के सांसदों द्वारा अधिकतम विधेयक वर्ष 2010 में (28.99%) व न्यूनतम विधेयक वर्ष 2007 में (15.15%) प्रस्तुत किये गये। (प्रतिशत की गणना गैर सरकारी विधेयकों के सन्बन्ध में)

पुन: यह जानना वांछनीय होगा कि किस दल द्वारा कितने विधेयक प्रस्तुत किये गये।

रेखाचित्र संख्या – 11

दलीय आधार पर विधेयक प्रस्तुतिकरण

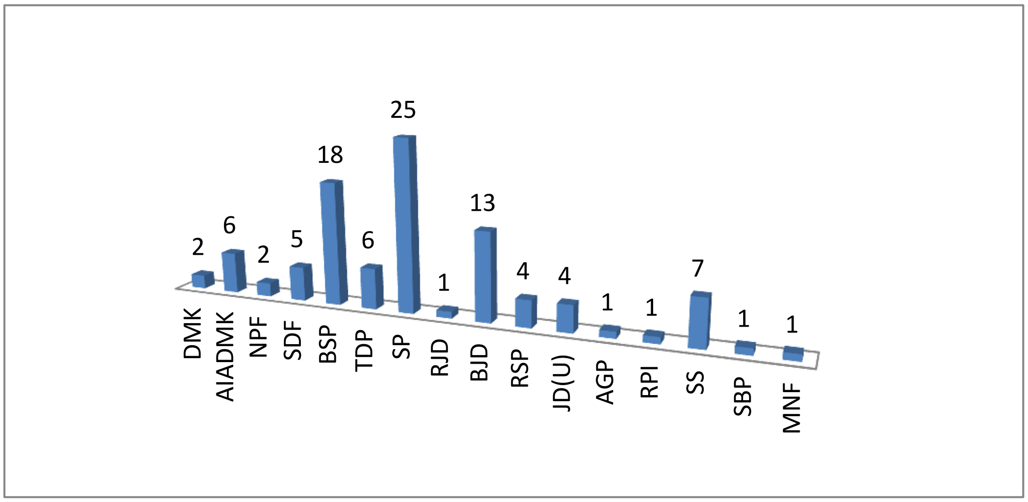

उक्त रेखाचित्र के आधार पर रेखांकित करने योग्य तथ्य निम्न हैं–

- अध्ययनकाल में कुल 32 क्षेत्रीय दल राज्य सभा में सक्रिय रहे (अध्याय–3 तालिका संख्या 8) परन्तु इनमें से मात्र 16 दल ऐसे हैं जो विधेयक प्रस्तुतिकरण में सक्रिय रहे।
- क्षेत्रीयता के आधार पर अग्रणी माने जाने वाले राज्य तमिलनाडु के क्षेत्रीय दलों अन्नाद्रमुक व द्रमुक द्वारा क्रमश: 6 व 2 विधेयक प्रस्तुत किये गये।
- सर्वाधिक विधेयक समाजवादी पार्टी द्वारा (25) व बहुजन समाज पार्टी द्वारा (18) प्रस्तुत किये गये। परन्तु दोनो दलों के सम्बन्ध में प्रमुख अन्तर यह रहा कि समाजवादी पार्टी ने अध्ययन के प्रत्येक वर्ष में विधेयक प्रस्तुत किये जबकि बहुजन समाज पार्टी ने वर्ष 2009 व 2010 में ही विधेयक सदन के पटल पर रखे।
- तीसरे स्थान पर बीजू जनता दल है जिसके द्वारा 13 बिल प्रस्तुत किये गये।
- इस प्रकार क्षेत्रीय दलों द्वारा गैर सरकारी विधेयकों में से 57.7% विधेयक तीन क्षेत्रीय दलों द्वारा ही प्रस्तुत किये गये।
- कर्नाटक, झारखण्ड, जम्मू–कश्मीर, केरल, पंजाब, हरियाणा के क्षेत्रीय दलों द्वारा एक भी विधेयक सदन में प्रस्तुत नहीं किया गया।

क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत विधेयकों का आकलन विषय के आधार पर करने पर निम्न आंकड़ें हमारे समक्ष आते है–

तालिका संख्या – 16

क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य सभा में प्रस्तुत क्षेत्रीय महत्व के विधेयक

दल	2004	2005	2006	2007	2008	2009	2010
DMK	1						
AIADMK		2					
BJD			1	1			
NPF					1	1	
SDF							1

- अध्ययनकाल में सक्रिय 32 क्षेत्रीय दलों द्वारा मात्र 8 क्षेत्रीय महत्व के विधेयक राज्य सभा में प्रस्तुत किये गये।
- पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्रीय दल नागालैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट व सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट ने तुलनात्मक दृष्टि से बड़े माने जाने वाले दलों (द्रमुक, अन्नाद्रमुक, बीजू जनता दल) के समकक्ष प्रदर्शन किया है।
- तमिलनाडु के दोनो क्षेत्रीय दलों (द्रमुक व अन्नाद्रमुक) द्वारा अन्तर्राज्यीय नदी–पानी विवाद के समाधान हेतु विधेयक प्रस्तुत किया गया। जो कि तमिलनाडु व कर्नाटक के मध्य कावेरी नदी के पानी को लेकर होने वाले विवाद को देखते हुये स्वाभाविक भी है।
- अन्नाद्रमुक द्वारा पाम उद्योग के विकास की रूपरेखा के साथ विधेयक सदन में प्रस्तुत किया गया, जो कि तमिलनाडु की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।
- बीजू जनता दल (उड़ीसा) द्वारा प्रस्तुत दोनो विधेयक उड़ीसा की दो प्रमुख समस्याओं नक्सलवाद व साइक्लोन प्रबन्धन पर केन्द्रित रहे।

*प्रतिशत के आधार पर देखे तो क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत कुल 97 विधेयकों में से मात्र 8.2% विधेयक क्षेत्रीय महत्व के विषयों से सम्बन्धित थे।

रेखाचित्र संख्या – 12 क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत विधेयक

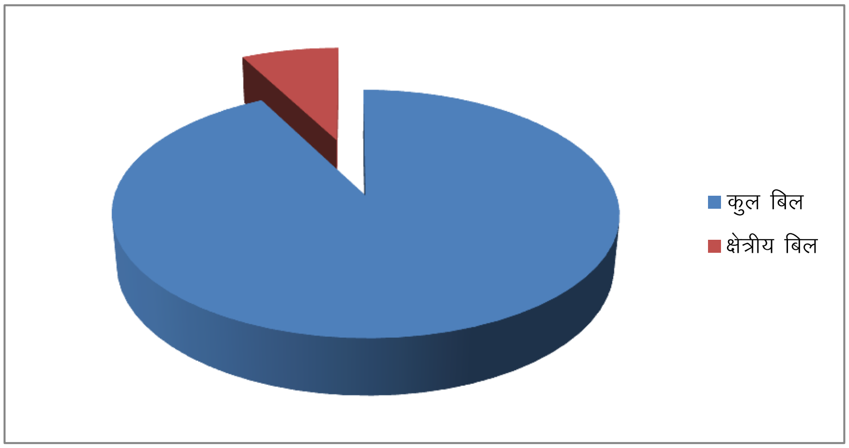

विधेयक प्रस्तुत करना व उन्हें पारित करवाने हेतु प्रयास करना न सिर्फ विधायी प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है बल्कि इसके माध्यम से क्षेत्र विशेष के हितों के संरक्षण व संवर्धन का काम भी किया जाता है। यदि क्षेत्रीय दल इस कार्य में उतने सक्रिय नजर नहीं आते जितना उनसे अपेक्षित है तो इसके दो प्रमुख कारण माने जा सकते हैं। (पर्यवेक्षण के आधार पर)

व्यक्तिगत बिलों के प्रस्तुतिकरण में सर्वप्रमुख व्यवधान स्वयं विधेयक प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में निहित है। इस प्रकिया के अन्तर्गत व्यक्तिगत विधेयक प्रस्तुतिकरण हेतु निर्धारित समय सदस्य संख्या के अनुपात में बेहद कम है। सदन में व्यक्तिगत सदस्यों के बिल प्रस्तुतिकरण हेतु माह में दो दिन (प्रत्येक दूसरा शुक्रवार) के ढाई घण्टे अर्थात कुल पांच घण्टे का समय निर्धारित किया गया है, जो कि सदन में उपस्थित विविध क्षेत्रीय दलों हेतु पर्याप्त नहीं है। पर्यवेक्षण व अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि प्रारम्भ में राज्य सभा का जब निर्माण हुआ था, राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृश्य व राज्य सभा में एक राष्ट्रीय दल का प्रभुत्व था जो शनैः-शनैः द्विदलीय से बहुदलीय स्वरूप में ढलता गया। इस प्रकार क्षेत्रीय दलों के रूप में सदन में निरन्तर विविधता का समावेश होता गया।

वर्तमान में भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अनुरूप विविध प्रकार के क्षेत्रीय दल राज्य सभा में अपने राज्यों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। उनके विचार व आवश्यकतायें भी पृथक–पृथक हैं। वर्तमान में निर्धारित प्रक्रिया में आवंटित समय के अन्तर्गत उक्त आवश्यकताओं को पूरा किया जाना असम्भव है तथा इसका परिणाम क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत विधेयकों की न्यून संख्या के रूप में उपस्थित है, जिसका सर्वाधिक प्रभाव सम्बद्ध क्षेत्र के निवासियों पर ही होता है।

क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत विधेयकों की कम संख्या अथवा स्वयं दलों की इस विषय में निष्क्रियता का दूसरा प्रमुख कारण सदन की इस सम्बन्ध में उदासीनता भी है। राज्य सभा की स्थापना से लेकर सत्र संख्या 221 तक मात्र 14 व्यक्तिगत सदस्य विधेयक पारित किये गये हैं। (देखे परिशिष्ट) इन पन्द्रह विधेयकों में से 5 बिल सन् 1956 में पारित किये गये। 1968 में The Supreme Court (Enlargement of Criminal Appellate Jurisdiction) Bill प्रस्तावित किया गया जो कि 6 अगस्त 1970 को कानून बना।

इसके अतिरिक्त सदन में प्रस्तुतिकरण हेतु विधेयकों का चयन लॉटरी प्रक्रिया द्वारा होता है, विषय वरीयता के आधार पर नहीं। इस स्थिति में सम्भव है कि कई महत्वपूर्ण विधेयक लम्बित विधेयकों की सूची में ही रह जायें। यह विधायी प्रक्रिया की दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता है।

इस प्रकार प्रक्रियागत दुर्बलताओं, दलगत प्रतिबद्धताओं व राजनीतिक विवशताओं का सम्मिलित दुष्प्रभाव सदन में दो रूपों में प्रस्तुत हुआ

(1) व्यक्तिगत सदस्यों द्वारा प्रस्तुत विधेयकों की न्यून संख्या

(2) सदन में लंबित विधेयकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि

4.2 विशेष उल्लेख (स्पेशल मेन्शन)

स्पेशल मेन्शन अथवा विशेष उल्लेख संसदीय विधायी प्रक्रिया का एक अन्य उपकरण हैं जिसके माध्यम से कोई सांसद सदन में लोक हित के मुद्दों को उठा सकता है। 1 जुलाई 2000 तक राज्य सभा के प्रक्रिया नियमों में इसका कोई प्रावधान नहीं था। राज्य सभा के प्रारम्भिक दो दशकों में यह अभ्यास में था कि प्राय: वह सदस्य जो सार्वजनिक महत्व के मामलों की ओर सदन तथा सरकार का ध्यान आकर्षित करने का इच्छुक है, वह सदन की बैठक से पूर्व सभापति के चैम्बर में जाकर, सम्बद्ध मामलें पर विचार हेतु स्वीकृति प्राप्त करता था तथा प्रश्नकाल के बाद सम्बद्ध सदस्य को मामले के उल्लेख हेतु बुलाया जाता था।

सांसदों की सुविधा हेतु स्पेशल मेन्शन की निर्माण प्रक्रिया तथा नियमों की अनुपस्थिति पर विचार किया गया। इस विषय को सामान्य उद्देश्य समिति के सम्मुख रखा गया। समिति की बैठक

28 जुलाई 1999 को बुलाई गई तथा उक्त सन्दर्भ में नियम निर्माण की आवश्यकता को प्रस्तावित किया व विधि निर्माण समिति ने अपनी आठवीं रिपोर्ट में 180A से 180E तक विशेष उल्लेख से सम्बन्धित नवीन नियम प्रस्तावित किये। सदन द्वारा 16 मई 2000 से नये नियमों का पालन किया जाने लगा। तदनुसार 190^{th} सत्र से सार्वजनिक महत्व के मामलों को 'विशेष उल्लेख की प्रक्रिया' के अन्तर्गत सदन में उठाया जाने लगा।

इस प्रक्रिया के सम्बन्ध में प्रमुख तथ्य निम्न हैं–

- एक सदस्य जो सार्वजनिक महत्व के विषयों को सदन में विचार हेतु उठाना चाहता है, उन्हें नोटिस कार्यालय में इस उद्देश्य हेतु उपलब्ध प्रारूप में लिखित रूप में शाम 5 बजे तक किसी भी कार्यदिवस पर अपना नोटिस देना होगा।
- नोटिस के साथ अधिकतम 250 शब्दों में विषय से सम्बन्धित पाठ्य–सामग्री होनी चाहियें।
- एक सदस्य द्वारा एक बैठक में इस प्रकार के दो से अधिक नोटिस नहीं दिये जा सकते हैं।
- सायं 5 बजे तक प्राप्त नोटिस अगले दिन सभापति के समक्ष रखे जायेंगे।
- यह सभापति का स्वविवेकी अधिकार है कि वह प्राप्त नोटिसों में से अति आवश्यक महत्व के 7 मामलों को एक दिन के लिये चयनित करे।
- तत्पश्चात् चयनित नोटिस सदन में प्रस्तुत किये जायेंगे।
- वह सांसद जिसे सभापति की अनुमति द्वारा किसी विशेष मामलें को सदन में विचार हेतु रखना है उसे सदन में प्रश्नकाल के दौरान सूचित किया जायेगा।
- सामान्यत: एक विषय से सम्बन्धित एक से अधिक विशेष उल्लेख का चयन नहीं किया जायेगा तथा अति आवश्यक होने पर इस विचार के स्पेशल मेन्शन को एक दूसरे से सम्बद्ध कर दिया जायेगा।
- एक सदस्य को प्रस्तुतिकरण हेतु तीन मिनट का समय दिया जायेगा तथा एक सदस्य को एक सप्ताह में एक स्पेशल मेन्शन रखने की अनुमति होगी।
- इस प्रकार के अनुमन्य सदस्य प्रश्नों की समाप्ति तथा प्रपत्रों के रखे जाने के बाद मामले का उल्लेख करेंगे। यदि कोई ध्यानाकर्षण नोटिस उस दिन के लिये स्वीकृत है तो स्पेशल मेन्शन उस दिन के लिये अनुमन्य नहीं होगा।

♦ किसी दिन विशेष में जिन विषयों पर नोटिस का चयन नहीं किया जाता है, उन्हें अगले कार्यदिवस पर सभापति के विचार हेतु प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे नोटिस जिनका चयन एक सप्ताह के अन्तर्गत नहीं हुआ है वे सप्ताह के अन्त में लैप्स हो जाते हैं।

अध्ययन काल में स्पेशल मेन्शन का प्रयोग क्षेत्रीय दलों के सांसदों द्वारा किस प्रकार किया गया, यह जानने के लिये सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक होगा कि अध्ययन काल (सन् 2004–2010) में कितने स्पेशल मेन्शन सदन में प्रस्तुत हुये तथा उनमें क्षेत्रीय दलों की सहभागिता कितनी रही। उक्त आंकड़ें रेखाचित्र 13 में दर्शाये गये हैं।

रेखाचित्र संख्या – 13

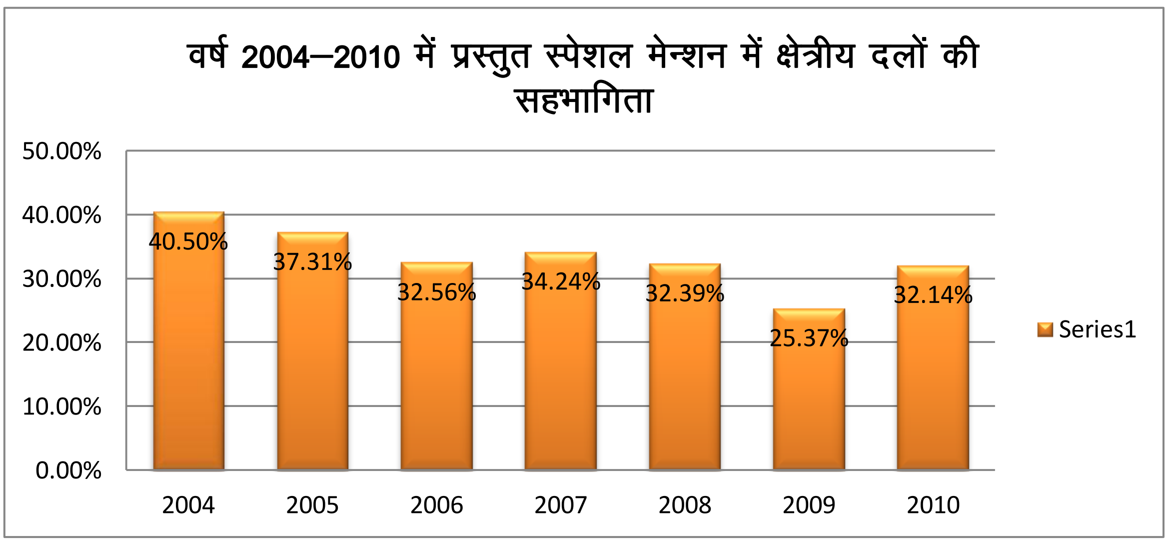

रेखाचित्र 13 से प्राप्त एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि क्षेत्रीय दलों द्वारा विशेष उल्लेख का प्रयोग विधेयक प्रस्तुतिकरण की तुलना में अधिक किया गया है। क्षेत्रीय दलों की विधेयक प्रस्तुतिकरण में अधिकतम सहभागिता 28.99% (सन् 2010) रही, जबकि विशेष उल्लेख में क्षेत्रीय दलों की अधिकतम सहभागिता 40.50% (सन् 2004) रही।

अध्ययनकाल में राज्य सभा में कुल 2,731 विशेष उल्लेख प्रस्तुत किये गये जिनमें से 922 (33.76%) क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत किये गये।

दलीय आधार पर अध्ययनकाल में प्रस्तुत विशेष उल्लेख का आंकलन करने पर निम्न आंकड़ें हमारे समक्ष आते हैं।

रेखाचित्र संख्या – 14

दलीय आधार पर विशेष उल्लेख प्रस्तुतिकरण

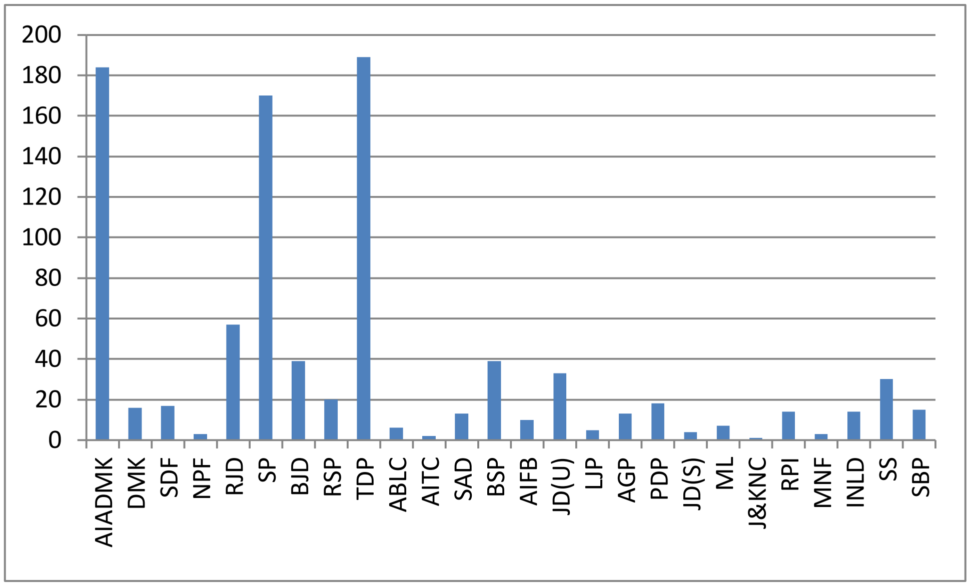

जैसा कि रेखाचित्र 14 से स्पष्ट है–

- अध्ययनकाल में सक्रिय 32 क्षेत्रीय दलों में से 26 दलों ने सदन में विशेष उल्लेख प्रस्तुत किये जो कि कुल दलों का 81.25% था। इसका अर्थ है कि विधेयक प्रस्तुतिकरण की तुलना में विशेष उल्लेख में क्षेत्रीय दलों की सहभागिता उल्लेखनीय रही है।
- सर्वाधिक विशेष उल्लेख आन्ध्रप्रदेश की तेलगुदेशम पार्टी द्वारा (189) प्रस्तुत किये गये। इसके अतिरिक्त अन्ना द्रमुक द्वारा 184, समाजवादी पार्टी द्वारा 170 विशेष उल्लेख सदन के संज्ञान में लाये गये।
- तुलनात्मक दृष्टि से छोटे राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले अथवा कम मुखर क्षेत्रीय दलों द्वारा भी अपेक्षाकृत अधिक मुखर व बड़े राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले दलों के समकक्ष प्रदर्शन किया गया उदाहरण के लिये सिक्किम राज्य के क्षेत्रीय दल सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट द्वारा 17 व असम राज्य के दल असम गण परिषद द्वारा 13 विशेष उल्लेख सदन में प्रस्तुत किये गये। वहीं तमिलनाडु के अतिसक्रिय क्षेत्रीय दल द्रमुक द्वारा 16 विशेष उल्लेख लाये गये। जबकि जम्मू कश्मीर नेशनल कांफ्रेस ने मात्र 1 विशेष उल्लेख सदन में विचार हेतु प्रस्तुत किया।

4.3 प्रश्न पूछने की प्रक्रिया

संसदात्मक विधायी प्रक्रिया का एक अन्य महत्वपूर्ण प्रजातान्त्रिक लक्षण विधायकों द्वारा सरकार से प्रश्न पूछना है। संसद के दोनों सदनों में यह प्रक्रिया हर दिन बैठक के प्रारम्भिक एक घण्टे तक (11 से 12 बजे तक) होती है। इस दौरान सदस्य कम से कम 10 दिन पहले लिखित रूप से सूचित किये गये प्रश्नों को पूछते हैं, जिनका उत्तर सम्बन्धित विभाग का मंत्री या जिम्मेदार अधिकारी देता है। इस एक घण्टे की कार्यवाही को संसदीय भाषा में प्रश्नकाल कहते हैं।

संसद में प्रश्नों का उत्तर दिये जाने के अलग–अलग तरीकों के आधार पर संसदीय प्रश्नों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है। तारांकित, अतारांकित, अल्पसूचना प्रश्न। यह सदन के अध्यक्ष या सभापति के विवेक पर निर्भर करता है कि वह किसी प्रश्न को तारांकित श्रेणी में रखे या अतारांकित श्रेणी में। तारांकित प्रश्नों का उत्तर सदन में मौखिक रूप से दिया जाता है। अतारांकित प्रश्नों का उत्तर लिखित रूप में दिया जाता है। ज्यादा विस्तार और जटिल आंकड़ें वाले प्रश्नों को इस श्रेणी में रखा जाता है। उक्त दो प्रकार के प्रश्नों के अतिरिक्त अल्प सूचना प्रश्न भी किये जाते है, जिनका उत्तर निर्धारित न्यूनतम अवधि से कम दिनों की सूचना पर मौखिक रूप से दिया जाता है।

प्रश्नकाल के बीच किसी प्रश्न या उत्तर पर वाद–विवाद करने की अनुमति नहीं होती, लेकिन उत्तर के सम्बन्ध में किसी तथ्य के स्पष्टीकरण की जरूरत पर अनुपूरक या अनुवर्ती प्रश्नों के लिये अध्यक्ष/सभापति अनुमति दे सकते हैं। जिस सदस्य के नाम पर प्रश्न दर्ज होता है वह दो अनुपूरक प्रश्न पूछ सकता है। अन्य सदस्य जिन्हें सभापति अनुमति दे एक–एक प्रश्न पूछ सकते है। अध्यक्ष सामान्यत: एक प्रश्न सत्ता पक्ष के सदस्य को और एक प्रश्न विपक्ष के सदस्य को पूछने के लिये कहते हैं। तथापि ऐसे प्रश्नों की संख्या प्रश्न के महत्व के अनुसार अध्यक्ष/सभापति के विवेक पर निर्भर करती है।

लोकसभा में किसी एक दिन की प्रश्नसूची में कुल 20 तारांकित प्रश्न होते हैं। अतारांकित प्रश्नसूची में अधिकतम 230 प्रश्न होते हैं। राज्यसभा में तारांकित प्रश्नों की कोई निश्चित सीमा नहीं होती है तथा एक दिन की अतारांकित प्रश्नसूची में ज्यादा से ज्यादा 200 प्रश्न होते हैं। लोकसभा का कोई सदस्य एक दिन में अधिकतम पांच प्रश्न तक कर सकता हैं, इनमें भी तारांकित श्रेणी का सिर्फ एक प्रश्न पूछ सकता है। राज्यसभा में कोई सदस्य तारांकित श्रेणी के तीन प्रश्न पूछ सकता है।

सदन में प्रश्नों के उत्तर देने के लिये भारत सरकार के सभी मंत्रालयों और विभागों को पांच समूहों में बांट दिया गया है। ए, बी, सी, डी, ई। इन समूहों के मंत्रालयों के लिये क्रमश: सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरूवार व शुक्रवार को प्रश्न पूछने का दिन नियत होता है। सांसद प्रश्न पूछने के लिये कम से कम 10 दिन पूर्व सदन को सूचना दे चुके होते हैं। इन पर विचार कर अध्यक्ष/सभापति के निर्देश पर इन प्रश्नों को कम से कम 5 दिन पहले सम्बन्धित मंत्रालयों को भेज दिया जाता है, जिससे वे अपने उत्तर तैयार कर सकें। अध्ययन काल में क्षेत्रीय दलों द्वारा **राज्य सभा में पूछे गये प्रश्नों से सम्बन्धित आंकड़े निम्न हैं–**

रेखाचित्र संख्या – 15

क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य सभा में पूछे गये प्रश्नों की संख्या

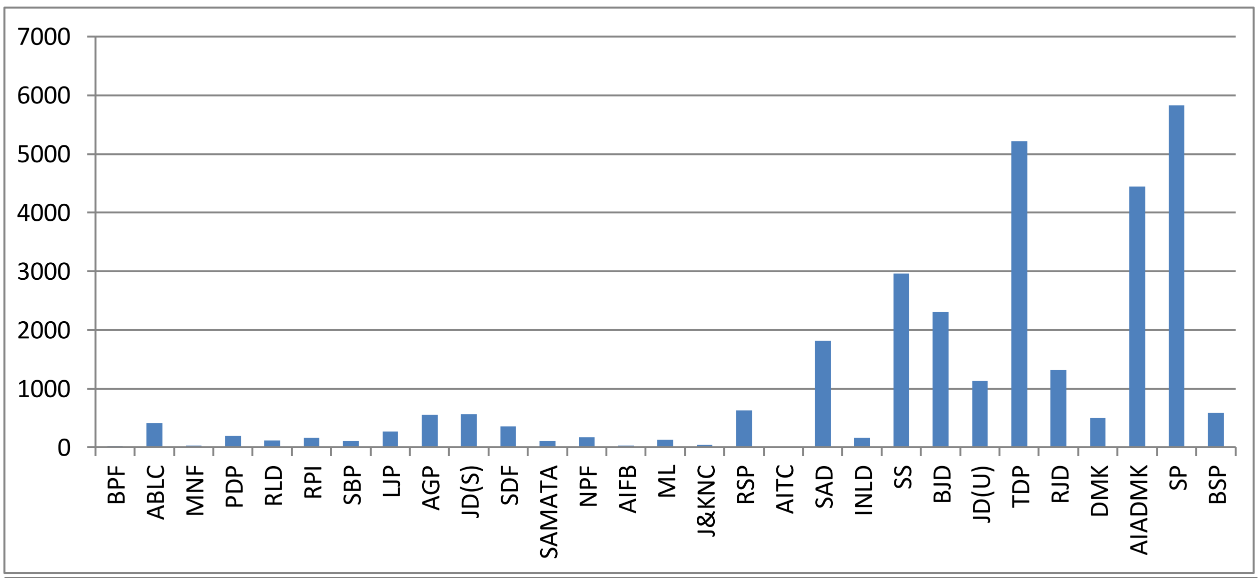

4.4 ध्यानाकर्षण प्रस्ताव– (Calling Attention)

ध्यानाकर्षण प्रस्ताव की अवधारणा का उदय भारतीय संसदीय प्रक्रिया में एक नवाचार है। यह अनुपूरक प्रश्नों तथा संक्षिप्त अभिमतों के साथ उत्तर के लिये पूछे गये प्रश्नों को जोड़ता है जिसके अन्तर्गत विचारों के विभिन्न बिन्दुओं को सार संक्षिप्त में अभिव्यक्त किया जाता है, तथा सरकार के पास पर्याप्त अवसर होता है कि वह अपने पक्ष को प्रस्तुत कर सके। साथ ही यह प्रस्ताव सदस्यों को यह अवसर देता है कि वे अति आवश्यक लोक महत्व के विषयों पर सरकार की असफलता या अपर्याप्त कार्यवाही को पटल पर ला सकें। यह प्रक्रिया उपकरण बिना अनुमति के स्थगन प्रस्ताव की भांति है।

इस सम्बन्ध में राज्य सभा में Rules of procedure and conduct of business के नियम 180 (जिसका सम्बन्ध लोक महत्व के अपरिहार्य मामलों पर ध्यानाकर्षण से है) के अन्तर्गत निम्न प्रावधान किये गये हैं।

(1) सांसद सभापति की पूर्व अनुमति से किसी मंत्री का ध्यान आवश्यक सार्वजनिक महत्व के किसी विषय की ओर आकृष्ट कर सकते हैं तथा मंत्री संक्षिप्त स्पष्टीकरण दे सकता है अथवा स्पष्टीकरण देने के लिये समय मांग सकता है।

(2) ध्यानाकर्षण प्रस्तावों की संख्या के सम्बन्ध में यह स्पष्ट प्रावधान है कि कोई सदस्य एक बैठक में दो से अधिक ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के नोटिस नहीं दे सकता है।

(3) इस प्रकार के वक्तव्य पर तत्काल कोई बहस नहीं होगी।

(4) एक बैठक में एक विषय से सम्बन्धित एक ही ध्यानाकर्षण प्रस्ताव प्रस्तुत किया जा सकता है।

(5) विषयों को सभापति के अभिमत के अनुसार वरीयता दी जायेगी।

(6) प्रस्तावित विषय प्रश्नों तथा प्रपत्रों के रखे जाने के बाद उठाया जायेगा।

(7) सप्ताह के अंतिम दिन जब सदन बैठेगा, उस दिन में 10:30 प्रात: तक प्राप्त नोटिस पर विचार होगा तथा जिन नोटिस का चयन नहीं होगा वे छोड़ दिये जायेंगे तथा उनके सम्बन्ध में कोई सूचना सदस्यों को नहीं दी जायेगी।

(8) सप्ताह के अंतिम दिन 10:20 के बाद प्राप्त नोटिसों को अगली बैठक के दिन प्राप्त माना जायेगा तथा वे उसी सप्ताह के लिये वैध मानी जायेगी।

(9) एक सदस्य जिसके ध्यानाकर्षण प्रस्ताव को चयनित नहीं किया गया है, बाद के सप्ताह के लिये पुनर्नवीनीकृत किया जा सकता है।

(10) ध्यानाकर्षण नोटिस पर दिया जाने वाला समय एक घण्टे का है जो कि 1 बजे मध्यान्ह तक समाप्त हो जाना चाहिये।

व्यवहार में ध्यानाकर्षण प्रक्रिया

एक सदस्य, जो मंत्री का ध्यान किसी विशिष्ट विषय की ओर आकृष्ट करना चाहता है, उसे निर्धारित प्रारूप पर लिखित में नोटिस देना होता है। 10:30 बजे प्रात: तक प्राप्त नोटिस सभापति के समक्ष विचार हेतु रखे जाते हैं। सभापति के निर्णय के पश्चात् सम्बन्धित मंत्री व सदस्यों जिनके नाम ध्यानाकर्षण नोटिस प्रेषित किया गया है तदनुसार सूचित कर दिया जाता है। स्वीकृत ध्यानाकर्षण नोटिस के किसी भी तथ्य को उन सभी सदस्यों के नाम से कार्यवाही में शामिल किया जाता है। सभापति के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वे प्रत्येक बैठक में ध्यानाकर्षण नोटिस स्वीकार करें। नोटिस की स्वीकृति नियमों व सभापति के निर्णय के अनुसार होती है।

सामान्यत: ध्यानाकर्षण प्रस्ताव को प्रश्नों के घण्टे के शीघ्र बाद लाया जाता है, परन्तु सभापति के निर्देशानुसार अथवा सदन एकमत हो तो इन्हें दिवस के बाद के सत्र में भी लाया जा सकता है। कार्यवाही सूची में जिस सदस्य का नाम प्रथम स्थान पर होता है वे अपने स्थान पर खड़े होकर मंत्री विशेष का ध्यान आकर्षित करता है (सूची से तथ्यों को पढ़ते हुये) इस समय वह कोई वक्तव्य नहीं देता है।

इसके पश्चात् मंत्री ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के जवाब में वक्तव्य देता है। मंत्री के प्रस्तावित वक्तव्य की प्रतियां वक्तव्य से ठीक पहले सदस्यों को उपलब्ध करवा दी जाती हैं। नियमानुसार इस वक्तव्य पर कोई बहस अनुमन्य नहीं है, यद्यपि सदस्य वक्तव्य पर स्पष्टीकरण प्राप्त कर सकते हैं इस उद्देश्य के लिये सभापति दल अथवा समूह के अनुसार सदस्यों को बुलाता है। सभापति के लिये यह अनिवार्य नहीं है कि वह कार्यवाही में शामिल सभी सदस्यों को बुलाये।

रेखाचित्र संख्या – 16

दलीय आधार पर ध्यानाकर्षण प्रस्ताव

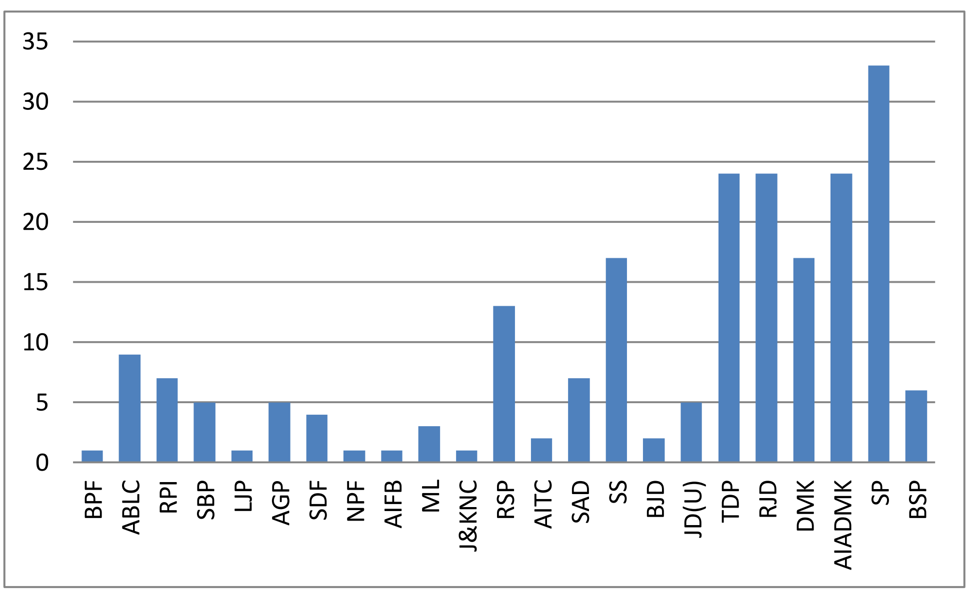

4.5 अल्पकालीन चर्चायें

एक गैर सरकारी सदस्य के लिये अविलंबनीय लोक महत्व के मामले सदन के ध्यान में लाने का एक अन्य उपाय है अल्पकालीन चर्चायें। वर्ष 1953 से पहले ऐसी चर्चाऐं उठानें के लिये कोई उपबंध नहीं था। वर्ष 1953 से यह प्रथा बनी कि सदस्य महत्वपूर्ण व अविलंबनीय मामले अल्पकालीन चर्चा के माध्यम से सदन में उठा सकते हैं।

ऐसी चर्चा उठाने के लिये मामले का संक्षेप में उल्लेख करते हुये उसके कारणों की स्पष्ट व्याख्या करते हुये सदस्य द्वारा महासचिव को सूचना देनी होती है। ऐसी सूचना पर संसद के कम से कम दो अन्य सदस्यों के हस्ताक्षर भी होने चाहियें।[1]

अध्यक्ष/सभापति प्राप्त सूचनाओं की ग्राहता के बारे में फैसला करता है। यदि उसका समाधान हो जाये कि मामला इतना अविलंबनीय है और महत्वपूर्ण है कि शीघ्र ही उसका सदन में उठाया जाना आवश्यक है और उस पर चर्चा के लिये शीघ्र कोई अवसर अन्यथा उपलब्ध नहीं है तो वह सूचना को गृहीत कर सकता है।[2]

अल्पकालीन चर्चा की सूचना में, ग्राहत होने के लिये, ऐसा मामला उठाया जाना चाहिये जिसका मूलतया केन्द्रीय सरकार से सम्बन्ध हो, जो निराधार आरोपों पर आधारित न हो, जो काल्पनिक न हो और जिसमें अविलंबनीयता का तत्व हो। एक सूचना में केवल एक मामला उठाया जा सकता है।

सभापति अल्पकालीन चर्चा के लिये एक सप्ताह में दो बैठकें नियत कर सकता है और ऐसी चर्चा के लिये बैठक की समाप्ति पर या उससे पहले अधिक से अधिक ढाई घण्टे का समय दे सकता है। चर्चा की तिथि का निर्धारण सदन के नेता के परामर्श से किया जाता है।

सूचना गृहीत किये जाने और चर्चा के लिये तिथि निर्धारित किये जाने के बाद उसे उस दिन की कार्यसूची में सम्मिलित किया जाता है। निर्धारित दिन पर अध्यक्ष उस प्रथम सदस्य को जिसके नाम से कार्यसूची में मद दर्ज हो संक्षिप्त वक्तव्य देने के लिये कहता है और मंत्री संक्षेप में उसका उत्तर देता है। उसके बाद अन्य सदस्य चर्चा में भाग लेते है। जो सदस्य चर्चा उठाता है, उसे उत्तर देने का अधिकार नहीं होता है। अल्पकालीन चर्चा के सम्बन्ध में सदन के समक्ष कोई औपचारिक प्रस्ताव नहीं होता, न ही मतदान होता है। चर्चा का उद्देश्य यह होता हैकि जिन सदस्यों के पास उस विषय के बारे में कुछ तथ्य हो वे सदन को उनसे अवगत करायें और मंत्री सदन व राष्ट्र के लाभार्थ स्थिति स्पष्ट करें।

---

(1) संसदीय कार्यवाही नियम 193 (2) संसदीय कार्यवाही नियम 194(i)

रेखाचित्र संख्या – 17

दलीय आधार पर अल्पकालीन चर्चा

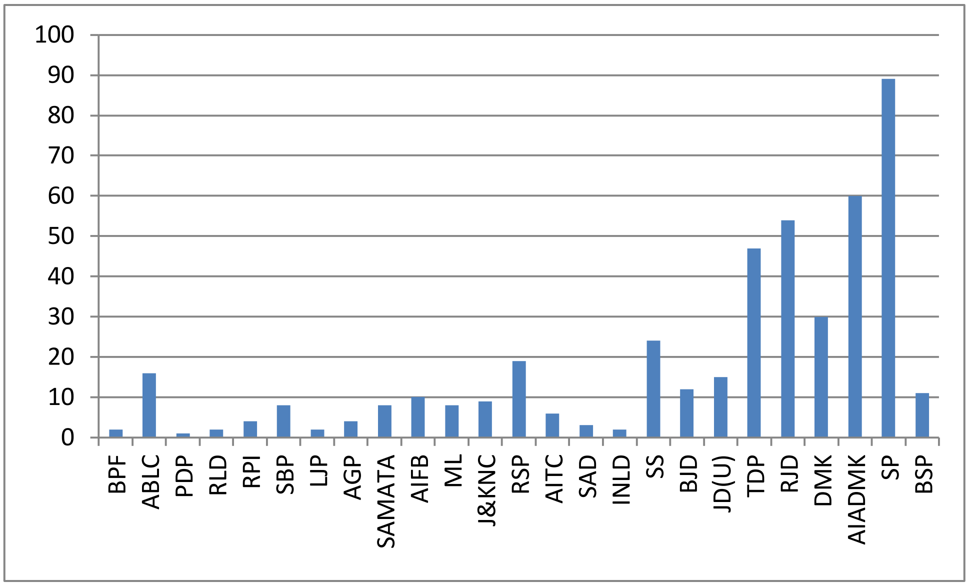

4.6 विषय प्रस्तुतिकरण के आधार पर क्षेत्रीय दलों का परीक्षण

पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्रीय दल

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र के राज्य असम, मणिपुर, मेघालय, सिक्किम विषम भौगोलिक परिस्थितियों वाले राज्य है। इन क्षेत्रों में क्षेत्रीयता का विकास सन् 2000 के बाद हुआ है। उत्तर पूर्वी राज्यों की जटिल भौगोलिक परिस्थितियों व कठिन जीवन स्तर को देखते हुये क्षेत्रीय प्रतिनिधियों से यही अपेक्षा रहती है कि वे जनजीवन को सरल बनाने हेतु प्रयासरत रहें। सन्दर्भित विषयों के आधार पर पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता के आकलन के आधार पर स्पष्ट है कि उक्त दल सम्बद्ध राज्यों के राज्य स्तरीय हितों को राज्य सभा में स्वर प्रदान करने में सफल रहे हैं।

उत्तर पूर्वी राज्यों में सक्रिय प्रमुख क्षेत्रीय दल मिजो नेशनल फ्रण्ट, नागालैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट, असम गण परिषद, सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट और बोडोलैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट है। अध्ययनकाल में इन दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता निम्न आंकड़ों से स्पष्ट है–

तालिका संख्या – 17

पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राज्य स्तरीय प्रश्न	राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख	राज्य स्तरीय विधेयक	राज्य स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये विषय	ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
NPF	3	113	3	2	0	0	1
MNF	2	29	3	0	0	0	0
SDF	2	168	14	1	0	1	0
AGP	2	365	8	0	0	12	2
BPF	1	14	0	0	0	4	1

उक्त आंकड़ों के अनुसार असम गण परिषद व सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट पूर्वोत्तर राज्यों के सर्वाधिक सक्रिय क्षेत्रीय दल है। जबकि बोडोलैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट लगभग पूर्ण निष्क्रिय दल है।

प्रश्नों व विशेष उल्लेख के माध्यम से उठाये गये विषय इस प्रकार है–

- आवागमन के साधन जैसे राष्ट्रीय राजमार्ग, रेल्वे, हवाई अड्डों का रखरखाव व विस्तार
- संचार साधनों की सहज उपलब्धता
- कृषि सम्बन्धी सुविधाओं का विकास
- ऊर्जा स्त्रोतों का विकास
- बेरोजगार युवा वर्ग हेतु नीति निर्माण
- इसके अतिरिक्त सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट द्वारा मूलतः पर्यटन व उससे सम्बन्धित समस्याओं व सुविधाओं (एअरपोर्ट, राष्ट्रीय राजमार्ग) के विस्तार व सुदृढ़ीकरण से सम्बन्धित विशेष उल्लेख सदन में रखे गये।

सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट द्वारा जिन अन्य विषयों पर विशेष बल दिया गया वे हैं–

- ♦ विशिष्ट सांस्कृतिक विरासत को सहेजने हेतु संग्रहालय का निर्माण
- ♦ स्थानीय आदिवासियों का हित संरक्षण
- ♦ सिक्किम विधानसभा में आदिवासियों को आरक्षण
- ♦ शिक्षण व्यस्था हेतु केन्द्रीय विद्यालय व विश्व विद्यालय की स्थापना
- ♦ खाद्य प्रसंस्करण इकाई का विकास
- ♦ असम गण परिषद व मिजो नेशनल फ्रण्ट द्वारा म्यांमार व बांग्लादेश की भारतीय सीमा में घुसपैठ को सदन के समक्ष रखा।
- ♦ असम गण परिषद द्वारा प्रगतिशील व व्यवहारिक दृष्टिकोण का परिचय देते हुये क्षेत्र में औद्योगिक विकास की सम्भावनाओं को तलाशने के प्रयास किये गये। जिसके अन्तर्गत निम्न विषयों की ओर राज्य सभा का ध्यान आकर्षित किया गया।
- ♦ भारतीय चाय की ई नीलामी
- ♦ राज्य में विज्ञान व प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन
- ♦ सौर ऊर्जा संयत्रों का विकास
- ♦ वैज्ञानिक दृष्टिकोण का संवर्द्धन
- ♦ प्लांटेशन
- ♦ एअरपोर्ट का विषय भी असम गण परिषद के लिये महत्वपूर्ण रहा
- ♦ असम गण परिषद व नागालैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट द्वारा प्राकृतिक आपदा के समय दिये जाने वाले सहायता पैकेज में सुधार की आवश्यकता जताई गई।
- ♦ असम गण परिषद व मिजो नेशनल फ्रण्ट द्वारा न्यायिक व्यवस्था में सुधार व हाईकोर्ट में जजों की नियुक्ति हेतु प्रयास किये जाने पर बल दिया गया।
- ♦ नागालैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट के द्वारा स्थानीय जनजातियों को आरक्षण व राज्य व्यवस्थापिका में स्थान देने की आवश्यकता को विशेष उल्लेख के माध्यम से राज्य सभा में रखा गया। साथ ही नागालैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट द्वारा स्थानीय निवासियों के सहयोग से इण्डो नागा विवाद के निपटारे के विषय को उल्लिखित किया गया।
- ♦ मिजो नेशनल फ्रण्ट एकमात्र ऐसा दल रहा जिसने सामान्य जीवन से जुड़ी मूलभूत सुविधाओं जैसे खाद्य सुरक्षा, गैस सप्लाई, हाइड्रो पावर प्रोजेक्ट जैसे विषयों को विशेष उल्लेख में शामिल किया।

- उक्त विषयों के अतिरिक्त खेलों से सम्बन्धित सुविधाओं की अपरिहार्यता, IIT व एम्स जैसी संस्थाओं के विकास सम्बन्धी प्रश्न भी पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य सभा के समक्ष रखे गये।

सभापति की विशेष अनुमति से असम गण परिषद द्वारा कुछ विषय राज्य सभा के समक्ष रखे गये। जैसे कि–

- पूर्वोत्तर रेल्वे में नियुक्तियां
- असम में आन्तरिक सुरक्षा व कानून व्यवस्था, की समस्या
- चीन द्वारा ब्रहमपुत्र पर बांध का निर्माण
- आसाम में तूफान द्वारा जान का नुकसान
- बम धमाकों के बाद असम में सुरक्षा
- असम में बाढ़ की स्थिति
- असम में घुसपैठ

बोडोलैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट द्वारा भी चीन द्वारा बांध के निर्माण पर चिन्ता जताई गई।

- सभापति की विशेष अनुमति से किसी विषय को सदन में प्रस्तुत करने की प्रक्रिया का प्रयोग एकमात्र असम गण परिषद द्वारा किया गया
- असम गण परिषद द्वारा ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के माध्यम से भी बड़े बांधों के निर्माण से उत्पन्न समस्याओं को राज्य सभा के संज्ञान में लाया गया।
- नागालैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट द्वारा भी एक राज्य स्तरीय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव राज्य सभा में रखा गया जो कि उत्तरी कोचर जिले की पहाड़ियों पर व्याप्त अशांति से सम्बन्धित था।

जम्मू–कश्मीर के क्षेत्रीय दल

जम्मू–कश्मीर सामरिक दृष्ट से भारत का महत्वपूर्ण राज्य है, साथ ही राज्य की भौगोलिक परिस्थितियां राज्य को और अधिक विशिष्ट बनाती हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 के अन्तर्गत जम्मू–कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा प्रदान किया गया है। पर्यटन राज्य का सबसे बड़ा उद्योग है जो कि आतंकवाद से ग्रस्त, उथल–पुथल से भरी अशांतिपूर्ण आर्थिक स्थिति के कारण सर्वाधिक प्रभावित हो रहा है।

इन परिस्थितियों में राज्य सभा एक सक्षम माध्यम है जिसका प्रयोग राज्य के क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य में सकारात्मक विकास लाने हेतु किया जा सकता है।

राज्य के दो प्रमुख क्षेत्रीय दल PDP (पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी) तथा J&KNC (जम्मू कश्मीर नेशनल कांफ्रेन्स) है। राज्य स्तरीय विषयों के सन्दर्भ में इन दोनो दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता निम्न है–

तालिका संख्या – 18

जम्मू कश्मीर के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राज्य स्तरीय प्रश्न	राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख	राज्य स्तरीय विधेयक	राज्य स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये विषय	ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
PDP	1	135	17	0	0	0	0
J&KNC	4	42	1	0	0	0	0

तालिका 18 के अनुसार

- J&KNC व PDP द्वारा एक भी विधेयक राज्य सभा में प्रस्तुत नहीं किया गया।
- PDP की तुलना में J&KNC की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता काफी कम है।
- J&KNC के तीन सदस्यों में से मोहम्मद शफी पूर्णत: निष्क्रिय रहे तथा फारूख अब्दुल्ला द्वारा अध्ययनकाल में मात्र 4 प्रश्न पूछे गये।

प्रश्नों के माध्यम से PDP द्वारा जो राज्य स्तरीय विषय राज्य सभा में प्रस्तुत किये गये वे इस प्रकार हैं–

- राज्य में व्याप्त बेरोजगारी तथा औद्योगीकरण विस्तार की आवश्यकता
- सीमा क्षेत्र में कृषि व विकास
- पर्यटन सम्बन्धी सुविधाओं का विस्तार
- आतंकवाद समाप्ति में सेना व सीमा सुरक्षा बल की भूमिका
- शांति बहाली के लिये विभिन्न समूहों से वार्ता
- सेना में युवाओं की भर्ती
- यातायात व संचार साधनों का विकास

- पहाड़ी समुदाय को अजा–जजा का दर्जा
- विस्थापितों को समुचित मुआवजा

स्पष्ट है कि PDP द्वारा जम्मू–कश्मीर के विकास को माध्यम बनाकर समस्याओं के समाधान का प्रयास किया गया है।

इसके विपरित J&KNC द्वारा पूछे गये प्रश्नों में गंभीरता का अभाव नजर आया। इस दल द्वारा प्रश्नों के माध्यम से जो विषय राज्य सभा के समक्ष रखे गये वे अग्रलिखित है–

- यातायात व ऊर्जा साधनों का विकास
- हैण्डीक्राफ्ट उद्योग को प्रोत्साहन
- पुलवामा में स्टील प्लांट की स्थापना
- मेडिकल कॉलेज खोला जाना
- पर्यटन विकास हेतु राज्य को सहायता

दोनो ही दलों द्वारा राज्य स्तर पर महिला एवं बाल विकास, प्राइमरी शिक्षा, जल प्रबंधन जैसे विषयों को महत्व नहीं दिया गया।

अन्य विधायी प्रक्रिया विशेष उल्लेख के अन्तर्गत जम्मू कश्मीर नेशनल कांफ्रेंस द्वारा मात्र एक विशेष उल्लेख सदन में लाया गया जो घाटी में पाई गई mass graves से सम्बन्धित था। दूसरी ओर पिपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी द्वारा क्षेत्रीय हितों से सम्बन्धित 16 विशेष उल्लेख रखे गये, जिनके प्रमुख विषय इस प्रकार है–

- घाटी में संचार व्यवस्था का विस्तार
- लैण्ड माइन के क्षेत्र में आने वाले खेतों का किसानों को पुनर्भरण
- भारी बर्फ़बारी से आहत लोगों को मुआवजा
- घाटी में नौकरियों हेतु शैक्षणिक योग्यता में छूट
- पहाड़ी बोलने वाले लोगों को विशेष दर्जा
- सियालकोट को सड़क मार्ग से जोड़ना
- जम्मू एअरपोर्ट के लिये रिहायशी जमीन का अधिग्रहण
- सीमाओं की तारबन्दी का सुदृढ़ीकरण आदि।

स्पष्ट है कि क्षेत्रीय झुकाव के साथ यह भी माना जा सकता है कि पिपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी व जम्मू कश्मीर नेशनल कांफ्रेन्स में से मात्र पिपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी द्वारा राज्य स्तरीय विषयों के सम्बन्ध में परिपक्व, व्यापक व संवेदनशील सोच का परिचय दिया गया।

महाराष्ट्र के क्षेत्रीय दल

महाराष्ट्र अरब सागर के तट पर स्थित भारत का एक महत्वपूर्ण राज्य है। महाराष्ट्र की राजधानी बम्बई को देश की आर्थिक राजधानी कहा जाता है। यहां के प्रमुख व्यवसाय पर्यटन, फिल्म उद्योग, कृषि (विशेषकर फलों की) है जिनका राज्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है।

महाराष्ट्र में तीन क्षेत्रीय दल रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया, शिवसेना, SBP सक्रिय है जिन्होंने राज्य की ओर से राज्य सभा में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई है। विधायी प्रक्रिया में उक्त दलों की सहभागिता अग्रलिखित आंकड़ों से स्पष्ट है—

तालिका संख्या – 19

महाराष्ट्र के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राज्य स्तरीय प्रश्न	राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख	राज्य स्तरीय विधेयक	राज्य स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये विषय	ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
RPI	1	57	6	0	1	0	4
SBP	1	38	6	0	0	1	2
SS	10	591	9	0	3	21	5

तालिका में दर्शाये आंकड़ों के अनुसार

- शिवसेना महाराष्ट्र का सर्वाधिक सक्रिय क्षेत्रीय दल है। तथा सहभागिता व सक्रियता के दृष्टिकोण से SBP का योगदान न्यूनतम है।
- उक्त दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता का विषयवार आकलन करने से स्पष्ट होता है कि मात्रात्मक व गुणात्मक दोनो ही दृष्टिकोण से उक्त क्षेत्रीय दलों ने राज्य विशेष से सम्बन्धित विषयों व समस्याओं को सदन में समुचित रूप से प्रस्तुत नहीं किया है।

विशेष उल्लेख हेतु उक्त दलों द्वारा उठाये गये प्रमुख विषय निम्न है–

- अण्डमान निकोबार में पर्यटन सुविधाओं का विस्तार
- भगत सिंह कोश्यारी के नाम पर डाकटिकट जारी करने का प्रस्ताव
- अनुसूचित जातियों को दिये जाने वाले आरक्षण की समीक्षा
- गोवारी समुदाय को अनुसूचित जाति का दर्जा देना
- पूना में हवाई अड्डे का विकास
- विदर्भ क्षेत्र में किसानों द्वारा आत्महत्या
- शोलापुर विश्वविद्यालय को आर्थिक सहायता
- विद्युत ऊर्जा की कमी
- छत्रपति शिवाजी की तलवार व कोहिनूर को वापस लाना

राज्य की जिन विशिष्ट समस्याओं को उक्त दलों द्वारा राज्य सभा में उठाया गया उसमे लोकल ट्रेन नेटवर्क का विस्तार, विदर्भ क्षेत्र में कुपोषण की समस्या, कोंकण जिले के विकास हेतु विशेष बोर्ड की स्थापना, sea bed mapping, मनोरंजन कर लगाने से उत्पन्न समस्याऐं, समुद्री सीमाओं की सुरक्षा, जल स्त्रोतों का उद्धार, अतिवृष्टि से फसलों को हुये नुकसान को रोकना।

इसके अतिरिक्त वे विषय जिनकों तीनों दलों द्वारा समान वरीयता दी गई वे है–

- नये रेल्वे प्रोजेक्ट
- बंदरगाहों व हवाई अड्डों का विकास
- शिरडी में हवाई अड्डे की स्थापना

साथ ही ग्रामीण विकास, कपास का समर्थन मूल्य, पर्यटन व मनरेगा सम्बन्धी विषयों को भी सदन के संज्ञान में लाया गया।

शिवसेना द्वारा सभापति की आज्ञा से निम्न विषयों को राज्य सभा में विचार हेतु उठाया गया–

- एस डी एफ चीफ हेमन्त करकरे की मृत्यु
- विदर्भ में किसानों द्वारा आत्महत्या
- नवीं मुम्बई में अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा

- महाराष्ट्र में बारिश से फसलों को नुकसान
- मुम्बई बम बलास्ट में मारे गये पुलिसकर्मियों को गैलेण्टरी अवार्ड

मुम्बई बम ब्लास्ट का विषय शिवसेना द्वारा अल्पकालीन चर्चा के माध्यम से भी सदन में लाया गया। साथ ही शिवसेना व रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया द्वारा ध्यानाकर्षण प्रस्ताव द्वारा कुपोषण से बच्चों की मौत व मुम्बई के नगरीय ढांचे में सुधार की आवश्यकता की ओर राज्य सभा का ध्यान आकर्षित किया।

आन्ध्र प्रदेश का क्षेत्रीय दल– (तेलगूदेशम पार्टी)

तेलगूदेशम आन्ध्र प्रदेश का सर्वप्रमुख क्षेत्रीय दल है, जिसने राज्य के साथ–साथ राष्ट्रीय स्तर पर भी राज्य को समुचित प्रतिनिधित्व प्रदान किया है। अध्ययनकाल में तेलगूदेशम के सांसदों का विधायी प्रक्रिया में योगदान निम्न तालिका में स्पष्ट है–

तालिका संख्या – 20

तेलगूदेशम की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राज्य स्तरीय प्रश्न	राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख	राज्य स्तरीय विधेयक	राज्य स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये विषय	ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
TDP	13	1514	74	0	0	65	0

- जैसा कि तालिका में दर्शाया गया है तेलगूदेशम द्वारा विधायी प्रक्रिया के सभी उपकरणों का समुचित प्रयोग किया गया है।
- राज्य स्तरीय विषयों को सदन के संज्ञान में लाने के साथ ही इस दल द्वारा राष्ट्रीय व सामाजिक महत्व के विषयों को अधिक महत्व दिया गया है।
- अध्ययनकाल में राज्य सभा में उपस्थित तेलगूदेशम के 13 सदस्यों में से 1 सदस्य पूर्णत: निष्क्रिय रहा है तथा 2 सदस्यों द्वारा नाममात्र की सहभागिता का प्रदर्शन किया गया इस प्रकार तेलगूदेशम पार्टी के 10 सदस्य ऐसे थे जो अध्ययनकाल में राज्य सभा में सक्रिय रहे।

अन्य क्षेत्रीय दलों के समान तेलगूदेशम पार्टी द्वारा भी प्रश्नों के माध्यम से निम्न विषयों को सदन के संज्ञान में लाया गया–

- रेल्वे, हवाई मार्ग व राष्ट्रीय राजमार्ग का रखरखाव तथा विकास
- रेलमार्गों का विद्युतीकरण
- किसानों से सम्बन्धित समस्याऐं (विशेषकर सिंचाई परियोजनाओं में विलम्ब)
- ग्रामीण विद्युतीकरण
- सर्व शिक्षा अभियान
- बेरोजगारी

आन्ध्र प्रदेश से सम्बन्धित जिन विशेष विषयों को तेलगूदेशम पार्टी के सांसदों द्वारा राज्य सभा के समक्ष लाया गया उनमें से प्रमुख विषय निम्न है–

- बुनकरों से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान
- सिल्क का निर्यात
- समुद्र के पानी को पीने योग्य बनाना
- तेलगू भाषा की अस्मिता से सम्बन्धित प्रश्न
- आदिवासियों (विशेषकर महिलाओं) के हितों का संरक्षण
- पीने के पानी की समस्या को दूर करना
- यूरेनियम का खनन
- कृष्णा व गोदावरी के बेसिन में तेल व गैस की खोज
- सुनामी से बचाव के प्रयास

तेलगूदेशम पार्टी द्वारा नक्सलवाद की समस्या से निबटने के लिये आधारभूत ढांचे के निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया गया। साथ ही इस दल द्वारा हैदराबाद में स्काई बस संचालित किये जाने का दिलचस्प प्रस्ताव भी सदन के समक्ष लाया गया। तेलगूदेशम पार्टी द्वारा प्रश्नों के माध्यम से हैदराबाद को मेगा सिटी व फेब सिटी के रूप में विकसित करने में भी रूचि दर्शाई गई।

परन्तु कुछ विषय ऐसे भी थे जिनका सदन में उठाया जाना अपेक्षित था परन्तु उस दिशा में तेलगूदेशम द्वारा विशेष प्रयास नहीं किये गये वे हैं–

- पर्यटन सम्बन्धी सुविधाओं का विकास
- ऊर्जा स्त्रोतों की उपलब्धता बढ़ाना
- प्रारम्भिक शिक्षा व कौशल विकास कार्यक्रम
- महिला व बाल विकास
- खाद्य सुरक्षा

विशेष उल्लेख के माध्यम से उक्त दल द्वारा आन्ध्र प्रदेश से सम्बन्धित बेहद महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया जो कि इस प्रकार हैं–

- तेलगू भाषा को क्लासिकल भाषा का दर्जा देना
- हैदराबाद में सुप्रीम कोर्ट की बेंच की स्थापना, हाई कोर्ट में जजों की संख्या बढ़ाना
- काम के बदले अनाज योजना
- किसानों की आत्महत्या की समस्या
- राष्ट्रीय राजमार्गों का रखरखाव व विस्तार

इसी प्रकार सभापति की विशेष अनुमति से तेलगूदेशम के सांसदों ने किसानों व बुनकरों की समस्याऐं, मीडिया पर नियन्त्रण, कृष्णा नदी के सम्बन्ध में कर्नाटक से विवाद जैसे विषय सदन में उठाये

आन्ध्र प्रदेश में स्वाईन फ्लू के फैलाव के सम्बन्ध में एक ध्यानाकर्षण प्रस्ताव राज्य सभा में विचारार्थ प्रस्तुत किया।

उड़ीसा का क्षेत्रीय दल: बी. जे. डी.

तालिका संख्या – 21

बीजू जनता दल की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राज्य स्तरीय प्रश्न	राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख	राज्य स्तरीय विधेयक	राज्य स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये विषय	ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
BJD	12	1203	16	0	0	9	0

उड़ीसा भारत के पिछड़े और गरीब राज्यों की श्रेणी में आता है इसके अनुरूप ही बीजेडी द्वारा अनेक ऐसे विषय प्रश्नों के माध्यम से राज्य सभा के संज्ञान में लाये गये जो राज्य के (विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों के) विकास हेतु अपरिहार्य है–

- ग्रामीण विकास व विद्युतीकरण
- गरीबी हटाने के लिये विश्व बैंक की मदद
- पिछड़े जिलों के विकास हेतु विशेष योजनायें
- गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को मुफ्त अनाज
- ग्रामीण व्यापार केन्द्रों की स्थापना
- गांवों में फोन नेटवर्क
- फसल बीमा व ऋण माफी योजना

संचार व यातायात सुविधाओं के विकास के सम्बन्ध में बीजू जनता दल द्वारा विशेष प्रयास किये गये

- उड़ीसा में नवीन रेल परियोजना
- कटक पारादीप रेल लाइन का विद्युतीकरण
- सम्बलपुर रेल डिवीजन को अलग करना
- भुवनेश्वर एअरपोर्ट का विकास
- रेल बजट में उड़ीसा को विशेष आवंटन
- संचार सुविधाओं का विकास

प्रश्नों के माध्यम से अन्य विषय जिनको बीजू जनता दल द्वारा प्रमुखता से उठाया गया–

- स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार हेतु आवश्यक ढांचागत सुधार
- विश्वस्तरीय विश्वविद्यालय, पॉलीटेक्निक आदि की स्थापना
- पर्यटन हेतु विशेष सर्किट का विकास
- सीवेज व स्वच्छता सम्बन्धी योजनायें
- पीने योग्य पानी की व्यवस्था
- जगन्नाथ मंदिर का रखरखाव, सुरक्षा व अन्य ऐतिहासिक धरोहरों का संरक्षण
- पवन ऊर्जा कार्यक्रम

- खाद्य प्रसंस्करण इकाई की स्थापना
- हैण्डलूम बुनकरों की समस्याऐं
- कृष्णा–गोदावरी नदी को जोड़ना
- केन्द्रीय विद्यालयों की स्थापना
- आर्थिक विकास हेतु उड़ीसा में निवेश को प्रोत्साहन
- रसोई गैस की कमी
- बीड़ी बनाने वालों के लिये कल्याण योजनायें
- उड़ीसा पुलिस की ट्रेनिंग, आधुनिकीकरण
- जूट उत्पादन व मछली उत्पादन
- नक्सलवाद से निबटने के लिये आधुनिक तकनीक
- भुवनेश्वर को धरोहर राष्ट्र घोषित करना
- चैत्य गणित का पुनरूद्धार

सभापति की विशेष अनुमति से बीजू जनता दल के सांसदों ने उड़ीसा से आने व जाने वाली ट्रेनों से उड़िया भाषा के संकेतक हटाये जाने पर चिन्ता व्यक्त की। साथ ही पूर्व मुख्यमंत्री की मूर्ति से छेड़छाड़ तथा भुवनेश्वर में राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान की स्थापना में अनिश्चितता पर रोष व्यक्त किया। विशेष उल्लेख हेतु लगभग उसी प्रकार के विषयों का चयन किया गया जिनसे सम्बन्धित प्रश्न सदन में पूछे गये थे।

- मछली पालन व पशुपालन में शोध कार्य
- बुनकरों से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान
- काम के बदले अनाज योजना
- फसल बीमा योजना
- सम्बलपुर में हाई कोर्ट बेन्च की स्थापना
- उड़ीसा को विशेष राज्य का दर्जा व विशेष आर्थिक सहायता की मांग
- नक्सलवाद पर नियन्त्रण
- राउरकेला स्टील प्लांट द्वारा भूमि अधिग्रहण के कारण विस्थापित परिवारों को रोजगार

पंजाब व हरियाणा के क्षेत्रीय दल

तालिका संख्या – 22

पंजाब व हरियााणा के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राज्य स्तरीय प्रश्न	राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख	राज्य स्तरीय विधेयक	राज्य स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये विषय	ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
INLD	7	61	8	0	0	2	0
SAD	8	650	7	0	0	6	0
HVP	1	0	0	0	0	0	0

उक्त राज्य मूलत: कृषि प्रधान है तथा इनकी अर्थव्यवस्था कृषि व कृषि आधारित उद्योगों पर केन्द्रित है। यही कारण है कि राष्ट्रीय लोक दल व शिरोमणि अकाली दल द्वारा पूछे गये प्रश्नों का केन्द्र किसान ही रहे हैं।

- कपास व आलू के दामों में कमी
- गेंहू के आयात व समर्थन मूल्य पर रोष
- किसानों पर ऋण का बोझ
- खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों की स्थापना
- 2006–07 में अनाज की कमी
- ग्रामीण सिंचाई ट्यूबवेल हेतु बिजली की मांग
- रबी की फसल का न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करना
- कृषि क्षेत्र को उद्योग का दर्जा देना (अन्नाद्रमुक द्वारा भी इसी प्रकार कृषि क्षेत्र को ज्ञान आधारित उद्योग का दर्जा देने की मांग)
- किसानों हेतु योजनायें
- कृषि क्षेत्र की विकास दर
- कृषि क्षेत्र में भारत का विश्व में स्थान

उक्त के अतिरिक्त मूलत: पंजाब में शिरोमणि अकाली दल द्वारा अप्रवासी भारतीयों द्वारा शादी के बाद पत्नियों को छोड़ देने तथा पंजाब में नशे की लत के प्रसार की समस्या को प्रश्नों के माध्यम से सदन के संज्ञान में लाया गया

अन्य विषय जिन पर राष्ट्रीय लोक दल व शिरोमणि अकाली दल द्वारा राज्य सभा में प्रश्न पूछे गये वे इस प्रकार है–

- नक्सल व माओवादी गतिविधियों पर रोक
- राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय राजमार्गों का विकास
- गरीबी रेखा से नीचे रह रहे लोगों हेतु आवास
- मिड डे मील, नरेगा योजना का क्रियान्वयन
- अमृतसर से लाहौर के बीच बस योजना
- कन्या भ्रूण हत्या की समस्या
- भगत सिंह के नाम पर मेमोरियल
- पंजाब व सिंध बैंक का विस्तार
- भूगर्भ जल स्तर में कमी

इसी प्रकार राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख के अन्तर्गत भी लगभग इसी प्रकार के विषयों को प्रमुखता दी गई उदाहरण स्वरूप–

- गन्ना किसानों का उत्पीड़न
- भूगर्भ जल स्तर में कमी
- रेल्वे लाइनों का विद्युतीकरण

इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि राष्ट्रीय लोक दल द्वारा प्रस्तुत आठों विशेष उल्लेख, एक ही सदस्य (हरेन्द्र सिंह) द्वारा प्रस्तुत किये गये।

ध्यानाकर्षण प्रस्ताव व प्रश्नों के माध्यम से 1984 के दंगों के पीडितों को राहत व न्याय दिलवाने का प्रस्ताव शिरोमणि अकाली दल द्वारा राज्य सभा में रखा गया।

तमिलनाडु के क्षेत्रीय दल (द्रमुक व अन्नाद्रमुक)

तालिका संख्या – 23

तमिलनाडु के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राज्य स्तरीय प्रश्न	राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख	राज्य स्तरीय विधेयक	राज्य स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये विषय	ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
DMK	16	152	8	1	0	16	0
AIADMK	18	1006	98	2	0	41	0

तमिलनाडु भारत का तटीय राज्य है। यंहाँ की राज्य राजनीति में प्रारम्भ से ही क्षेत्रीय दल अतिसक्रिय रहे हैं। तमिलनाडु की प्रमुख समस्या सुनामी व उसके प्रभाव, मछुआरों के प्रति श्रीलंका का रवैया व कावेरी जल विवाद हैं। राज्य के दोनों प्रमुख दलों द्वारा राज्य सभा में पूछे गये प्रश्नों पर इन समस्याओं की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इस सम्बन्ध में दोनो दलों द्वारा प्रश्नों के विषयों का चयन लगभग समान है। उदाहरणार्थ

- सुनामी की चेतावनी के लिये वार्निंग सिस्टम
- सुनामी पीड़ितों के लिये घर
- साइक्लोन आपदा प्रबंधन
- साइक्लोन से कृषि की हानि
- सुनामी के कारण जलवायु परिवर्तन
- श्रीलंका द्वारा मछुआरों को पकड़ना
- नदियों को जोड़ने की परियोजना में आम सहमति के लिये स्पेशल सेल की स्थापना
- अन्तर्राज्यीय जल विवाद के समाधान के प्रयास
- समुद्रतटीय पुलिस स्टेशन की स्थापना

दोनों ही दलों द्वारा तमिलनाडु के तीन प्रमुख शहर नावेली, चेन्नई व मदुरई के विकास हेतु विशेष प्रयास किये गये मदुरई के मंदिर के कारण पर्यटन केन्द्र के रूप में इसका विशेष महत्व है। इसको आधार बनाकर अन्ना द्रमुक द्वारा पर्यटन सक्रिट के विकास हेतु विशेष प्रयास भी किये गये।

नावेली के लिग्नाइट भण्डार का समुचित उपयोग व संरक्षण तथा चेन्नई में हाई कोर्ट व सुप्रीम कोर्ट बेन्च की स्थापना, चेन्नई रेल्वे स्टेशन को विश्वस्तरीय बनाना, चेन्नई को देश के अन्य प्रमुख शहरों से जोड़ना आदि। अन्नाद्रमुक के वरीयता प्राप्त विषय है, वहीं द्रमुक ने चेन्नई मदुरई ट्रैक विद्युतीकरण की बात की है। ग्रामीण विकास को भी अन्नाद्रमुक ने अपने प्रश्नों में प्रमुखता से स्थान दिया है। जैसे–

- ग्रामीण विकास योजनाओं का क्रियान्वयन
- ग्रामीण पर्यटन
- ग्रामीण विद्युतीकरण
- बैंकों की स्थापना
- ग्रामीण क्षेत्रों में पीने योग्य पानी की सप्लाई
- ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता का स्तर

द्रमुक द्वारा ग्रामीण विकास हेतु विशेष प्रश्न राज्य सभा में नहीं पूछे गये, तथापि द्रमुक द्वारा ग्रामीण पर्यटन के विकास में अवश्य रूचि दिखाई गई।

तमिलनाडु को विकास के मार्ग पर अग्रसारित करने हेतु अन्नाद्रमुक द्वारा नवाचार सम्बन्धी विषयों को अपनी सूची में स्थान दिया–

- संचार क्षेत्र में विदेशी निवेश
- जल, थर्मल, न्यूक्लियर, गैस आधारित पावर प्रोजेक्ट हेतु प्रस्ताव
- नवीन उद्योग की स्थापना
- पवन ऊर्जा की क्षमता का आकलन
- पाईप से पेट्रोलियम गैस की सप्लाई
- हैण्डलूम को पावर लूम में परिवर्तित करना
- भारतीय हैण्डलूम तकनीकी संस्थान की स्थापना
- खाद्य प्रसंस्करण इकाई की स्थापना

दोनो क्षेत्रीय दलों द्वारा तमिल भाषा व संस्कृति के विकास व प्रचार तथा प्रसार की आवश्यकता पर बल दिया गया साथ ही अन्नाद्रमुक द्वारा माइलस्टोन पर तमिल भाषा के प्रयोग का भी प्रस्ताव रखा गया।

उक्त के अतिरिक्त जिन विषयों पर प्रश्न पूछे गये वे निम्न हैं–

- सिंगापुर व मलेशिया में तमिल जानने वाले हाई कमिश्नर की नियुक्ति
- नारियल, इलायची का उत्पादन
- नारियल व काजू का निर्यात
- तटीय क्षेत्रों में रहने वालों को पहचान पत्र
- रामसेतु की सुरक्षा हेतु अभियान
- राज्य में पुरातात्विक महत्व के स्थानों का संरक्षण
- जलमार्गों, हवाई अड्डों का विकास
- पासपोर्ट ऑफिस की आवश्यकता

उत्तर प्रदेश व बिहार के क्षेत्रीय दल

उत्तर प्रदेश व बिहार राज्य से सर्वाधिक क्षेत्रीय दल सक्रिय हैं तथा राज्य सभा में अपने राज्य का प्रतिनिधित्व कर रहे है।

उत्तर प्रदेश के राजनीतिक दल

तालिका संख्या – 24

उत्तर प्रदेश के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राज्य स्तरीय प्रश्न	राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख	राज्य स्तरीय विधेयक	राज्य स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये विषय	ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
SP	28	1013	28	0	0	94	4
BSP	28	170	14	0	0	18	0
RLD	1	35	0	0	0	0	0

विधायी प्रक्रिया में उक्त दलों की सहभागिता के विषयवार अध्ययन से निम्न तथ्य स्पष्ट हैं–

- यद्यपि समाजवादी पार्टी तथा बहुजन समाज पार्टी की सदस्य संख्या अध्ययन काल में समान थी परन्तु सहभागिता व सक्रियता के दृष्टिकोण से बहुजन समाज पार्टी के सांसदों का प्रदर्शन निराशाजनक रहा। राष्ट्रीय लोक दल के एक भी सदस्य द्वारा राज्य सभा की विधायी प्रक्रिया में कोई विशेष योगदान नहीं दिया।
- बहुजन समाज पार्टी द्वारा सीमित सक्रियता के अन्तर्गत प्रश्न–उत्तर के अतिरिक्त अन्य विधायी प्रक्रियाओं जैसे ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, विशेष अनुमति से उठाये गये विषय आदि का भी समुचित प्रयोग किया गया।
- उत्तर प्रदेश से सम्बन्धित वे विषय जिन्हें बहुजन समाज पार्टी व समाजवादी पार्टी दोनो के द्वारा प्रश्नों के माध्यम से राज्य सभा में उठाया गया वे निम्न है–
- गंगा एक्शन प्लान व गंगा यमुना की सफाई–बहुजन समाज पार्टी द्वारा गंगा सफाई का प्रस्ताव लाया गया वहीं समाजवादी दल द्वारा गंगा में शवों को बहाने पर रोक लगाने की मांग की।
- पश्चिमी उत्तरप्रदेश में दिमागी बुखार की समस्या (यह विषय राष्ट्रीय लोक दल द्वारा भी उठाया गया)
- पुलिस के आधुनिकीकरण की आवश्यकता
- किसानों हेतु खाद की अनुपलब्धता की समस्या
- पंचायती राज का सुदृढ़ीकरण
- बुन्देलखण्ड क्षेत्र की समस्याओं को दोनो ही दलों द्वारा प्रमुखता से उठाया गया, जैसे– बुन्देलखण्ड में जल स्तर नीचे जाना, बुन्देलखण्ड में एम्स जैसी संस्थाओं को खोलना।
- समाजवादी पार्टी द्वारा राज्य स्तरीय विषयों के सम्बन्ध में अधिक परिपक्वता का परिचय देते हुये निम्न विषयों को महत्व दिया गया–
- शिक्षा से सम्बन्धित विषय जैसे– केन्द्रीय विद्यालयों की स्थापना, महिला साक्षरता की स्थिति, छात्र अध्यापक अनुपात, अध्यापकों व व्याख्याताओं की कमी, अल्पसंख्यकों (SC/ST/OBC, मुस्लिमों की शिक्षा हेतु योजनायें), विद्यालयों को अनुदान, जिला विज्ञान केन्द्रों की स्थापना

- चावल व गन्ना किसानों की ओर समाजवादी पार्टी ने विशेष ध्यान दिया तथा किसान सेवा केन्द्र की स्थापना का प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया।
- नरेगा के अन्तर्गत किसानों को अपने खेत में काम करने का अवसर देना समाजवादी दल की एक विशेष पहल है।
- गांवों के किसानों के लिये समाजवादी पार्टी द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थय सुविधायें, जाति पंचायत, ग्रामीण औद्योगिक इकाईयों की स्थापना सम्बन्धी प्रश्न भी पूछे गये।
- पर्यटन के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश में अनेक सम्भावनायें है परन्तु समाजवादी पार्टी द्वारा इस सम्बन्ध में सीमित दृष्टिकोण का प्रदर्शन किया गया तथा पर्यावरण आधारित पर्यटन के अनुरूप पर्यटन सक्रिट के विकास की आवश्यकता पर बल दिया साथ ही ताजमहल व अन्य ऐतिहासिक स्मारकों की देखरेख को भी महत्वपूर्ण माना।
- बिजली की समस्या के समाधान हेतु वैकल्पिक ऊर्जा स्त्रोतों की स्थापना, सोलर सेल के प्रयोग, ग्रामीण विद्युतीकरण जैसे विषयों पर समाजवादी पार्टी व बहुजन समाज पार्टी दोनो के द्वारा प्रश्न पूछे गये।
- नई ट्रेनों का परिचालन, रेल्वे स्टेशनों का आधुनिकीकरण, ट्रेन दुर्घटनायें व रेल में मिलने वाले खाने की गुणवत्ता के सम्बन्ध में दोनो ही दलों ने प्रश्न पूछे।
- समाजवादी पार्टी द्वारा हिन्दी को रोजगार आधारित भाषा के रूप में विकसित करने की आवश्यकता पर प्रश्नों के माध्यम से बल दिया।
- अल्पसंख्यकों के अधिकारों, शिक्षा, रोजगार आदि के विषय में समाजवादी पार्टी द्वारा विशेष संज्ञान लिया गया।

सभापति की विशेष अनुमति से निम्न विषय समाजवादी पार्टी द्वारा सदन के संज्ञान में लाये गये—

- उत्तर प्रदेश को गेंहू के आवंटन में भ्रष्टाचार
- थोक में FDI लागू करने से पूर्व वार्ता की आवश्यकता
- राज्य में बिजली की दशा सुधारने में किसानों का असहयोग

वहीं बहुजन समाज पार्टी द्वारा अल्पसंख्यक महिलाओं के शोषण को रेखांकित करने का प्रयास किया गया। उत्तर प्रदेश एक विशाल राज्य है, जो विविधता युक्त भी है। राज्य में अनेक समस्याऐं है, जिनका समाधान अपरिहार्य है परन्तु इसके लिये उक्त दोनो दलों द्वारा जिस स्तर के प्रयासों की आवश्यकता है, वे दुर्भाग्यवश नहीं किये गये।

बिहार के क्षेत्रीय दल

उत्तर प्रदेश के समान बिहार में भी चार क्षेत्रीय दल सक्रिय रहे है, जिनकी विधायी प्रक्रिया में सक्रियता निम्न है–

तालिका संख्या – 25

बिहार के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राज्य स्तरीय प्रश्न	राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख	राज्य स्तरीय विधेयक	राज्य स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये विषय	ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
RJD	16	471	27	0	1	42	1
SAMATA	2	38	0	0	0	0	0
LJP	2	127	1	0	0	3	0
JD(U)	12	78	9	0	0	20	0

उक्त दलों में से राष्ट्रीय जनता दल सर्वाधिक सक्रिय दल रहा। विशेष बात यह भी है कि चारों ही दलों द्वारा राज्य सभा के समक्ष प्रस्तुत विषयों में कोई अन्तर नहीं है। मात्र संख्या के आधार पर माना जा सकता है कि राष्ट्रीय जनता दल द्वारा कार्यकरण में सर्वाधिक योगदान दिया गया।

वे विषय जिन पर बिहार के क्षेत्रीय दलों द्वारा सर्वाधिक प्रश्न पूछे गये वे इस प्रकार है–

- बिहार (विशेषकर उत्तर बिहार) में बाढ़ की समस्या
- ग्रामीण विकास व ग्रामीण विद्युतीकरण
- दलित व पिछड़ा वर्ग की शिक्षा
- राष्ट्रीय राजमार्गो का विकास तथा रख रखाव
- प्रमुख हवाई अड्डों का विकास
- विद्युत ऊर्जा उत्पादन की क्षमता
- राज्यों को विकास दर

- बिहार को विकास कार्यों हेतु अनुदान
- खदानों में सुरक्षा
- कोयले का उत्पादन

उक्त के अतिरिक्त राष्ट्रीय जनता दल द्वारा निम्न विषयों पर बल दिया गया–

- बिहार में केन्द्रीय विद्यालयों की स्थापना
- गौड़ जाति को अनुसूचित जनजाति का दर्जा दिया जाना
- पटना में एम्स व आई. आई. टी. की स्थापना
- चाय का उत्पादन सुगम बनाया जाना
- नक्सलवाद की समस्या
- सिंचाई सुविधाओं का विकास
- बिहार में मेडिकल सुविधायें
- संचार सुविधाओं का विकास
- बिहार में पंचायती राज का सुदृढ़ीकरण
- कुटीर उद्योगों, मछली पालन को बढ़ावा
- पर्यटन सम्बन्धी सुविधाओं का विकास तथा इस सम्बन्ध में प्रशिक्षण हेतु संस्थाओं की स्थापना
- CNG व LPG वितरण में भ्रष्टाचार
- किसानों को ऋण

सभापति की विशेष अनुमति से निम्न विषय भी सदन के सम्मुख प्रस्तुत–

- बिहार में अकाल व बाढ़ की समस्या
- भागलपुर पुलिस की बर्बरता
- असम में आतंकवादियों द्वारा बिहारियों को मारा जाना

उत्तर प्रदेश व बिहार के क्षेत्रीय दलों द्वारा विशेष उल्लेख के माध्यम से जिन विषयों को सदन के संज्ञान में लाया गया–

उत्तर प्रदेश व बिहार के दलों के राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख–

- मऊ के बुनकरों हेतु विशेष पैकेज
- लोकनायक जयप्रकाश नारायण पर आधारित वृतचित्र का दूरदर्शन पर प्रसारण
- बोध गया मन्दिर का रखरखाव

- केमिकल फैक्ट्री से रिसाव
- उत्तर बिहार में किसानों की समस्यायें
- उत्तर प्रदेश की नदियों का प्रदूषण व जल स्तर में कमी
- उत्तर प्रदेश में सौर ऊर्जा की कमी
- बिहार में अकाल की स्थिति
- लिब्राहन आयोग की रिपोर्ट
- बी.एस.एन.एल. मोबाईल सेवा की स्थिति
- रेलवे से सम्बन्धित विषय
- श्री कृष्ण आयोग की रिपोर्ट को लागू किया जाना
- बिहार में राशन वितरण से सम्बन्धित विषय
- उत्तर प्रदेश की चीनी मिलों को विशेष पैकेज व बकाया भुगतान
- नौशाद अली की स्मृति में डाक टिकट
- दादरी पावर प्लान्ट को गैस सप्लाई
- भोजपुरी भाषा को 8^{th} sch. में शामिल करना
- मालेगांव बम धमाकों की जांच

पश्चिम बंगाल के क्षेत्रीय दल

पश्चिम बंगाल के दोनो क्षेत्रीय दलों ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस, ऑल इण्डिया फारवर्ड ब्लॉक की राज्य सभा के कार्यकरण में सीमित सहभागिता रही

तालिका संख्या – 26

पश्चिम बंगाल के क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राज्य स्तरीय प्रश्न	राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख	राज्य स्तरीय विधेयक	राज्य स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये विषय	ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
AITC	4	0	2	0	0	3	0
AIFB	4	3	5	0	1	2	0

* ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस द्वारा निम्न विषयों को सदन के संज्ञान में लाया गया–

- कोलकाता में एम्स जैसी संस्थाओं की स्थापना
- नरेगा हेतु पश्चिम बंगाल को दिया गया फण्ड
- नेताजी से जुड़े दस्तावेज जनता के सामने लाना
- किसानों द्वारा आत्महत्या

* ऑल इण्डिया फारवर्ड ब्लॉक (जो कि लोक सभा में सबसे मुखर क्षेत्रीय दल माना जाता है), द्वारा निम्न प्रश्न राज्य सभा के समक्ष प्रस्तुत किये गये–

- बूचड़खाने के कारण होने वाला प्रदूषण
- किसानों को कम ब्याज दर पर ऋण दिया जाना
- उत्तर पूर्वी क्षेत्र का विकास
- गंगा और उसकी धाराओं में क्षरण
- पश्चिम बंगाल में अवैध शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
- रेल्वे बजट में घोषित प्रोजेक्ट की स्थिति
- ग्रामीण विद्युतीकरण
- ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस द्वारा दो राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख दिनेश त्रिवेदी द्वारा प्रस्तुत किये गये जिनके विषय है–
  - बंगाल के आसनसोल में भूख से मौत
  - नेता जी की मृत्यु से सम्बन्धित जानकारियां सार्वजनिक की जायें
- नेता जी सुभाष चन्द्र बोस के विषय को ऑल इण्डिया फारवर्ड ब्लॉक द्वारा भी विशेष उल्लेख में स्थान दिया गया। साथ ही पश्चिम बंगाल में बाढ़ पीड़ितों के लिये विशेष पैकेज की मांग भी की।
- नन्दीग्राम विशेष आर्थिक क्षेत्र (SEZ) की स्थापना व इसके कारण उत्पन्न हिंसा के वातावरण को समाप्त करने हेतु दिनेश त्रिवेदी द्वारा इस विषय में अल्पकालीन चर्चा का प्रस्ताव लाया गया।

- ऑल इण्डिया फॉरवर्ड ब्लॉक द्वारा ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के माध्यम से श्री सुभाष चन्द्र बोस की मृत्यु के सम्बन्ध में गठित जस्टिस मुखर्जी कमेटी की सिफारिशों के क्रियान्वयन की मांग की गई।

पूर्वोक्त क्षेत्रीय दलों के अतिरिक्त कुछ क्षेत्रीय दल ऐसे भी है, जिन्होंने अध्ययन काल में राज्य सभा में सम्बद्ध राज्य का प्रतिनिधित्व तो किया, परन्तु विधायी प्रक्रिया में उनका कोई विशेष योगदान देखने में नहीं आया।

अन्य क्षेत्रीय दल

तालिका संख्या – 27

अन्य क्षेत्रीय दलों की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राज्य स्तरीय प्रश्न	राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख	राज्य स्तरीय विधेयक	राज्य स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये विषय	ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
JMM	4	0	0	0	0	0	0
ML	2	61	2	0	2	0	1
JD(S)	2	126	0	0	0	0	0
RSP	4	154	8	0	2	6	0
PMK	1	0	0	0	0	0	0
ABLC	1	9	0	0	0	0	1

उक्त दलों में से एक मात्र कर्नाटक में सक्रिय जनता दल (सेक्यूलर) केरल के रिवोल्यूशनरी समाजवादी पार्टी (RSP) द्वारा कुछ सीमा तक सहभागिता का प्रदर्शन किया गया। प्रश्नों के माध्यम से जनता दल (सेक्यूलर) द्वारा कर्नाटक से सम्बन्धित निम्न विषयों को मुखर किया गया–

- हथकरघा वस्त्रों का निर्यात
- विद्युत ऊर्जा की सप्लाई

- सिल्क के उत्पादन में गिरावट
- सुनामी के दुष्प्रभाव
- केन्द्रीय विद्यालयों की स्थापना
- राष्ट्रीय राजमार्गों का रखरखाव
- कॉफी के दामों में कमी
- पर्यटन सम्बन्धी सुविधाओं का विकास
- बैंगलोर में मेट्रो सुविधाओं का विस्तार
- जनता दल (सेक्यूलर) द्वारा एक भी राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख अध्ययन काल में राज्य सभा में प्रस्तुत नहीं किया गया।

इसी प्रकार मुस्लिम लीग द्वारा भी राज्य से सम्बद्ध सीमित प्रश्न पूछे गये जिनका राज्य की विशिष्ट समस्याओं से सम्बन्ध नहीं उदाहरणत:

- केन्द्रीय विद्यालयों की स्थापना
- ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार
- अकाल व बाढ़ से प्रभावित क्षेत्रों हेतु विशेष सहायता
- राज्य में बॉक्साइट के भण्डारों का समुचित उपयोग
- पर्यटन सम्बन्धी संसाधनों का विकास
- मेडिकल टूरिज्म की सम्भावनायें
- रेल्वे कोच फैक्ट्री का निर्माण
- त्रिवेन्द्रम में हाइकोर्ट बेन्च की स्थापना
- दवाईयों के मुल्य नियन्त्रण हेतु प्रयास की आवश्यकता
- झारखण्ड मुक्ति मोर्चा के सभी सदस्य अध्ययन काल में राज्य सभा में पूरी तरह निष्क्रिय रहे

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत क्षेत्रीय दलों के कार्यकरण का अध्ययन राज्य स्तरीय हितों के प्रति उनके दृष्टिकोण के अनुरूप किया गया, जिसके आधार पर निम्न तथ्य स्पष्ट होते है।

- कठिन भौगोलिक परिस्थितियों वाले राज्य (पूर्वोत्तर राज्य) व विशिष्ट राजनीतिक परिस्थितियों वाले राज्य (जम्मू कश्मीर) जैसे राज्यों के क्षेत्रीय दल राज्य के विकास, अर्थव्यवस्था, विरासत संरक्षण को लेकर अति संवेदनशील हैं। विधायी प्रक्रियाओं के माध्यम से उनका पूरा प्रयास राज्य में उपलब्ध संसाधनों के अधिकतम प्रयोग का रहा। पूर्वोत्तर

राज्यों के क्षेत्रीय दलों ने पर्यटन सम्बन्धी ढांचागत सुधारों की बात की साथ ही चाय के उत्पादन से बेहतर आय, सरल संचार व आवागमन, सिक्किम की विशेष जनजाति के संरक्षण पर बल दिया। जम्मू कश्मीर के पिपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी द्वारा आम जन को सामान्य धारा में (शिक्षा व नौकरी के द्वारा) लाने पर बल दिया गया। भ्रष्टाचार, महिला व बाल विकास, सामाजिक समस्याऐं आदि विषयों पर इन दलों द्वारा विशेष जोर नहीं दिया गया।

- जिन राज्यों में एक से अधिक क्षेत्रीय दल सक्रिय है वहाँ मूल रूप से एक ही क्षेत्रीय दल अधिक प्रभावी है जैसे कि– जम्मू कश्मीर में पिपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी, उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी, तमिलनाडु में अन्नाद्रमुक आदि।
- उत्तर प्रदेश व बिहार के क्षेत्रीय दल एक क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं है। सम्भवतः दोनो राज्यों की लगभग समान प्रकार की समस्याओं के चलते दोनो राज्यों के क्षेत्रीय दल भी विषय साझा करते है।
- उत्तर प्रदेश व बिहार के क्षेत्रीय दलों की विचारधारा भी समकक्ष सी प्रतीत होती है। इनके द्वारा राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय राजमार्गों, किसानों की समस्याओं, सामाजिक पारिस्थितिकी पर तो ध्यान दिया गया, परन्तु इनके कार्यकरण में तार्किक व वैज्ञानिक सोच का अभाव दिखा। साथ ही राज्य के विकास हेतु कोई स्पष्ट रोडमैप भी ये दल प्रस्तुत नहीं कर सके।
- पंजाब व हरियाणा दोनो राज्यों की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है तथा इसका प्रभाव दोनों राज्यों के क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य सभा में उठाये गये विषयों में स्पष्ट देखने को मिलता है। शिरोमणि अकाली दल द्वारा राज्यों की स्वायत्तता को भी महत्व दिया गया जो कि प्रारम्भ से ही उक्त दल की विचारधारा का एक महत्वपूर्ण भाग है।
- शिवसेना, अन्नाद्रमुक, द्रमुक, तेलगूदेशम व्यापक विकासवादी सोच के क्षेत्रीय दल है। इन दलों में से यद्यपि शिवसेना का झुकाव राज्य स्तरीय हितों की ओर शेष दलों की तुलना में कम है तथापि विदर्भ के किसानों की समस्या, पर्यटन, ढांचागत विकास, हॉर्टीकल्चर जैसे विषयों के माध्यम से शिवसेना ने राज्य स्तरीय हितों को मुखर किया है। द्रमुक व अन्नाद्रमुक द्वारा भाषा व जल विवाद का विषय सुदृढ़ता के साथ राज्य सभा में लाया गया। शिरोमणि अकाली दल के समान अन्नाद्रमुक भी राज्य स्वायत्तता की हिमायती है तथा इस सम्बन्ध में ईमानदार प्रयास इस दल द्वारा राज्य सभा में किये गये।
- बीजू जनता दल उड़ीसा राज्य का प्रमुख क्षेत्रीय दल है। चूंकि उड़ीसा एक गरीब राज्य है अतः बीजू जनता दल का पूरा ध्यान इस बिन्दु पर रहा है कि केन्द्र सरकार व वर्ल्ड बैंक

से राज्य को अधिकतम आर्थिक सहायता प्राप्त हो सके। साथ ही ढांचागत सुधारों के विषय में उक्त दल की सोच उर्ध्वाधर न होकर क्षैतिज विस्तार की पक्षधर है। उदाहरण के लिये शिक्षा के क्षेत्र में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, गरीब व वंचित परिवारों के बच्चों का विद्यालयों में प्रवेश, सरकारी स्कूलों की दशा में सुधार, बालिका शिक्षा जैसे विषयों को बीजू जनता दल द्वारा उच्च शिक्षा की तुलना में अधिक महत्व दिया गया।

- झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, मुस्लिम लीग, हरियाणा विकास पार्टी, रिवोल्यूशनरी समाजवादी दल, PMK आदि क्षेत्रीय दल वे है जिनके द्वारा राज्य स्तरीय हितों को राज्य सभा में प्रस्तुत करने के सम्बन्ध में कोई योगदान नहीं दिया गया।

प्रस्तुत अध्ययन का एक अन्य आयाम भारतीय संघात्मक व्यवस्था भी है। तत्कालीन परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुरूप भारतीय संविधान एकात्मक संघवाद के प्रावधान करता है तथा केन्द्र–राज्य सम्बन्धों की व्याख्या में अधिकतम स्थानों पर केन्द्र को ही वरीयता दी गई है। परन्तु राज्यों में क्षेत्रीय दलों की उपस्थिति व सक्रियता ने इस स्थिति में परिवर्तन ला दिया है तथा कुछ सीमा तक केन्द्र राज्य सम्बन्धों को पुनर्परिभाषित करने का काम भी किया है। राज्य सभा में इन दलों की उपस्थिति, विधायी प्रक्रियाओं में सहभागिता, राज्य स्तरीय हितों को संघीय सदन में स्वर प्रदान करना वास्तव में संघवाद को पोषित करने के समकक्ष है।

उक्त तथ्यों को आमण्ड पावेल के संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम के आधार पर सरलता से विश्लेषित किया जा सकता है। आमण्ड के अनुसार प्रत्येक व्यवस्था में अन्तर्निहित संरचनाओं के कुछ आवंटित कार्य होते हैं, जो कि संरचना को स्थिर रहने तथा विकसित होने में सहयोग देते हैं। ऐसे कार्यों को प्रकार्यों की श्रेणी में रखा जाता है। मर्टन के अनुसार प्रकार्य प्रेक्षित परिणाम है, जो किसी व्यवस्था के अनुकूलन या पुन: समायोजन की व्याख्या करते हैं।[1]

संघीय सदन के रूप में राज्य सभा का एक कार्य संघीय हितों को स्वर प्रदान करना भी है। अत: मूल रूप से क्षेत्रीय दलों के कार्यकरण को प्रकार्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है। यद्यपि सभी क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रकार्यों का निष्पादन नहीं किया जा रहा है, तथापि प्रमुख क्षेत्रीय दल इस दिशा में सकारात्मक भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं।

---

1. तुलनात्मक शासन व राजनीति (जैन व फाड़िया) Pg. 53

उक्त विश्लेषण के आधार पर अध्याय हेतु ली गई परिकल्पना सही सिद्ध होती है कि

"राज्य सभा संघात्मक व्यवस्था का प्रतीक हैं।"

राज्य सभा में उपस्थित क्षेत्रीय दलों को राज्य स्तरीय व राष्ट्रीय हितों में निरन्तर समन्वय बनाये रखना होता है। अत: राज्य स्तरीय विश्लेषण के पश्चात् यह जानना वांछनीय है कि राष्ट्र स्तरीय व सामाजिक हितों के दृष्टिकोण से क्षेत्रीय दलों द्वारा किस प्रकार की भूमिका का निर्वहन किया गया। अध्याय–5 में क्षेत्रीय दलों के कार्यकरण का आकलन उक्त दृष्टिकोण के आधार पर किया गया है।

≈≈≈≈

क्षेत्रीय दल संघीय सदन राज्य सभा में राज्य के प्रतिनिधि के रूप में प्रवेश करते हैं, जहाँ उनसे क्षेत्रीय हितों के साथ–साथ राष्ट्रीय मुद्दों पर भी व्यापकतर दृष्टिकोण से स्तरीय विमर्श की अपेक्षा की जा सकती है। राज्य सभा गंभीर विमर्श का मंच है जहाँ क्षेत्रीय दलों द्वारा समन्वित दृष्टिकोण को अपनाना अपरिहार्य होता है। प्रस्तुत अध्याय इसी प्रश्न पर केन्द्रित है कि क्षेत्रीय दल इस उद्देश्य की पूर्ति में किस सीमा तक सफल रहे हैं। यह विश्लेषण उक्त दलों की प्रकृति को स्पष्ट करने में भी सहायक होगा।

स्वाभाविक रूप से क्षेत्रीय दलों से यह अपेक्षित है कि वे राज्य सभा में अपने क्षेत्र के हितों के संरक्षण व संवर्द्धन हेतु प्रत्येक सम्भव प्रयास करें तथापि राष्ट्रीय व्यवस्थापिका के द्वितीय सदन के सदस्य के रूप में क्षेत्रीय दलों के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वे अपने दृष्टिकोण में व्यापकता का समावेश करते हुये राष्ट्रीय महत्व के विषयों पर चर्चा में भी पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ सक्रिय रहें। पूर्व अध्याय (4) के अन्तर्गत क्षेत्रीय दलों की कार्यप्रणाली का अध्ययन यह जानने हेतु किया गया है कि अध्ययन काल में उक्त दल किस सीमा तक क्षेत्रीय/राज्य स्तरीय हितों के संरक्षण व संवर्द्धन में सक्षम रहे हैं। अध्याय–4 से प्राप्त निष्कर्षों के अनुसार राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों के प्रदर्शन में एकरूपता नहीं है। राज्यों की प्रकृति, दलों की विचारधारा व राजनीतिक कारणों के परिणामस्वरूप राज्य स्तरीय विषयों के प्रति क्षेत्रीय दलों का दृष्टिकोण भिन्न–भिन्न रहा है। एक ही राज्य में सक्रिय दो या दो से अधिक क्षेत्रीय दलों के व्यवहार में अंतर देखने में आया है। उदाहरणस्वरूप जम्मू कश्मीर में पिपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी, तमिलनाडु में अन्नाद्रमुक व उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी ने अपने समकक्ष दल से बेहतर प्रदर्शन किया है।

क्षेत्रीय दलों द्वारा विधायी उपकरणों के प्रयोग के सम्बन्ध में उल्लेखनीय तथ्य यह है कि प्रश्न व विशेष उल्लेख का प्रयोग क्षेत्रीय दलों द्वारा सर्वाधिक सक्रियता के साथ किया गया। आधे घण्टे की चर्चा में क्षेत्रीय दलों का योगदान न्यूनतम रहा तथा अध्ययन काल में राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य स्तरीय विषयों से सम्बन्धित कोई महत्वपूर्ण विधेयक राज्य सभा में प्रस्तुत नहीं किया गया। यद्यपि विधेयकों की कम संख्या के सम्बन्ध में एक प्रमुख कारक विधेयक प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया भी रही तथापि क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत कुल विधेयकों में से मात्र 8.7% ही राज्य स्तरीय हितों से सम्बन्धित रहे।

राज्य अथवा क्षेत्र स्तरीय विषयों के परिप्रेक्ष्य में क्षेत्रीय दलों के कार्यकरण के आकलन के पश्चात् यह जानना वांछनीय होगा कि राष्ट्र स्तरीय अथवा सामाजिक विषयों के प्रति क्षेत्रीय दलों का क्या दृष्टिकोण है। राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय दोनो आयामों के समुचित आकलन के पश्चात् ही यह जानना सम्भव हो सकेगा कि राज्य सभा सदस्य के रूप में क्षेत्रीय दलों की क्या वरीयतायें रही

तथा अपने आधारभूत चरित्र के विपरीत वे राष्ट्रीय महत्व के व्यापक विषयों से किस स्तर तक समन्वय स्थापित कर सके। यही प्रस्तुत अध्याय के परीक्षण का मूल बिन्दु भी है।

प्रस्तुत अध्याय हेतु चयनित परिकल्पना अग्रलिखित है।

"क्षेत्रीयता राष्ट्रीय हित का विलोम हैं।"

उक्त परिकल्पना के परीक्षण हेतु पूर्व अध्याय के समान प्रक्रिया का ही प्रयोग किया गया है। राज्यों के प्रत्येक समूह की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता का आकलन राष्ट्रीय/सामाजिक विषयों के सन्दर्भों में किया गया है। विधायी प्रक्रिया के अध्ययन हेतु चयनित आयाम अध्याय–4 के समान ही निम्नवत् हैं–

(1) विधेयक प्रस्तुतिकरण
(2) विशेष उल्लेख
(3) प्रश्न
(4) नियम 193 के अधीन अल्पकालिक चर्चा।
(5) ध्यानाकर्षण प्रस्ताव

अध्ययन की सीमाओं को दृष्टिगत रखते हुये तथा अध्ययन को तुलनात्मक रूप से ग्राह्य व विश्लेषणात्मक रूप में प्रस्तुत करने के लिये राष्ट्रीय एवं सामाजिक विषयों के सम्बन्ध में विभिन्न क्षेत्रीय दलों के सरोकारों का अध्ययन निम्न श्रेणियों के आधार पर किया गया है। राष्ट्रीय व सामाजिक विषयों में व्याप्त विविधता को ध्यान में रखते हुये यह वांछनीय है कि उक्त अध्ययन प्रमुख श्रेणियों के आधार पर किया जाये। यह श्रेणियाँ अग्रलिखित है–

(1) वैदेशिक व रक्षा सम्बन्धी विषय
(2) सामाजिक न्याय, महिला एवं बाल विकास
(3) अर्थव्यवस्था
(4) शिक्षा
(5) कृषि
(6) यातायात, परिवहन व संचार सेवायें

(1) विधेयक प्रस्तुतिकरण

अध्ययनकाल में 452 गैर सरकारी विधेयक प्रस्तुत किये गये, जिनमें से 97 विधेयक (21.46%)[1] क्षेत्रीय दलों के सांसदों द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रस्तुत विधेयकों में से मात्र 8 विधेयक क्षेत्रीय/राज्य स्तरीय विषयों से सम्बन्धित थे। शेष 89 विधेयक राष्ट्र स्तरीय/सामाजिक विषयों पर आधारित थे।[2]

---

1. अध्याय–4 तालिका संख्या –15
2. अध्याय–4 तालिका संख्या –16

तालिका संख्या – 28

क्षेत्रीय दलों द्वारा राष्ट्रीय/सामाजिक आधार पर प्रस्तुत विधेयक

वर्ष दल का नाम	2004	2005	2006	2007	2008	2009	2010	कुल
DMK	1	–	–	–	–	–	–	1
AIADMK	–	1	3	–	–	–	–	4
NPF	–	–	–	–	0	0	–	0
SDF	–	–	–	–	3	1	0	4
BSP	–	–	–	–	–	2	16	18
TDP	2	2	2	–	–	–	–	6
SP	1	2	3	6	4	6	3	25
RJD	1	–	–	–	–	–	–	1
BJD	–	3	5	4	–	–	–	12
RSP	–	4	–	–	–	–	–	4
JD(U)	–	–	–	–	4	–	–	4
AGP	–	–	–	–	–	1	–	1
RPI	1	–	–	–	–	–	–	1
SS	3	1	2	–	1	–	–	7
SBP	–	1	–	–	–	–	–	1
MNF	–	–	1	–	–	–	–	1

तालिका संख्या–28 के आधार पर यह कहा जा सकता है कि

- क्षेत्रीय दलों द्वारा राष्ट्रीय/सामाजिक विषयों पर विधेयक प्रस्तुतिकरण के विषय में संतोषजनक प्रदर्शन नहीं किया गया है।
- राष्ट्रीय अथवा सामाजिक विषयों से सम्बन्धित सर्वाधिक विधेयक समाजवादी पार्टी (25) व बहुजन समाज पार्टी (18) द्वारा प्रस्तुत किये गये। इसके अतिरिक्त उड़ीसा के बीजू जनता दल का योगदान भी उल्लेखनीय रहा जिसके द्वारा 13 राष्ट्रीय/सामाजिक विषयों से सम्बन्धित विधेयक सदन के पटल पर रखे गये।
- जिन विषयों के सन्दर्भ में सर्वाधिक विधेयक क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य सभा में प्रस्तुत किये गये वे निम्न है–

  (1) सामाजिक न्याय व सशक्तिकरण

  (2) स्वास्थ्य व परिवार कल्याण

  (3) कानून व न्याय

समाजिक न्याय व सशक्तिकरण पर सर्वाधिक विधेयक (6) उत्तर प्रदेश की बहुजन समाज पार्टी द्वारा प्रस्तुत किये गये तथा स्वास्थ्य व परिवार कल्याण से सम्बन्धित सर्वाधिक (5) विधेयक व कानून एवं न्याय से सम्बन्धित सर्वाधिक (6) विधेयक उत्तर प्रदेश की ही समाजवादी पार्टी द्वारा सदन के सम्मुख रखे गये।

- राष्ट्र निर्माण की दृष्टि से एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम मानव संसाधन विकास है, इस विषय से सम्बन्धित 5 विधेयक क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य सभा में प्रस्तुत किये गये। परन्तु ये सभी विधेयक औपचारिक शिक्षा, कोचिंग, यूनिफार्म, पाठ्यक्रम आदि विषयों पर आधारित थे तथा इनमें कौशल विकास, शिक्षण व्यवस्था में सुधार जैसे महत्वपूर्ण विषयों के विषय में दृष्टिकोण का अभाव था।

कुछ अन्य विषय जिन्हें क्षेत्रीय दलों ने विधेयक प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण माना वे इस प्रकार है–

1. महिलाओं व बच्चों का शोषण – बहुजन समाज पार्टी ने इस सम्बन्ध में तीन विधेयक प्रस्तुत किये जबकि तेलगू देशम पार्टी, सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट, समाजवादी पार्टी व बीजू जनता दल ने एक–एक विधेयक प्रस्तुत किया।

2. सरकारी कर्मचारियों व पेंशन आदि के विषय में एक–एक विधेयक द्रमुक व बहुजन समाज पार्टी ने सदन में प्रस्तुत किया।
3. कृषि से सम्बन्धित समस्याऐं, किसानों की आत्महत्या जो कि भारत वर्ष के लिये एक दु:स्वप्न बन चुकी है विधेयकों के सन्दर्भ में, क्षेत्रीय दलों का ध्यान आकर्षित करने में असफल रही है तथा इस सम्बन्ध में मात्र दो बिल (शिवसेना व बहुजन समाज पार्टी द्वारा) सदन के सम्मुख विचार हेतु लाये गये।
4. कुछ विषय ऐसे है जिन पर अध्ययनकाल में सिर्फ एक विधेयक प्रस्तुत किया गया जो कि इस प्रकार है–

विषय	**दल का नाम**
आतंकवाद	शिवसेना
रेलवे	जनता दल युनाइटेड
पर्यटन	समाजवादी पार्टी
पशु क्रुरता निवारण	समाजवादी पार्टी
पेटेन्ट	शिवसेना
सूचना व प्रसारण	अन्नाद्रमुक
धार्मिक स्वतन्त्रता	तेलगूदेशम पार्टी
क्षेत्रीयता	समाजवादी पार्टी
बालिका शिक्षा	समाजवादी पार्टी
निर्वाचन पूर्व सर्वे	रिवोल्यूशनरी समाजवादी पार्टी
शहरी गरीबी निवारण	बहुजन समाज पार्टी

अध्ययन काल में राज्य सभा में राष्ट्रीय/सामाजिक मुद्दों पर क्षेत्रीय दलों की सहभागिता दर्शाती है कि इस दिशा में क्षेत्रीय दल नाममात्र की तथा निराशाजनक भूमिका अपना रहे हैं। इसका सर्वप्रथम सम्भव कारण क्षेत्रीय दलों का राजनीतिक रूप से सीमित कार्यक्षेत्र में सक्रिय होना हो सकता है। परन्तु यह कारण अधिक तर्कसंगत इसलिये प्रतीत नहीं होता क्योंकि अध्याय–4 से प्राप्त निष्कर्षों के अनुसार क्षेत्रीय दलों द्वारा क्षेत्रीय विषयों से सम्बन्धित मात्र 8 विधेयक अध्ययन

काल में प्रस्तुत किये गये थे। अत: विधेयक प्रस्तुतिकरण के दोनों आयामों (राष्ट्रीय व क्षेत्रीय) के सम्बन्ध में क्षेत्रीय दलों का प्रदर्शन सक्रियात्मक नहीं रहा।

ऐसी स्थिति में अन्य संभावित कारण क्षेत्रीय दलों में तकनीकी प्रक्रियात्मक जानकारी का अभाव होना माना जा सकता है। यद्यपि सदन सचिवालय में सांसदों को विधेयक प्रस्तुतिकरण से सम्बन्धित समस्त तकनीकी सहायता प्रदान करने का प्रावधान किया गया है। अत: इस कारण को भी विधेयकों की न्यून संख्या का स्पष्टीकरण नहीं माना जा सकता है। अंतत: गैर सरकारी विधेयकों के सम्बन्ध में संसद का रूख ही एकमात्र महत्वपूर्ण कारण दृष्टिगोचर होता है। जैसा कि अध्याय–4 में भी उल्लेख किया गया है कि गैर सरकारी विधेयकों के प्रस्तुतिकरण हेतु राज्य सभा में बेहद कम समय का आवंटन किया गया है, जिसके कारण प्रतिवर्ष सदन में लंबित विधेयकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि दर्ज होती रहती है साथ ही जो विधेयक प्रस्तुत भी होते हैं उनके पारित होने की संभावना शून्य प्राय: हैं। 1952 से 2010 तक राज्य सभा द्वारा मात्र 15 गैर सरकारी विधेयक पारित किये गये हैं। यह तथ्य सम्भवत: क्षेत्रीय दलों हेतु नकारात्मक पुनर्बलन का कार्य करते हैं, जिसका परिणाम विधेयक प्रस्तुतिकरण के सन्दर्भ में क्षेत्रीय दलों की न्यून सहभागिता के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित है।

1. पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्रीय दल

अध्याय–4 में प्रस्तुत विश्लेषण से स्पष्ट है कि पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्रीय दलों का स्पष्ट झुकाव राज्य स्तरीय हितों के प्रति है। राष्ट्र स्तरीय व सामाजिक विषयों के सम्बन्ध में पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्रीय दलों का निम्न योगदान रहा–

तालिका संख्या – 29

पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राष्ट्र स्तरीय प्रश्न	राष्ट्र स्तरीय विशेष उल्लेख	राष्ट्र स्तरीय विधेयक	राष्ट्र स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये राष्ट्र स्तरीय विषय	राष्ट्र स्तरीय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
NPF	3	66	0	0	0	0	0
MNF	2	8	0	1	0	0	0
SDF	2	194	3	4	0	2	4
AGP	2	186	5	1	4	11	3
BPF	1	2	0	0	2	1	0

- उक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट, मिजो नेशनल फ्रण्ट, नागालैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट द्वारा राष्ट्रीय/सामाजिक विषयों की पूरी तरह से उपेक्षा नहीं की गई है, यद्यपि इनका प्रतिशत राज्य स्तरीय विषयों की तुलना में कम है।
- राष्ट्रीय व सामाजिक विषयों के सन्दर्भ में असम गण परिषद व सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट सर्वाधिक सक्रिय रहे (विशेषकर प्रश्न पूछने की प्रक्रिया में) नागालैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट का प्रदर्शन भी इस परिप्रेक्ष्य में उल्लेखनीय रहा।
- वैदेशिक विषयों के अन्तर्गत भारत की पूर्व की ओर देखो नीति व चीन तथा बांग्लादेश के साथ वैदेशिक सम्बन्धों को स्वाभाविक कारणों से असम गण परिषद व सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट द्वारा विशेष तौर पर उल्लिखित किया गया। क्योंकि चीन की विस्तारवादी नीति व बांग्लादेश की घुसपैठ का सर्वाधिक प्रभाव इन राज्यों पर ही पड़ता है।
- सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट द्वारा प्रश्नों के माध्यम से मुंबई बम धमाकों व नक्सलवाद के प्रति चिन्ता जताई गई।

- असम गण परिषद द्वारा नदियों को जोड़ने से सम्बन्धित परियोजना के बारे में प्रश्न पूछे गये तथा यह जानने का प्रयास किया गया कि राष्ट्रीय आपदा प्रबन्धन में यह योजना किस प्रकार लाभकारी होगी।
- बेरोजगारी, ग्रामीण विकास व गरीबी उन्मूलन से सम्बन्धित प्रश्न नागालैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट, असम गण परिषद, सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट द्वारा राज्य सभा के संज्ञान में लाये गये।
- राज्य स्तरीय विषयों के समान पर्यटन से सम्बन्धित सुविधाओं को राष्ट्र स्तर पर भी विकसित करने का प्रयास पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्रीय दलों द्वारा किया गया।
- आवश्यक वस्तुओं के दामों में बढ़ोतरी तथा उसके प्रभावों को असम गण परिषद, नागालैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट व सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट द्वारा निराशाजनक माना गया।
- असम गण परिषद द्वारा कुछ प्रमुख विषय विशेष उल्लेख के माध्यम से सदन में रखे गये, जैसे

– बैल मैटल उद्योग के लिये विशेष आर्थिक सहायता पैकेज

– पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिये पृथक टाईम जोन का निर्माण

– विशाल हाईड्रो पावर परियोजना का उत्तर पूर्वी क्षेत्र पर सामाजिक, आर्थिक व सुरक्षात्मक दृष्टिकोण से पड़ने वाला प्रभाव

– केन्द्रीय कर्मचारियों को छठवें वेतन आयोग का लाभ

– सुप्रीम कोर्ट में रिक्त पदों पर जजों की नियुक्ति

▪ ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के माध्यम से ऊर्जा उत्पादन के लिये प्राकृतिक गैस की उपलब्धता (असम गण परिषद) व देश में महामारी के रूप में फैल रहे स्वाइन फ्लू (सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट) की ओर राज्य सभा का ध्यान आकर्षित किया गया।

विधायी प्रक्रियाओं के माध्यम से पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्रीय दलों द्वारा जिन विषयों को राज्य सभा के समक्ष रखा गया उनसे स्पष्ट है कि इन क्षेत्रीय दलों द्वारा दोनो प्रकार के विषयों में सन्तुलन बनाने का प्रयास किया गया। साथ ही जमीन से जुड़े व सामाजिक सोद्देश्यता से जुड़े विषयों को अधिक महत्व दिया गया। महिला व बाल विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक समस्याऐं, अर्थव्यवस्था, प्रतिरक्षा आदि विषयों पर उक्त दलों द्वारा नगण्य संलग्नता का प्रदर्शन किया गया।

जम्मू–कश्मीर के क्षेत्रीय दल

तालिका 30

जम्मू कश्मीर के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राष्ट्र स्तरीय प्रश्न	राष्ट्र स्तरीय विशेष उल्लेख	राष्ट्र स्तरीय विधेयक	राष्ट्र स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये राष्ट्र स्तरीय विषय	राष्ट्र स्तरीय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
PDP	1	56	1	0	1	0	0
J&KNC	4	6	0	0	9	5	1

पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्रीय दलों के समान ही जम्मू कश्मीर के दोनो प्रमुख क्षेत्रीय दलों PDP व J&KNC द्वारा राज्य स्तरीय विषयों के प्रति विशेष संलग्नता प्रदर्शित की गई। क्षेत्रीय विषयों के समान राष्ट्र स्तरीय विषयों में भी J&KNC की सहभागिता नगण्य रही।

प्रश्नों के माध्यम से PDP द्वारा जिन विषयों को प्रमुखता से सदन के संज्ञान में लाया गया, वे विम्नवत हैं–

- महिला व बाल कल्याण हेतु योजनायें
- चुनाव सुधार
- राष्ट्रीय जनसंख्या नीति
- सोयाबीन का निर्यात
- ऐतिहासिक स्मारकों की सुरक्षा
- एम्स जैसी संस्थाओं का अधिक से अधिक संख्या में खोला जाना
- विदेश नीति के सम्बन्ध में PDP द्वारा ईराक व जापान से व्यापारिक रिश्ते मजबूत करने पर बल दिया वहीं J&KNC इस विषय में मौन हैं।

- किसानों के हितों को ध्यान में रखते हुये PDP द्वारा सिंचाई योजनाओं के कार्यान्वयन व कृषि आधारित व्यापार से सम्बन्धित प्रश्न राज्य सभा में पूछ गये जबकि J&KNC के सांसद ने खाद की उपलब्धता में कमी की समस्या पर विशेष बल दिया।
- PDP द्वारा राज्य सभा में जे. एन. यू. में आरक्षण का विषय भी उठाया गया।
- J&KNC द्वारा सीमित संख्या में पूछे गये प्रश्नों में असम में पर्यटन सुविधाओं का विस्तार, मानवाधिकार व मनरेगा के कार्यान्वयन में व्याप्त कमियों से सम्बन्धित प्रश्न शामिल हैं।
- जम्मू कश्मीर की ओर से एक मात्र राष्ट्र स्तरीय विषयों से सम्बन्धित विशेष उल्लेख PDP द्वारा प्रस्तुत किया गया जो शरणार्थियों के पुनर्वास से सम्बन्धित था। साथ ही एक अल्पकालीन चर्चा राष्ट्रीय परिदृश्य के सम्बन्ध में भी प्रस्तावित की गई।
- अल्पकालीन चर्चा के माध्यम से PDP द्वारा किसानों की आत्महत्या व न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाने का मुद्दा उठाया गया।
- जम्मू–कश्मीर नेशनल कांफ्रेन्स द्वारा अल्पकालीन चर्चा के माध्यम से निम्न विषयों को सदन के समक्ष विचार हेतु रखा गया

- देश की आन्तरिक सुरक्षा
- तत्कालीन परिस्थितियों में विदेश नीति की दिशा
- नरेगा का क्रियान्वयन
- भारत–अमेरिका परमाणु समझौता
- अग्नि मिसाइल प्रक्षेपण के सम्बन्ध में चर्चा का प्रस्ताव सभापति की विशेष अनुमति से जम्मू–कश्मीर नेशनल कांफ्रेन्स द्वारा राज्य सभा में प्रस्तुत किया गया।

महाराष्ट्र के क्षेत्रीय दल

अध्ययन काल में महाराष्ट्र के तीन क्षेत्रीय दलों (रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया, SBP, शिवसेना) के कुल 12 सदस्य राज्य सभा में उपस्थित रहे। जिनकी विधायी प्रक्रिया में सहभागिता निम्नवत है–

तालिका – 31

महाराष्ट्र के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राष्ट्र स्तरीय प्रश्न	राष्ट्र स्तरीय विशेष उल्लेख	राष्ट्र स्तरीय विधेयक	राष्ट्र स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये राष्ट्र स्तरीय विषय	राष्ट्र स्तरीय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
RPI	1	109	8	1	3	0	3
SBP	1	66	9	1	8	3	3
SS	10	2368	21	7	21	29	12

आंकड़ों के अनुसार तीनों ही दलों द्वारा राष्ट्र स्तरीय विषयों को वरीयता दी गई। साथ ही विषयवार अध्ययन से स्पष्ट है कि उक्त क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रगतिशील व विकासवादी सोच का परिचय देते हुये (विशेषकर शिवसेना) परिपक्वता के साथ देश के सभी वर्गों व उनसे सम्बन्धित समस्याओं को चिन्हित करने का प्रयास किया गया है।

तीनो दलों में से शिवसेना सर्वाधिक सक्रिय रही है शिवसेना द्वारा सर्वाधिक वरीयता विदेश नीति से सम्बन्धित विषयों (विशेषकर पाकिस्तान) को दी गई है। इस सन्दर्भ में कुछ प्रमुख विषय निम्नवत हैं–

- पाक में आतंकवादी कैम्प, पाक के साथ वार्ता
- सार्क अधिवेशन में पाक द्वारा कश्मीर मुद्दे को उठाया जाना
- जापान के साथ व्यापारिक सम्बन्ध
- श्रीनगर मुजफ्फराबाद बस सेवा
- बांग्लादेशी वोटरों की संख्या में चिन्ताजनक बढ़ोतरी
- सुरक्षा परिषद में भारत का स्थान
- ईराक में भारतीयों की सुरक्षा

प्रश्नों में द्वितीय वरीयता आर्थिक विषयों को प्रदान की गई। वास्तव में आर्थिक विषयों के सम्बन्ध में शिवसेना द्वारा विविधतापूर्ण विकासवादी दृष्टिकोण अपनाया गया व निम्न प्रमुख विषयों से सम्बन्धित प्रश्न राज्य सभा में पूछे।

- रियल एस्टेट में विदेशी निवेश
- EPF व PPF की ब्याज दरों में परिवर्तन
- विदेशी मुद्रा भण्डार
- सकल घरेलू विकास दर में वृद्धि
- विविध बैंकिंग योजनायें
- पेट्रोलियम, कोयले आदि के दाम
- औद्योगिक विकास दर
- डॉलर के मुकाबले रूपये की स्थिति
- विशेष आर्थिक जोन (SEZ) की स्थापना
- शिक्षा के क्षेत्र में गुणवत्ता सुधार की आवश्यकता पर बल देते हुये शिवसेना द्वारा निम्न विषयों को रेखांकित किया गया–
- उच्च शिक्षा हेतु ढांचागत सुधारों की आवश्यकता
- अनिवार्य शिक्षा हेतु आवश्यक प्रावधान
- सेक्स शिक्षा
- गैर पंजीकृत संस्थाओं द्वारा डिग्री–डिप्लोमा आदि दिया जाना
- विकलांग व्यक्तियों हेतु आवश्यक सुविधायें
- सभी राज्य स्तरीय बोर्ड हेतु समान पाठ्यक्रम
- अनिवार्य सैन्य शिक्षा
- सामाजिक सरोकारो से सम्बन्धित विषयों को भी राज्य सभा में व्यापकता के साथ प्रस्तुत किया गया
- महिला व बाल विकास: बच्चों का यौन उत्पीड़न, महिला सुरक्षा, कुपोषित बच्चों हेतु भोजन व दूध
- शहरी क्षेत्रों की समस्याऐं जैसे आवास, पीने योग्य पानी, बेरोजगारी आदि

- भूमिगत जल व वर्षा जल का प्रबंधन
- सौर ऊर्जा चलित टैक्सी सम्बन्धी प्रस्ताव

उक्त विषयों के अतिरिक्त निम्न विषयों पर भी शिवसेना द्वारा प्रमुखता से प्रकाश डाला गया

- नदियों को जोड़ने की परियोजना
- स्वर्ण चतुर्भुज योजना
- किसानों के लिये कॉल सेन्टर व किसानों के लिये स्मार्ट कार्ड योजना

सभापति की विशेष अनुमति से शिवसेना द्वारा निम्न विषयों को राज्य सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया

- अफगानिस्तान में भारतीय कामगारों का अपहरण
- विज्ञापनों पर सरकार का खर्चा
- CAT की ऑनलाईन परीक्षा की असफलता
- नवरत्न सम्मान में व्याप्त राजनीति
- मानसून में देरी व किसानों की समस्याऐं
- गरीबी रेखा की व्याख्या
- SC/ST/OBC का प्राइवेट क्षेत्र में आरक्षण
- भ्रष्टाचार उन्मूलन की आवश्यकता
- पेट्रोलियम पदार्थों के दाम में बढ़ोतरी के सम्बन्ध में एक ध्यानाकर्षण प्रस्ताव भी शिवसेना द्वारा राज्य सभा में प्रस्तुत किया गया।
- अल्पकालीन चर्चा के माध्यम से देश की आन्तरिक सुरक्षा व्यवस्था, परमाणु समझौता, विदेश नीति आदि विषय भी सदन के संज्ञान में लाये गये।

महाराष्ट्र के शेष दो क्षेत्रीय दलों (रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया, SBP) की सहभागिता शिवसेना की तुलना में काफी कम रही, परन्तु इन दोनो दलों द्वारा पूछे गये प्रश्नों की प्रकृति में काफी साम्यता रही। इनके प्रमुख विषय रहे–

- एक्सपोर्ट मार्केट का विस्तार
- जनसंख्या वृद्धि दर

- पाक से वार्ता
- आर्गेनिक खेती
- सेना हेतु सैटेलाइट
- सर्व शिक्षा अभियान की विफलता

महाराष्ट्र के तीनों क्षेत्रीय दलों द्वारा राष्ट्र स्तरीय विषयों से सम्बन्धित निम्न प्रमुख विशेष उल्लेख सदन के सम्मुख रखे गये–

- बांग्लादेशियों के पक्ष में नागरिकता सम्बन्धी प्रावधानों में संशोधन
- बाल श्रम
- पीने योग्य पानी की अनुप्लब्धता
- वरिष्ठ नागरिकों की सुरक्षा
- पाक से नकली भारतीय मुद्रा का आना
- मीडिया हेतु दिशा निर्देश तैयार किये जाने की आवश्यकता

न्यायिक व्यवस्था में सुधार हेतु शिवसेना द्वारा निम्न प्रश्नों के माध्यम से प्रगतिशील सोच का परिचय दिया गया–

- जजों की नियुक्ति में देरी
- निर्णयों में तेजी लाने के लिये फास्ट ट्रैक कोर्ट की स्थापना
- पारिवारिक न्यायालयों की स्थापना
- न्यायालयों में ढ़ांचागत सुधार की आवश्यकता
- राष्ट्रीय न्यायिक आयोग की स्थापना
- मुफ्त न्यायिक सुविधा हेतु प्रावधान

उक्त के अतिरिक्त शिवसेना सांसद श्री राजकुमार धूत द्वारा संसद की बैठकों की संख्या में आती कमी को रेखांकित करते हुये, न्यूनतम बैठकों की संख्या निर्धारित करने सम्बन्धी विधेयक प्रस्तुत किया जाना महत्वपूर्ण रहा।

तमिलनाडु के क्षेत्रीय दल

तमिलनाडु में सक्रिय दो प्रमुख क्षेत्रीय दल द्रमुक व अन्नाद्रमुक है। आंकड़ों के अनुसार–

तालिका संख्या – 32

तमिलनाडु के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राष्ट्र स्तरीय प्रश्न	राष्ट्र स्तरीय विशेष उल्लेख	राष्ट्र स्तरीय विधेयक	राष्ट्र स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये राष्ट्र स्तरीय विषय	राष्ट्र स्तरीय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
DMK	16	351	8	1	30	37	17
AIADMK	18	3435	86	4	60	82	24

विषयवार आंकलन से निम्न तथ्य हमारे समक्ष उपस्थित होते है–

- अन्नाद्रमुक द्वारा महिला शिक्षा व अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा पर बल दिया गया, जबकि द्रमुक द्वारा उच्च शिक्षा हेतु संसाधनों की आवश्यकता पर बल दिया गया।
- दोनो ही दलों द्वारा केन्द्रीय विद्यालयों की स्थापना व सर्व शिक्षा अभियान की उपादेयता के सम्बन्ध में भी प्रश्न राज्य सभा में पूछे गये।
- व्यवसायिक पाठ्यक्रम आई.आई.टी. में प्रवेश, प्रशासनिक सेवा में प्रवेश हेतु प्रवेश परीक्षा की तैयारियों के सम्बन्ध में प्रश्न
- उक्त विषयों के अतिरिक्त शिक्षा के सम्बन्ध में जो विषय राज्य सभा में प्रस्तुत किये गये वे निम्न है–

▪ विज्ञान रिसर्च फाउण्डेशन की स्थापना
▪ शिक्षा का व्यवसायीकरण
▪ शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक न्याय
▪ शिक्षा ऋण
▪ सरकारी स्कूलों के लिये प्राइवेट पब्लिक पार्टनरशिप
▪ छात्र शिक्षक अनुपात
▪ मानव संसाधन के विषय में विशिष्ट पाठ्यक्रम

महिला एवं बाल विकास से सम्बन्धित विषयों को भी राज्य सभा में सक्रियता के साथ उठाया गया–

- कुपोषित बच्चों हेतु पोषण
- बच्चों व महिलाओं के लिये विशेष योजनायें
- बाल श्रम की समाप्ति हेतु प्रयास
- कुपोषण के कारण नवजात बच्चों की मृत्यु
- बच्चों का यौन शोषण
- कामकाजी महिलाओं के लिये क्रेच
- घरेलू हिंसा की समाप्ति

राज्यों में बाल आयोग की स्थापना अन्नाद्रमुक का एक विशेष प्रस्ताव था।

रक्षा एवं विदेश नीति के सम्बन्ध में अन्नाद्रमुक की सक्रियता द्रमुक की तुलना में अधिक रही।

- द्रमुक ने ब्रहोस मिसाइल सहित इसरो की प्रक्षेपण क्षमता सम्बन्धी प्रश्न पूछे, वहीं अन्नाद्रमुक द्वारा सुरक्षा बलों के आधुनिकीकरण पर बल दिया गया।
- अन्नाद्रमुक द्वारा सशस्त्र बलों को प्रदत्त विशेष अधिकारों व मिलिट्री कानूनों की समीक्षा के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे गये।
- पूर्व के देशों के साथ सम्बन्धों को दोनो दलों द्वारा महत्व दिया गया तथा इस सन्दर्भ में अन्नाद्रमुक द्वारा भारत–म्यांमार–थाइलैण्ड को सड़क मार्ग से जोड़े जाने के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे गये।
- द्रमुक ने अफगानिस्तान के साथ भारत के सम्बन्धों को गहन बनाने की आवश्यकता पर बल दिया।
- अन्नाद्रमुक द्वारा भारतीय विदेश नीति के सम्बन्ध में पूछे गये कुछ विशेष प्रश्न निम्न है–

- सीयाचीन में भारत–पाक सीमा निर्धारण
- विश्व के अन्य देशों के बीच भारत की स्थिति
- सार्क ऑब्जर्वर के रूप में भारत की भूमिका
- पाक में आतंकी कैम्प
- बांग्लादेश के साथ सन्धि

आर्थिक सन्दर्भों में तमिलनाडु के दोनो दलों ने पृथक–पृथक विषयों को राज्य सभा में उठाया

द्रमुक के प्रमुख विषय इस प्रकार रहे–

- रिजर्व बैंक द्वारा ब्याज दर बढ़ाया जाना क्रेडिट रेटिंग एजेन्सी की विश्वसनीयता
- कपास का निर्यात
- तेल के दामों में बढ़ोतरी
- चीन की कम्पनियों को बलैक लिस्ट करना

अन्नाद्रमुक द्वारा इस विषय में व्यापक सोच का प्रदर्शन करते हुये निम्न विषयों से सम्बन्धित प्रश्न सदन में पूछे–

- वर्ल्ड बैंक द्वारा राज्यों को दिया गया ऋण व उसका उपयोग
- कच्चे तेल का उत्पादन व वितरण
- उद्योगों को स्थायित्व प्रदान करने हेतु नीति
- पेट्रोलियम व कच्चे तेल के दामों में वैश्विक कमी की समीक्षा
- तुलसी व जूट का निर्यात
- राष्ट्रीय स्पेक्ट्रम नीति
- विदेशी निवेश के सम्बन्ध में नीति

एक अन्य क्षेत्र जिसको द्रमुक ने अत्याधिक महत्व प्रदान किया वे है सामाजिक सरकारों से सम्बन्धित विषय

- प्रदूषण, रेल्वे का संस्थागत ढांचा व सुरक्षा
- देश में बिजली की कमी
- ग्रामीण क्षेत्रों में संसाधनों की कमी
- पर्यटन सम्बन्धी सुविधाओं का विकास
- गरीबी रेखा से नीचे रह रहे परिवारों की स्थिति व पारिवारिक पेन्शन
- पाईप से LPG वितरण
- वैकल्पिक ऊर्जा संसाधनों का विकास, कचरे से ऊर्जा निर्माण
- स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार
- बेहतर परिवहन व संचार सेवायें
- मेट्रो सेवा का विस्तार

किसानों के सम्बन्ध में दोनो ही दलों द्वारा संवेदनशीलता का परिचय दिया गया व अग्रलिखित विषयों से सम्बन्धित प्रश्न राज्य सभा में पूछे गये–

- लम्बित सिंचाई परियोजनायें व सिंचाई हेतु सब्सीडी वितरण
- नरेगा के अन्तर्गत किसानों को खेत में काम करने की अनुमति
- किसानों को बिजली की आपूर्ति
- कृषि उपज के निर्यात हेतु व्यवस्था

उक्त सन्दर्भों में सर्वाधिक उल्लेखनीय प्रश्न अन्नाद्रमुक द्वारा पूछा गया जो कृषि को ज्ञान आधारित उद्योग का दर्जा देने से सम्बद्ध था। साथ ही अन्नाद्रमुक द्वारा किसानों के लिये राष्ट्रीय नीति के विकास पर भी बल दिया गया।

न्यायिक प्रशासन के सम्बन्ध में भी द्रमुक व अन्ना द्रमुक ने महत्व पूर्ण प्रश्न प्रस्तुत किये, उदाहरणत:-

- जजों व अन्य रिक्त पदों पर भर्ती
- न्यायिक प्रशासन में उच्च स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग
- हाई कोर्ट का कम्प्यूटरीकरण
- हाई कोर्ट बेन्च की स्थापना

पूर्व उल्लिखित विषयों के अतिरिक्त जिन विषयों पर प्रश्नों के माध्यम से प्रकाश डाला गया वे इस प्रकार है–

- स्वर्णिम चतुर्भुज परियोजना
- नदियों को जोड़ने से सम्बन्धित परियोजना
- पंचायत स्तर पर आपदा प्रबन्धन, कम्प्यूटरीकरण
- चन्द्रयान प्रोजेक्ट

प्रश्न पूछने की प्रक्रिया में अन्नाद्रमुक द्वारा केन्द्र–राज्य सम्बन्धों के विषय में अपनी नीतियों के अनुरूप दो प्रमुख विषय उठाये गये–

- श्रम को संघ सूची से हटाकर राज्य सूची में डाला जाना
- संविधान का पुनर्लेखन

आन्ध्र प्रदेश का क्षेत्रीय दल– तेलगूदेशम पार्टी (TDP)

तालिका – 33

तेलगूदेशम पार्टी की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राष्ट्र स्तरीय प्रश्न	राष्ट्र स्तरीय विशेष उल्लेख	राष्ट्र स्तरीय विधेयक	राष्ट्र स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये राष्ट्र स्तरीय विषय	राष्ट्र स्तरीय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
TDP	13	3700	115	6	47	83	24

राष्ट्रीय व सामाजिक विषयों के सम्बन्ध में तेलगूदेशम पार्टी द्वारा अतिव्यापक सोच का परिचय दिया गया। सर्वप्रथम विदेश नीति के सम्बन्ध में निम्न विषयों पर तेलगूदेशम पार्टी के सांसदों द्वारा प्रश्न पूछे गये–

- G-20 समूह का विस्तार
- पाक को आतंकवादी राष्ट्र घोषित करना
- भारत–ईराक गैस पाइपलाइन परियोजना की स्थिति
- भारत व ऑस्ट्रेलिया के बीच संयुक्त शैक्षणिक समिति की स्थापना
- संयुक्त राष्ट्र में स्थायी सदस्यता हेतु भारत का आवेदन
- भारत व अमेरिका के बीच परमाणु समझौता

राज्य स्तरीय विषयों में तेलगूदेशम पार्टी द्वारा शिक्षा के विषय में किसी प्रकार की स्पष्ट सोच का प्रदर्शन नहीं किया गया है, राष्ट्रीय स्तर पर इसके विपरीत अनेक प्रस्ताव उक्त दल द्वारा सदन में लाये गये जो कि निम्नवत् है–

- प्राइवेट महाविद्यालयों में शुल्क सम्बन्धी अनियमिततायें समाप्त करना
- पर्यावरण को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जाना
- अनिवार्य व मुफ्त प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था
- शोध छात्रों को विशेष प्रोत्साहन
- विद्यालयों में खेलों सम्बन्धी संसाधन उपलब्ध करवाना

- अनुसूचित जाति/जन जाति हेतु शिक्षा को प्रोत्साहन
- सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ सैकेण्डरी ऐजूकेशन द्वारा खेलों में छात्रवृत्ति दिया जाना
- बच्चों पर किताबों व गृहकार्य का बोझ कम करना
- RTI कानून को पाठ्यक्रम में शामिल करना
- सरकारी स्कूलों में मध्यान्ह भोजन योजना का समुचित क्रियान्वयन व निरीक्षण

परन्तु उच्च शिक्षा के विषय में तेलगूदेशम सांसदों द्वारा कोई विशेष पहल नहीं की गई। महिला व बाल विकास के क्षेत्र में उक्त क्षेत्रीय दल द्वारा प्रश्नों के माध्यम से महत्वपूर्ण योगदान दिया गया।

- घरेलू हिंसा, दहेज की समस्या
- गरीब महिलाओं व बच्चों के कल्याण हेतु योजनायें
- कन्या भ्रूण हत्या पर रोकथाम
- रक्षा के क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश

न्यायिक व्यवस्था के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्नों के विषय इस प्रकार है—

- राष्ट्रीय न्यायिक आयोग की स्थापना
- गरीबों को मुफ्त विधिक सहायता का प्रावधान
- हाईकोर्ट व सुप्रीम कोर्ट में जजों की नियुक्ति
- परिणाम आधारित न्यायिक व्यवस्था का सिद्धान्त तेलगूदेशम की विशिष्ट पहल है।

उपरोक्त विषयों के अतिरिक्त जिन विषयों से सम्बन्धित प्रश्न तेलगूदेशम पार्टी द्वारा पूछे गये वे इस प्रकार है—

- खाद्य सुरक्षा योजना का कार्यान्वयन
- स्वास्थ्य सेवाओं को मौलिक अधिकारों की श्रेणी में रखना
- ग्रामीण विद्युतीकरण
- राशन प्रणाली का सही प्रकार से कार्यान्वयन
- जेल आधुनिकीकरण
- नदियों को जोड़ने की परियोजना

- घरेलू गैस वितरण में समस्याऐं
- पीने योग्य पानी की व्यवस्था
- रोजगार नीति
- जनसंख्या नियन्त्रण के सम्बन्ध में नीति बनाये जाने की आवश्यकता
- विद्युत ऊर्जा की कमी

किसानों के सम्बन्ध में निम्न विषयों को रेखांकित करने का प्रयास किया गया–

- भूमि बैंक की स्थापना
- कृषकों की आत्महत्या के सम्बन्ध में आयोग की स्थापना
- किसानों हेतु विशेष आर्थिक सहायता पैकेज की घोषणा
- शुष्क भूमि खेती के लिये किसानों को विशेष ऋण
- मृदा का वैज्ञानिक परीक्षण व सुधार हेतु कृषकों को सहायता

अर्थव्यवस्था व विदेश नीति से सम्बन्धित प्रश्नों पर तेलगूदेशम पार्टी द्वारा विशेष बल नहीं दिया गया।

सभी विधायी प्रक्रियाओं का प्रयोग तेलगूदेशम द्वारा सक्रियता के साथ किया गया। इसी क्रम में इस क्षेत्रीय दल द्वारा निम्न विषयों पर विशेष उल्लेख प्रस्तुत किये गये–

- नदी पानी को राष्ट्रीय धरोहर घोषित करना
- टेलीविजन के कार्यक्रमों की गुणवत्ता में सुधार
- देश में अंगदान इकाई की स्थापना
- बाल श्रम निषेध व बाल विकास हेतु पृथक विभाग
- विधायिकाओं में महिला आरक्षण
- प्रमाण पत्रों में पिता के साथ मा का नाम
- राष्ट्रीय प्रतीकों के अपमान को रोकना
- सियाचीन व कारगिल के सैनिकों को बेहतर साधन

सभापति की विशेष अनुमति से स्वतन्त्रता सेनानियों हेतु पेन्शन, पैडी का न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाया जाना, बीड़ी कर्मिकों हेतु कल्याण योजनायें जैसे विषय सदन के संज्ञान में लाये गये।

साथ ही स्वाइन फ्लू के फैलाव से देश में उत्पन्न स्थिति तथा पेट्रोल की कीमतों की ओर ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के माध्यम से राज्य सभा का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया गया।

किसानों की आत्महत्या तथा नरेगा के प्रभाव के सन्दर्भ में अल्पकालीक चर्चा भी तेलगूदेशम पार्टी द्वारा सदन में प्रस्तावित की गई।

उड़ीसा का क्षेत्रीय दल– बी. जे. डी.

तालिका संख्या – 34

बीजू जनता दल की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राष्ट्र स्तरीय प्रश्न	राष्ट्र स्तरीय विशेष उल्लेख	राष्ट्र स्तरीय विधेयक	राष्ट्र स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये राष्ट्र स्तरीय विषय	राष्ट्र स्तरीय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
BJD	12	1111	23	13	12	14	2

उड़ीसा भारत के गरीब व पिछड़ा राज्य की श्रेणी में आता है। जिसका विकास काफी सीमा तक वर्ल्ड बैंक से प्राप्त ऋण व केन्द्र सरकार से प्राप्त सहायता पर निर्भर करता है। यही कारण है कि राष्ट्र स्तरीय व सामाजिक विषयों में बीजू जनता दल द्वारा विदेश नीति अथवा प्रतिरक्षा सम्बन्धी मुद्दों की उपेक्षा करते हुये सामाजिक विकास तथा राज्यों के समेकित विकास से सम्बन्धित विषयों पर अधिक बल दिया गया।

बीजू जनता दल के विषय में एक अन्य रेखांकित करने योग्य तथ्य यह है कि अध्ययन काल में उक्त दल के 12 सांसद राज्य सभा में उपस्थित रहे जिनमे से मात्र दो सांसदों प्रमिला बोहिदार व बी. जे. पाण्डा द्वारा सदन में उल्लेखनीय प्रदर्शन किया गया 4 सांसद पूर्णतया निष्क्रीय रहे तथा शेष द्वारा नाममात्र का योगदान दिया गया।

लगभग सभी सांसदों द्वारा राज्यों के विकास हेतु अधिक केन्द्रीय सहायता की आवश्यकता पर बल देते हुये निम्न विषयों से सम्बन्धित प्रश्न राज्य सभा में पूछे गये–

- राज्यों पर ऋण का भार कम करने हेतु व्यवस्था
- राज्यों के ऋण माफ कर देना

- राज्यों हेतु विशेष पैकेज की घोषणा
- बी. जे. पाण्डा द्वारा राज्यों में राजकोषीय सुधारों की आवश्यकता पर बल दिया गया।

शिक्षा के क्षेत्र में उड़ीसा के क्षेत्रीय दल द्वारा संसाधनों की अनुपलब्धता को रेखांकित किया गया। इस सन्दर्भ में प्रमुख विषय निम्न है–

- गरीब बच्चों का विद्यालयों में नामांकन
- हाई स्कूल स्तर पर एक समान पाठ्यक्रम की आवश्यकता
- प्राथमिक, माध्यमिक व उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शिक्षा सम्बन्धी सुविधायें उपलब्ध करवाये जाने की आवश्यकता
- आदिवासी बालिकाओं हेतु शिक्षा की व्यवस्था
- केन्द्रीय विश्व विद्याालय खोलने हेतु मानदण्ड पूरे किये जाने की आवश्यकता
- निरक्षरता समाप्त करने हेतु प्रावधान

महिला व बाल विकास के दृष्टिकोण से पूछे गये प्रश्नों के विषय इस प्रकार है–

- घरेलू हिंसा
- कार्यस्थल पर महिलाओं का यौन शोषण
- नवजात शिशु व मातृ मृत्यु दर
- दहेज हत्या रोकने के सम्बन्ध में प्रावधान
- बच्चों की तस्करी रोकने के सम्बन्ध में व्यवस्था

*किसानों के विषय को अधिक महत्व न देते हुये कृषक प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना पर बल दिया गया साथ ही पैदावार में कमी तथा किसानों की आत्महत्या पर केन्द्र सरकार के प्रयासों को जानने का प्रयास प्रश्नों के माध्यम से किया गया।

उपरोक्त विषय के अतिरिक्त –

- कोल ब्लॉक आवंटन
- नये स्टील प्लान्ट की स्थापना
- सीमा पर नई सड़कों का निर्माण
- झोपड़पट्टी मुक्त भारत

- स्वर्णिम चतुर्भुज योजना
- नदियों को जोड़ने सम्बन्धी योजना
- रेल्वे के सुरक्षा प्रबन्धों में सुधार की आवश्यकता
- Inland waterways का विकास
- पंचायत सशक्तिकरण
- गरीबों को सस्ती दर पर गेंहू व चावल उपलब्ध करवाया जाना

बीजू जनता दल के सांसद बी. जे. पाण्डा द्वारा व्यापक, विकासवादी सोच का परिचय देते हुये अन्य सांसदों से अलग नवाचार सम्बन्धी प्रश्न राज्य सभा के समक्ष प्रस्तुत किये गये, उनमें से कुछ महत्वपूर्ण विषय निम्न है–

- भवन निर्माण सम्बन्धी नये उपनियमों का निर्माण
- दिल्ली के लिये नये मास्टर प्लान की आवश्यकता
- तटीय व्यवस्थापन हेतु नये नियमों की आवश्यकता
- लिंगानुपात में गिरावट
- दिल्ली के विरासतकालीन स्वरूप के संरक्षण की आवश्यकता
- खाद्य प्रसंस्करण के क्षेत्र में विदेशी निवेश
- भारत व यूरोपीय यूनियन के बीच व्यापार सम्बन्ध
- अदालतों में लम्बित मामलों को खत्म करने के लिये व सामान्य जन हेतु न्याय सुलभ करवाने हेतु मोबाइल व फास्ट ट्रैक कोर्ट की स्थापना
- ऑस्ट्रेलिया जाने वाले छात्रों के लिये वीजा प्रक्रिया का सरलीकरण
- Crop tourism, adventure tourism, Medical tourism, मोक्ष tourism

लगभग इसी प्रकार के विषयों को बीजू जनता दल द्वारा विशेष उल्लेख के माध्यम से उठाया गया। उदाहरणत: -

- बागवानी प्रोत्साहन योजना
- छोड़ दी गई अथवा तलाकशुदा महिलाओं की समस्याऐं
- गरीब व जरूरतमंद लोगों को विधिक सहायता
- आदिवासी बालिकाओं की देश में तस्करी

- स्कूली बच्चों में नैतिक शिक्षा की आवश्यकता
- पिछड़े क्षेत्रों के विकास हेतु आवश्यक फण्ड सही समय पर जारी किया जाना चाहिये।
- नक्सलवाद की समस्या समाप्त करने के लिये पृथक आदिवासी सेना रेजीमेण्ट बनाई जाये जिसमें उड़ीसा के युवाओं को शामिल किया जाये।

बीजू जनता दल द्वारा निम्न विषयों पर अल्पकालीन चर्चा तथा ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के सम्बन्ध में प्रस्ताव दिये गये–

- देश में गैर कानूनी माइनिंग गतिविधियां
- लिब्राहन आयोग की रिपोर्ट
- महिला स्वयं सहायता समूहों की समस्याऐं
- देश की आन्तरिक सुरक्षा के समक्ष उपस्थित चुनौतियां महत्वपूर्ण वस्तुओं के दामों में वृद्धि
- आतंकवाद की बढ़ती घटनायें, मुम्बई बम ब्लास्ट के विशेष सन्दर्भों में
- भारत अमेरिका परमाणु सम्बन्ध

सभापति की विशेष अनुमति से उठाये गये प्रमुख विषय निम्न है–

- मेडिकल काउंसिल ऑफ इण्डिया में भ्रष्टाचार के प्रकरण
- भारत–ईरान सम्बन्ध
- नक्सली व माओवादियों को हथियार सप्लाई
- पैसे लेकर खबर छापने की घटनायें
- राष्ट्रीय खनिज नीति में पारदर्शिता की आवश्यकता

पंजाब व हरियाणा के क्षेत्रीय दल

पंजाब व हरियाणा में मूलरूप से दो क्षेत्रीय दल सक्रिय है। शिरोमणि अकाली दल तथा राष्ट्रीय लोक दल। इन दलों की विधायी प्रक्रियाओं में सहभागिता निम्न आंकड़ों के माध्यम से समझी जा सकती है।

तालिका संख्या – 35

पंजाब व हरियााणा के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राष्ट्र स्तरीय प्रश्न	राष्ट्र स्तरीय विशेष उल्लेख	राष्ट्र स्तरीय विधेयक	राष्ट्र स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये राष्ट्र स्तरीय विषय	राष्ट्र स्तरीय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
INLD	7	105	6	0	2	3	0
SAD	8	1166	6	0	3	7	7

- INLD के कुल 7 सदस्यों में से 2 सदस्य अध्ययन काल में पूर्णत: निष्क्रिय रहे है।
- कुल 4 सदस्यों का झुकाव राष्ट्र स्तरीय विषयों की ओर अधिक रहा है।
- विदेश नीति व प्रतिरक्षा सम्बन्धी विषयों में INLD का योगदान लगभग शून्य रहा, जबकि शिरोमणि अकाली दल द्वारा निम्न विषयों के सम्बन्ध में प्रश्न पूछे गये–
  - चीन व ईराक के साथ व्यापारिक सम्बन्ध
  - चीन के सामान से भारतीय बाजार का नुकसान
  - साफ्टा व्यापार समझौता
  - पाकिस्तानी जेलों में भारतीय कैदी
  - पड़ोसी देशों से (विशेषकर पाकिस्तान) घुसपैठ
- पंजाब व हरियाणा दोनो ही कृषि आधारित राज्य है अत: राष्ट्र स्तरीय विषयों में भी अनाज उत्पादन, भण्डारण आदि के प्रश्न प्रमुख रहे। उदाहरणत:
  - राज्यों को यूरिया की सप्लाई तथा यूरिया के दामों में वृद्धि
  - अनाज के बफर स्टॉक की स्थिति
  - गेंहू के उत्पादन में आत्मनिर्भरता व निर्यात
  - फसलों के सम्बन्ध में भविष्यवाणी हेतु राष्ट्रीय स्तर की संस्था की स्थापना
  - किसानों हेतु विशेष पैकेज की व्यवस्था

- खाद्य सुरक्षा हेतु भण्डारण की स्थिति
- दालों का निर्यात
- खेती के लिये पानी की कमी
- जेनेटिकली मौडिफाईड फसलों के प्रयोग पर रोक लगाने की आवश्यकता
- गांवों में सिंचाई हेतु ट्यूबवेल चलाने के लिये बिजली की व्यवस्था
- रबी की फसल हेतु उचित समर्थन मूल्य की घोषणा
- कृषि क्षेत्र को उद्योग का दर्जा देना
- कृषि क्षेत्र की विकास दर का आकलन
- भारत की कुल विकास दर में कृषि क्षेत्र का योगदान
- किसानों को आसान ऋण उपलब्ध करवाया जाये

शिरोमणि अकाली दल द्वारा वर्तमान राशन वितरण व्यवस्था पर असंतोष जताते हुये इस सम्बन्ध में भी प्रश्न पूछे गये—

- राशन प्रणाली के अन्तर्गत दिये जाने वाले अनाज की खराब गुणवत्ता
- राशन का गेंहू खुले बाजार में बेचे जाने की घटनायें

शिक्षा को भी उक्त क्षेत्रीय दल द्वारा अपने प्रश्नों में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया—

- गरीब बच्चों को मुफ्त शिक्षा
- अनिवार्य शिक्षा हेतु आवश्यक प्रावधान
- विद्यालयों में शारीरिक दण्ड पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाये जाने की आवश्यकता
- विद्यालयों में छोटी कक्षाओं में नामांकन
- स्कूल बीच में छोड़ने वाले बच्चों की समस्या
- शिक्षा पर सरकार की ओर से किया जाने वाला खर्च
- शिक्षा ऋण का सरलीकरण
- सरकारी स्कूलों की दशा में सुधार तथा नये स्कूलों की स्थापना की आवश्यकता

महिला व बाल विकास के सम्बन्ध में पंजाब व हरियाणा के दलों द्वारा निम्न विषयों से सम्बन्धित प्रश्न पूछे गये—

- कार्यरत महिलाओं के लिये पृथक छात्रावास का निर्माण
- महिला सशक्तीकरण हेतु प्रावधान
- महिलाओं व बालिकाओं का यौन उत्पीड़न
- लिंगानुपात में गिरावट

अन्नाद्रमुक के समान शिरोमणि अकाली दल भी राज्य स्वायत्तता का समर्थक क्षेत्रीय दल है। इस सन्दर्भ में शिरोमणि अकाली दल ने अन्तर्राज्यीय नदी पानी को समवर्ती सूची में शामिल करने, राज्यों का ऋणभार कम करने का सुझाव दिया

न्यायिक व्यवस्था के सम्बन्ध में शिरोमणि अकाली दल ने निम्न विषयों पर प्रश्नों के माध्यम से प्रकाश डाला–

- जजों द्वारा अपनी सम्पत्ति की घोषणा करना
- अदालतों द्वारा निर्णयों में देरी
- जजों की नियुक्ति की प्रक्रिया में संशोधन की आवश्यकता
- अदालतों में लम्बित जन हित याचिकायें

उक्त विषय के अतिरिक्त निम्न विषय भी महत्वपूर्ण रहे–

- ग्राम पंचायतों का सशक्तीकरण, ऑडिट
- बेरोजगारी की समस्या तथा समाधान के उपाय
- विद्युत ऊर्जा की समस्या
- गरीब परिवारों के सर्वे द्वारा संख्या का सही आंकलन
- कश्मीर घाटी से सेना वापस बुलाना
- राज्यों की GDP वृद्धि दर
- रेलों में खराब सुविधाओं की स्थिति
- सिख लोगों द्वारा सेना में शामिल होने की प्रवृत्ति में कमी
- नरेगा के क्रियान्वयन में कमियां
- गंगा व अन्य नदियों का प्रदूषण

राष्ट्रीय लोक दल द्वारा कुछ प्रमुख विशेष उल्लेख राज्य सभा में प्रस्तुत किये गये–

- गन्ना किसानों की समस्यायें
- औद्योगिक प्रदूषण का बढ़ना
- राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में भूमि आवंटन
- अनुसूचित जाति की सूचि में कुछ और जातियों का जुड़ना
- देश के किसानों के साथ भेदभाव

शिरोमणि अकाली दल द्वारा विशेष उल्लेख में निम्न विषयों को महत्व दिया गया–

- ब्रिटेन व अमेरिका में एअर इण्डिया की खराब सेवायें
- नक्सलियों द्वारा हिंसा
- प्राथमिक शिक्षकों की कमी
- आलू उगाने वाले किसानों की समस्याऐं
- खाने के तेल में मिलावट की घटनायें
- अल्पकालीन चर्चा के माध्यम से शिरोमणि अकाली दल द्वारा किसानों की आत्महत्या रोकने हेतु समाधान तथा न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाये जाने की आवश्यकता पर बल दिया
- ध्यानाकर्षण प्रस्ताव का प्रयोग करते हुये 1984 के दंगापीड़ितों की समस्याओं, अनाज के भण्डारण की समस्या, पेड न्यूज के दुष्प्रभाव की ओर अकाली दल द्वारा सदन का ध्यान आकर्षित किया गया।
- INLD द्वारा अल्पकालीन चर्चा के माध्यम से देश के विभिन्न भागों में बाढ़ अथवा आकाल द्वारा उत्पन्न स्थिति पर चिन्ता जताई गई।
- INLD द्वारा अध्ययन काल में एक भी ध्यानाकर्षण प्रस्ताव नहीं लाया गया तथा सभापति की अनुमति से मध्य प्रदेश में बाल विवाह रोकने हेतु कानून बनाये जाने की आवश्यकता और महिला आरक्षण विधेयक को जल्दी पारित किये जाने की अपरिहार्यता पर बल दिया गया।

पश्चिम बंगाल के क्षेत्रीय दल

पश्चिम बंगाल के दो प्रमुख क्षेत्रीय दल जो अध्ययन काल में राज्य सभा में सक्रिय रहे वे है ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस व ऑल इण्डिया फॉरवर्ड ब्लॉक।

तालिका संख्या – 36

पश्चिम बंगाल के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राष्ट्र स्तरीय प्रश्न	राष्ट्र स्तरीय विशेष उल्लेख	राष्ट्र स्तरीय विधेयक	राष्ट्र स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये राष्ट्र स्तरीय विषय	राष्ट्र स्तरीय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
AITC	4	8	0	0	6	9	2
AIFB	4	25	5	0	9	4	1

दोनों ही दलों का राज्य सभा की विधायी प्रक्रिया में सीमित योगदान रहा, साथ ही आश्चर्यजनक रूप से ये दो क्षेत्रीय दल ऐसे है जिनकी सामाजिक सरोकार, शिक्षा, महिला एवं बाल विकास, विदेश नीति आदि विषयों में सहभागिता नगण्य है। उक्त दलों द्वारा किसी प्रकार की व्यापक सोच का प्रदर्शन नहीं किया गया है।

ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस द्वारा प्रश्नों के माध्यम से उठाये गये विषय निम्न है–

- अमेरिका से परमाणु समझौते की स्थिति
- भारत में लौह अयस्क का भण्डार
- स्वतन्त्रता सेनानियों हेतु विशेष प्रावधानों की आवश्यकता
- देश में विश्वविद्यालयों की कमी
- बी पी एल व ए पी एल कार्ड धारकों के लिये अनाज के दामों को तर्कसंगत बनाया जाये।
- यूनानी दवा के सलाहकारों के खाली पदों पर भर्ती
- नक्सलवाद की समस्या
- गंगा का प्रदूषण

ऑल इण्डिया फारवर्ड ब्लॉक द्वारा प्रश्नों के माध्यम से प्रस्तुत विषय निम्न है–

- गेंहू का निर्यात व देश में खाद्यान्न की स्थिति
- सीमा पर तार से फेन्सिंग
- सड़ने से खाद्यान्न की बर्बादी
- पाक–भारत के बीच नई रेल व बस सेवायें
- नदियों के संरक्षण की परियोजना
- स्कूलों में परीक्षा के नये तरीकों पर विचार किये जाने की आवश्यकता
- कृषि क्षेत्र के विकास हेतु आवश्यक प्रावधान
- ब्रिक्स, इब्सा सम्मिट में भारत का प्रतिनिधित्व
- विशेष उल्लेख द्वारा ऑल इण्डिया फॉरवर्ड ब्लॉक द्वारा एक अनूठे विषय पर बल दिया गया वह था हर राज्य में पब्लिक लाइब्रेरी का निर्माण सुनिश्चित करवाया जाना।
- राष्ट्रीय स्तर के विषयों से सम्बन्धित एक भी विशेष उल्लेख AITC द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया।
- अल्पकालीन चर्चा के माध्यम से AITC द्वारा देश की आन्तरिक सुरक्षा के समक्ष उपस्थित खतरों और खुदरा क्षेत्र में प्रत्यक्ष निवेश के प्रभावों पर सदन में चर्चा प्रारम्भ की गई।

उत्तर प्रदेश, बिहार के क्षेत्रीय दल

उत्तर प्रदेश के क्षेत्रीय दल

तालिका संख्या – 37

उत्तर प्रदेश के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राष्ट्र स्तरीय प्रश्न	राष्ट्र स्तरीय विशेष उल्लेख	राष्ट्र स्तरीय विधेयक	राष्ट्र स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये राष्ट्र स्तरीय विषय	राष्ट्र स्तरीय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
SP	28	4813	142	25	89	209	29
BSP	28	413	25	18	11	23	6
RLD	1	80	0	0	2	2	0

शिक्षा के क्षेत्र में

- पश्चिमी शिक्षा के बढ़ते प्रभाव के प्रति चिन्ता
- बालिका शिक्षा हेतु विशेष योजनायें
- देश में नये विश्वविद्यालयों की आवश्यकता व पुराने विश्वविद्यालयों में रिक्त पदों पर भर्ती, प्रवेश हेतु परीक्षा का प्रावधान
- केन्द्रीय विश्वविद्यालयों हेतु अनुदान
- उच्च स्तरीय शिक्षण संस्थाओं की शाखायें भारत में खोले जाने का प्रस्ताव
- उच्च शिक्षा हेतु बजट बढ़ाये जाने की आवश्यकता
- शिक्षकों की कमी की समस्या
- विद्यालयों के आस–पास अनाधिकृत दुकानें व टैक्सी–स्टेण्ड
- सेकेण्डरी स्तर पर समान शिक्षा
- विद्यार्थियों हेतु अवसर
- सरकारी स्कूलों के प्रदर्शन का आकलन

- विद्यार्थी–शिक्षक अनुपात में सुधार की आवश्यकता
- ग्रामीण क्षेत्रों में केन्द्रीय विद्यालय खोले जाने का प्रस्ताव
- अनुसूचित जाति/जनजाति छात्रों के लिये छात्रावास की आवश्यकता
- शिक्षा के अधिकार को अनिवार्य रूप से लागू किया जाना
- शिक्षा के माफियाकरण को हतोत्साहित किया जाये

न्यायिक सुधार से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण प्रश्न समाजवादी पार्टी द्वारा राज्य सभा में पूछे गये–

- अदालतों में लम्बित मामले
- कोर्ट के आदेशों की समुचित पालना न किया जाना
- न्यायिक सुधारों की आवश्यकता
- जजों के रिक्त स्थानों की भर्ती हेतु सुप्रीम कोर्ट के निर्देश तथा इस सन्दर्भ में पारदर्शिता की आवश्यकता
- क्षेत्रीय अपील कोर्ट की स्थापना
- लम्बित दया याचिकायें
- राष्ट्रीय न्यायिक आयोग की स्थापना
- सहज सुलभ न्याय हेतु प्रावधान
- उपभोक्ता अदालतों व टाडा अदालतों में लम्बित मामले
- हाई कोर्ट में जजों की सेवानिवृत्ति की आयु बढ़ायी जाये

बहुजन समाज पार्टी द्वारा न्यायिक व्यवस्था के सम्बन्ध में कोई विशेष पहल नहीं की गई।

महिला एवं बाल विकास से जुड़े विषयों को उत्तर प्रदेश के दोनो क्षेत्रीय दलों द्वारा महत्वपूर्ण माना गया–

- बच्चों के अधिकारों के संरक्षण हेतु राज्य स्तरीय आयोग की स्थापना
- महिला कोर्ट
- महिला सुरक्षा हेतु सुझाव
- बाल श्रम को समाप्त करने हेतु प्रयास की आवश्यकता
- मातृ–शिशु केन्द्रों की स्थापना
- कुपोषित बच्चों की मृत्यु

- महिला मजदूरों का शोषण
- ग्रामीण महिलाओं में साक्षरता दर बढ़ाये जाने के प्रयास
- महिलाओं व बच्चों की ट्रैफिकिंग रोकने हेतु प्रावधान
- बालिकाओं के खिलाफ होने वाली हिंसा के मामले
- कार्यरत महिलाओं के लिये छात्रावास का निर्माण
- महिला कल्याण को राष्ट्रीय मिशन का स्वरूप देने का प्रयास
- शिशु मृत्यु दर के नियन्त्रण के प्रयास
- बाल विकास हेतु योजनाओं की आवश्यकता
- कन्या भ्रूण हत्या रोकने हेतु स्थायी समाधान

बहुजन समाज पार्टी द्वारा उक्त सन्दर्भों में निम्न विषयों को महत्वपूर्ण माना गया–

- अनुसूचित जाति की महिला का उच्च शिक्षा में प्रवेश
- बेसहारा बच्चों के कल्याण हेतु योजनायें

समाजवादी पार्टी द्वारा भ्रष्टाचार के मुद्दे को प्रश्नों के माध्यम से सुदृढ़ता से सदन के समक्ष लाया गया–

- सेबी अधिकारियों के खिलाफ भ्रष्टाचार का आरोप
- बड़ी शैक्षिक संस्थाओं के खिलाफ भ्रष्टाचार की शिकायतें
- विश्व बैंक की सहायता से चलने वाली स्वास्थ्य सम्बन्धी योजनाओं में भ्रष्टाचार की शिकायतें
- देश में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा इस सम्बन्ध में व्यापक सर्वे की आवश्यकता
- भ्रष्ट अधिकारियों हेतु समुचित दण्ड व्यवस्था कानून
- रक्षा अधिकारियों के खिलाफ भ्रष्टाचार गंभीर विषय

बहुजन समाज पार्टी द्वारा भी भ्रष्टाचार रोकने सम्बन्धी प्रावधानों पर बल दिया गया।

विदेश नीति व रक्षा सम्बन्धी विषयों पर दोनो ही क्षेत्रीय दलों द्वारा परिपक्व सोच का परिचय नहीं दिया गया। इससे सम्बन्धित प्रमुख प्रश्न इस प्रकार है–

- रूस के साथ हथियार सौदे की समीक्षा
- भारत तथा आसियान देशों के बीच व्यापार समझौता

- भारत व चीन के बीच व्यापार असन्तुलन
- भारत के खिलाफ पाकिस्तान की गतिविधियां
- पाकिस्तान में आतंकवादियों के ट्रेनिंग कैम्प
- थाईलैण्ड के साथ मुक्त व्यापार समझौता
- पाक जेलों में भारतीय सैनिक
- ईरान के साथ गैस पाइपलाइन परियोजना

इस प्रकार अन्य देशों के साथ मूलत: व्यापारिक सम्बन्धों पर ध्यान केन्द्रित किया गया तथा कूटनीतिक सम्बन्धों को वरीयता नहीं दी गई।

कुछ अन्य विषय जिन पर समाजवादी पार्टी द्वारा प्रश्नों के माध्यम से प्रकाश डाला गया वे इस प्रकार है–

- रक्षा सेनाओं में बढ़ती आत्महत्या की प्रवृत्ति
- नक्सलवाद की बढ़ती समस्या
- अल्पसंख्यकों के कल्याण विशेषकर शिक्षा हेतु प्रावधान
- अनौपचारिक शिक्षा माध्यमों को प्रोत्साहन

समाजवादी पार्टी द्वारा सभी विधायी प्रक्रियाओं का समुचित प्रयोग किया गया उदाहरणत:-

अल्पकालीन चर्चायें

- गेंहू का आयात
- आवश्यक वस्तुओं के दाम में निरन्तर बढ़ोतरी
- कुछ नेताओं के फोन जानबूझकर टेप किया जाना
- सीमा पार से आतंकवाद को बढ़ावा
- देश की आन्तरिक सुरक्षा की स्थिति
- नरेगा के क्रियान्वयन में कमियां
- देश के विभिन्न भागों में किसानों द्वारा आत्महत्या की घटनायें
- भारत–अमरीका परमाणु समझौता
- भारतीय विदेश नीति
- विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में प्रश्नपत्रों का लीक होना

ध्यानाकर्षण प्रस्ताव

- 1984 के दंगो के पीड़ितों को सहायता व दोषियों को सजा देने की प्रक्रिया
- कॉमनवेल्थ खेलों की तैयारियां
- पेट्रोल व डीजल के दामों में बढ़ोतरी से उत्पन्न स्थिति
- ग्लोबल मंदी का असर
- कन्या भ्रूण हत्या रोकने हेतु प्रावधानों की आवश्यकता
- एअर इण्डिया की निरन्तर खराब होती स्थिति
- उपयुक्त भण्डारण क्षमता के अभाव में अनाज का सड़ना
- फलों–सब्जियों में रसायनों का प्रयोग

विशेष अनुमति से उठाये गये विषय

- प्रॉफिट मोहम्मद के कार्टून सम्बन्धी विवाद
- खेलों का गिरता स्तर
- भारत–पाक सम्बन्ध
- सेना के रिटायर्ड अफसरों द्वारा पदकों का लौटाया जाना
- दलित मुस्लिम व इसाई धर्म हेतु आरक्षण
- महिला आरक्षण विधेयक पास किये जाने की आवश्यकता
- जी एम फसलों के प्रयोग पर विचार की आवश्यकता
- राष्ट्रीय गीत वन्दे मातरम् से सम्बन्धित विवाद

बहुजन समाज पार्टी द्वारा उक्त विधायी प्रक्रियाओं के अन्तर्गत लगभग समान विषयों को राज्य सभा में प्रस्तुत किया गया। कुछ अन्य विषय जिन्हें बहुजन समाज पार्टी द्वारा महत्व दिया गया वे निम्न है–

अल्पकालीन चर्चा

- अनाजों का न्यूनतम समर्थन मूल्य
- अवैध खनन की समस्या

ध्यानाकर्षण प्रस्ताव–

- देश के विभिन्न भागों में पीने योग्य पानी की समस्या

विशेष अनुमति से उठाये गये विषय

- भारतीय मछुआरों पर श्रीलंका नेवी का हमला
- महंगाई के विषय पर प्रधानमंत्री द्वारा की गई टिप्पणी
- स्थानीय भाषाओं को हाई कोर्ट की भाषा बनाये जाने के सम्बन्ध में वकीलों का आन्दोलन

उत्तर प्रदेश के दोनो क्षेत्रीय दलों द्वारा विशेष उल्लेख के माध्यम से भी उन्हीं विषयों को उठाया गया जिन्हें वे अन्य विधायी प्रक्रियाओं में प्रस्तुत कर चुके थे। कुछ अन्य प्रमुख विषय निम्न है–

- आरक्षण नीति की समीक्षा की आवश्यकता
- वी आई पी सुरक्षा के लिये नई नीति की आवश्यकता
- पूरे देश में ग्रामीण विधुतीकरण 2012 तक समाप्त करने का लक्ष्य
- आकाल मृत्यु
- देश में बिजली की स्थिति
- हिन्दी भाषा की उपेक्षा
- ऑनलाइन व्यापार के प्रभाव
- सैनिकों में आत्महत्या की बढ़ती प्रवृत्ति
- किसानों को आर्थिक सहायता
- देश में जाति आधारित जनगणना की आवश्यकता
- श्री उदय प्रताप सिंह द्वारा लोकतांत्रिक मूल्यों की उपेक्षा के सम्बन्ध में विशेष चिन्ता
- देश के बाहर भारतीय कामगारों की समस्याओं का समाधान
- सेना के लिये 'वन रैन्क वन पेन्शन' प्रावधान
- पूरे भारत में अति पिछड़ा वर्ग को 27% आरक्षण
- ग्राम न्यायालयों की स्थापना के लिये आर्थिक सहायता

बिहार के क्षेत्रीय दल

बिहार में भी मूल रूप से दो क्षेत्रीय दलों जनता दल युनाईटेड व राष्ट्रीय जनता दल का प्रदर्शन राज्य सभा में उल्लेखनीय रहा।

तालिका संख्या – 38

बिहार के क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राष्ट्र स्तरीय प्रश्न	राष्ट्र स्तरीय विशेष उल्लेख	राष्ट्र स्तरीय विधेयक	राष्ट्र स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये राष्ट्र स्तरीय विषय	राष्ट्र स्तरीय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
RJD	16	846	30	1	53	97	23
SAMATA	2	65	0	0	8	1	0
LJP	2	141	4	0	2	6	1
JD(U)	12	1060	24	4	15	53	5

बिहार के क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रश्नों के माध्यम से जिन विषयों को प्रकाश में लाया गया वे कुछ सीमा तक उत्तर प्रदेश के क्षेत्रीय दलों के समकक्ष है। जैसे कि–

शिक्षा के क्षेत्र में

- गरीब बच्चों की शिक्षा हेतु प्रावधान
- छात्रों पर बस्तों का बोझ
- शोध गुणवत्ता में कमी
- उच्च शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण
- राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की सिफारिशों को लागू करना
- सिविल सेवा परीक्षा के प्रारूप में परिवर्तन

महिला एवं बाल विकास

- सरकारी नौकरी में महिलायें
- महिला व बाल कल्याण हेतु विशेष प्रावधान
- विधायिकाओं में OBC महिलाओं को आरक्षण
- आदिवासी मुस्लिम को ST दर्जा

विदेश नीति व रक्षा

- भारत–नेपाल के बीच जल प्रबन्धन
- आन्तरिक सुरक्षा सम्बन्धी चुनौतियां
- संयुक्त राष्ट्र में हिन्दी को आधिकारिक भाषा का दर्जा
- भारत का ईरान–चीन से सम्बन्ध
- भारत–पाक सम्बन्ध

समाजिक विषय

- रोजगार अवसरों में आती कमी
- गाय–भैंस की नस्ल सुधार हेतु विशेष कार्यक्रम
- आवश्यक वस्तुओं के दामों में बढ़ोतरी
- गरीबी उन्मूलन
- गंगा नदी प्रदूषण
- राशन वितरण प्रणाली का कम्प्यूटरीकरण
- शहरों में बुनियादी ढांचे का विकास

बिहार के क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत विशेष उल्लेख मूलत: निम्न विषयों पर आधारित थे–

- भारतीय दुग्ध निर्माताओं की समस्या
- तम्बाकू उत्पादों के विज्ञापन पर रोक
- राशन वितरण प्रणाली का सुदृढ़ीकरण
- अनुचित मिडिया प्रकाशन पर नियन्त्रण
- निजी क्षेत्र में आरक्षण
- हवाई यात्रा में हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं का वितरण
- सरकारी विभागों में हिन्दी का प्रयोग
- मुस्लिम समुदाय का उत्थान
- मदरसा विधार्थियों को रेल यात्रा में छूट
- पाक जेलों में भारतीय कैदी
- रेल्वे के बुनियादी ढांचे में सुधार
- महात्मा गांधी के सामान की नीलामी

विशेष उल्लेख के अतिरिक्त शेष विधायी प्रक्रियाओं में बिहार के क्षेत्रीय दलों द्वारा अग्रलिखित विषयों पर विशेष ध्यान दिया गया–

अल्पकालीन चर्चा

- देश में आन्तरिक सुरक्षा की स्थिति
- किसानों द्वारा आत्महत्या की घटनायें
- महिला उत्पीड़न
- नरेगा में फण्ड का दुरूपयोग
- भारत–अमरीका परमाणु समझौता
- दसवीं पंचवर्षीय योजना की समीक्षा में खेती, गरीबी, बेरोजगारी पर विचार की आवश्यकता

ध्यानाकर्षण प्रस्ताव

- दवाईयों के दामों में वृद्धि
- महाराष्ट्र में बारिश की स्थिति
- राष्ट्रीय प्रतीकों के अपमान को रोकने के लिये बने बिल का दुरूपयोग

विशेष अनुमति से उठाये गये विषय

- तमिलनाडु के हाइवे पर हिन्दी भाषा के माईलस्टोन
- जांच एजेन्सियों के कामों में राजनीतिक दखलन्दाजी
- बाल विवाह रोकने हेतु प्रयासों की आवश्यकता
- नक्सलवाद की समस्या
- NCERT की पुस्तकों के विवादित अंश
- पाकिस्तान द्वारा भारतीय राजनायिक का निष्कासन
- अग्नि मिसाइल का परीक्षण

अन्य क्षेत्रीय दल

राष्ट्रीय व सामाजिक विषयों के सन्दर्भ में जनता दल (सेक्युलर) द्वारा जमीन से जुड़े विषयों का चयन किया गया महिला एवं बाल विकास तथा सामाजिक बुराइयों से जुड़े विषयों पर कर्नाटक के क्षेत्रीय दल द्वारा विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

तालिका संख्या – 39

अन्य क्षेत्रीय दलों की राष्ट्रीय विषयों पर विधायी प्रक्रिया में सहभागिता

दल	सदस्य	राष्ट्र स्तरीय प्रश्न	राष्ट्र स्तरीय विशेष उल्लेख	राष्ट्र स्तरीय विधेयक	राष्ट्र स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	विशेष अनुमति से उठाये गये राष्ट्र स्तरीय विषय	राष्ट्र स्तरीय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
JD(S)	2	445	4	0	0	0	0
JMM	4	0	0	0	0	0	0
ML	2	68	5	0	6	3	2
RSP	4	480	12	4	17	20	13
PMK	1	0	0	0	0	0	0
ABLC	1	401	6	0	16	13	8

वे प्रमुख विषय जिन पर जनता दल (सेक्युलर) द्वारा राज्य सभा में प्रश्न पूछे गये–

शिक्षा सम्बन्धी विषय

- शिक्षा हेतु आवंटित बजट
- पाठ्यक्रम निधार्रित करने हेतु राष्ट्रीय समिति
- स्कूल पाठ्यक्रम में योग को शामिल किया जाना
- सर्व शिक्षा अभियान के समुचित क्रियान्वयन की आवश्यकता
- कन्या को मुफ्त शिक्षा
- उच्च शिक्षा हेतु ढांचागत सुविधाओं का विकास

विदेश नीति व रक्षा सम्बन्धी विषय

- जम्मू–कश्मीर में सेना के जवानों की मौत
- पाक को प्राप्त आर्थिक सहायता
- मध्य पूर्वी देशों की राजनीतिक स्थिति
- पाक जेलों में कैद भारतीय

इसके अतिरिक्त

- बेरोजगार युवकों परीक्षा हेतु मुफ्त यात्रा की सुविधा
- व्यापार बाधाओं में कमी लाये जाने की आवश्यकता
- बाल श्रम की समाप्ति हेतु प्रावधानों की आवश्यकता
- पंचायती राज का सुदृढ़ीकरण
- राष्ट्रीय सांस्कृतिक बोर्ड की स्थापना
- हाई कोर्ट में जजों के खाली पड़े स्थान
- शहरों के विकास हेतु बजट
- स्वर्णिम चतुर्भुज योजना की प्रगति
- आपदा प्रबन्धन
- ऊर्जा क्षेत्र में सुधार की आवश्यकता
- रेल्वे स्टेशनों को विश्व धरोहर का दर्जा
- किसानों की आत्महत्या पर ध्यान दिये जाने की आवश्यकता
- कन्या भ्रूण हत्या रोकने हेतु प्रावधान

इसके अतिरिक्त विशेष उल्लेख के माध्यम से जल प्रदूषण व देश में अकाल के कारण होने वाली मौतों को रेखांकित किया गया।

निष्कर्षतः

राज्य सभा में उपस्थित क्षेत्रीय दल यद्यपि सीमित विचारधारा का प्रदर्शन करते है तथापि राष्ट्र स्तरीय व सामाजिक विषयों को भी इन दलों द्वारा मुखरता से राज्य सभा में स्वर प्रदान किया गया।

- अन्नाद्रमुक, तेलगूदेशम, शिवसेना राष्ट्र स्तरीय विषयों के सभी आयामों में अतिसक्रिय रही।
- विशिष्ट परिस्थितियों वाले राज्यों के क्षेत्रीय दलों द्वारा इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय प्रदर्शन नहीं किया गया।

- विदेश नीति व आर्थिक नीतियों के विषय में क्षेत्रीय दलों द्वारा व्यापक दृष्टिकोण का प्रदर्शन नहीं किया गया।
- महिला व बाल विकास, बेरोजगारी, सामाजिक महत्व की योजनाओं के विषय में लगभग सभी क्षेत्रीय दल मुखर व सक्रिय रहे।

मात्र क्षेत्रीय विचारधारा से जुड़े होने के कारण क्षेत्रीय दलों को संकुचित दृष्टिकोण के साथ विश्लेषित नहीं किया जा सकता है प्रस्तुत अध्याय से प्राप्त निष्कर्ष इस तथ्य का समर्थन करते हैं। इस प्रकार अध्याय हेतु चयनित परिकल्पना "क्षेत्रीयता राष्ट्रीय हित का विलोम है" पूर्णरूपेण सत्य नहीं है।

≈≈≈≈

लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं के अन्तर्गत राजनीतिक संगठनों व संस्थानों का स्वभाव गत्यात्मक माना गया है। ऐसा स्वाभाविक भी है, क्योंकि ये संगठन व संस्थायें लोकतान्त्रिक भावनाओं के अनुरूप जनमानस की आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करती हैं,

जैसा कि मिल ने भी माना है–

"शासन व्यवस्था मानव की इच्छा व कार्यों से परे नहीं है। किसी भी जन समुदाय की राजनीतिक संस्थायें उस समुदाय की चेतना, विचारों, मनोभावनाओं व इच्छाओं द्वारा परिलक्षित होती हैं।"

जो कि सतत् परिवर्तनशील हैं, यही कारण है कि गत्यात्मकता न सिर्फ परिवर्तनों का समायोजन करती है, बल्कि परिवर्तनों के अनुरूप संशोधनों हेतु आवश्यक प्रतिसंभरण भी प्रदान करती है। इसी प्रकार के परिवर्तनों, नकारात्मक व सकारात्मक तत्वों के संयोजन से व्यवस्था में नूतन प्रवृत्तियां उत्पन्न होती है तथा किसी भी व्यवस्था के अध्ययन को पूर्ण करने के लिये इन नूतन प्रवृत्तियों का विश्लेषण अनिवार्य हो जाता है। इसी क्रम में शोधार्थी द्वारा चयनित विषय के विकास के सन्दर्भ में राज्य सभा में परिलक्षित नूतन प्रवृत्तियों के अध्ययन का प्रयास प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

भारतीय संसद के द्वितीय सदन राज्य सभा में दृष्टिगत नूतन प्रवृत्तियों के अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में संक्षेप में यह जानना समीचीन होगा कि राज्य सभा को अपना वर्तमान स्वरूप किन सोपानों से गुजरने के पश्चात् प्राप्त हुआ। इसके माध्यम से यह जानना सम्भव हो सकेगा कि वर्तमान राज्य सभा अपने मूल स्वरूप से कितनी भिन्नता अथवा समानता रखती है तथा मूल उद्देश्यों की प्राप्ति में किस सीमा तक सफल हो रही है।

भारतीय संसद का निर्माण द्विसदनात्मकता की अवधारणा के आधार पर किया गया है। द्विसदनात्मकता वास्तव में पश्चिमी देशों से आयातित अवधारणा नहीं है, जैसा कि सामान्यत: माना जाता है। पुराने समय में भारत में प्रशासन वैदिक सभा व वैदिक समिति के माध्यम से चलाया जाता था। जैसा कि श्री एल.एम. सिंघवी ने राज्य सभा में अपने उद्बोधन में माना।

"The popular principle was ingrained in the sabha of vedic conception and the more specialized concept of wise and thoughtful deliberation was reflected in what was called the vedic samiti".[1]

---

1. Upholding the federal ethos of Indian polity – L.M.Singhvi 200th session of Rajya Sabha on 14th Dec. 2003

"प्रचलित सिद्धान्त का स्थाई परिणाम वैदिक अवधारणा की सभा के रूप में आया और बौद्धिक तथा विचारपूर्ण विवेचना की विशेषीकृत अवधारणा प्रतिबिम्बित हुई जिसे वैदिक समिति कहा गया।" आधुनिक भारत में द्वितीय सदन के जन्म का मूल 1919 मॉन्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में प्राप्त किया जा सकता है। भारत में संवैधानिक सुधारों के सम्बन्ध में की गई सिफारिशों में प्रमुखता से काउंसिल ऑफ स्टेट्स के निर्माण को स्थान दिया गया। परन्तु इसका आधार संघीय नहीं था, न ही यह लोकतन्त्र, सम्प्रभुता व द्विसदनात्मकता के प्रचलित राजनीतिक सिद्धान्तों के अनुरूप थी। इन सिफारिशों को कार्यरूप में परिणित करते हुये भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत द्वितीय सदन की स्थापना की गई। तत्कालीन द्वितीय सदन में बड़ी संख्या में सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते थे तथा इसका मुख्य कार्य था, केन्द्रीय असेम्बली (मूलरूप से निर्वाचित सदन) के द्वारा लिये गये निर्णयों के मार्ग में बाधा उत्पन्न करना। सदन के निर्माण में अपनाये गये संकुचित दृष्टिकोण का स्पष्ट प्रमाण यह था कि महिलाओं को न तो द्वितीय सदन के सदस्यों को मत देने का अधिकार था, न ही चुनाव में प्रतिभागी बनने का। इस प्रकार औपनिवेशिक काल में द्वितीय सदन का मूल स्वरूप सरकारी अधिक था।

राज्य सभा के वर्तमान स्वरूप का श्रेय कुछ सीमा तक साइमन कमीशन तथा 1928 में प्रस्तुत मोती लाल नेहरू कमेटी रिपोर्ट को दिया जा सकता है। नेहरू कमेटी रिपोर्ट में अमेरिकी मॉडल को नकारते हुये (जिसमे सभी संघीय इकाइयों को सीनेट में समान प्रतिनिधित्व दिया गया है) संघात्मक आधार पर दूसरे सदन की अनुशंसा की। नेहरू कमेटी के समान भारत सरकार अधिनियम 1935 में भी द्वितीय सदन का प्रस्ताव किया गया। संविधान निर्माण की प्रक्रिया के अन्तर्गत संविधान सभा में संचालित वाद–विवाद भी यही दर्शाते हैं कि भारतीय संविधान निर्माता, शासन के संघात्मक स्वरूप को लेकर स्पष्टत: एकमत थे। 4 नवम्बर 1948 को संविधान सभा के समक्ष संविधान का प्रारूप प्रस्तुत करते हुये प्रारूप समिति के अध्यक्ष श्री भीमराव अम्बेडकर का स्पष्ट कथन था–

"The draft constitution is a federal constitution in as much as it establishes what may be called a dual polity. The dual polity under the proposed constitution will consist of the union of the centre and at the state".[1]

---

1. 4th Nov. 1948 CAD Vol VII Pg. 31, 33

("प्रारूपित संविधान संघीय संविधान था इसके द्वारा जो व्यवस्था स्थापित हुई उसे द्वैध राजव्यवस्था कह सकते हैं। प्रस्तावित संविधान के अन्तर्गत द्वैध राजव्यवस्था में केन्द्र व राज्यों का यूनियन निहित है।")

अर्थात प्रारूप संविधान के अनुसार भारतीय संविधान एक संघात्मक संविधान होगा, परन्तु संविधान में उक्त सन्दर्भों में यूनियन (union) शब्द का प्रयोग किया गया है। पुनः संघात्मक व्यवस्था के क्रियान्वयन हेतु जिन संस्थाओं को अपरिहार्य माना गया, राज्य सभा उनमें से एक है। श्री गोपालास्वामी आयंगर द्वारा सर्वप्रथम भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत द्वितीय सदन को महत्वपूर्ण मानते हुये, इस सम्बन्ध में प्रस्ताव सभा के समक्ष रखा गया –"The need for a second chamber has been felt practically all over the world wherever there are federations of any importance".[1]

("द्वितीय सदन की व्यवहारिक रूप से आवश्यकता सम्पूर्ण विश्व में हुई जहाँ भी कोई महत्वपूर्ण 'संघ' (फेडरेशन) थे।")

उक्त कथन संघात्मक व्यवस्था के सन्दर्भों में, उच्च सदन के महत्व को रेखांकित करने हेतु पर्याप्त है। पुनः मौलिक रूप में राज्य सभा की अवधारणा का विकास राज्यों के प्रतिनिधि सदन के रूप में हुआ व इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुये संविधान में राज्य सभा के सन्दर्भों में कुछ विशिष्ट प्रावधान किये गये। जो कि निम्न हैं–

1. राज्यों को राज्य सभा में जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया गया, यद्यपि यह संविधान सभा में विवाद का विषय भी रहा। श्री गोपालास्वामी आयंगर द्वारा राज्य सभा में राज्यों को जनसंख्या के आधार पर स्थान आवंटित करने का प्रस्ताव संविधान सभा के समक्ष रखा।[2] परन्तु श्री के. टी. शाह इसके पक्ष में नहीं थे। उनका मानना था कि संघात्मक व्यवस्था को सुदृढ़ करने हेतु राज्यों को राज्य सभा में समान प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिये।[3]

---

1. CAD Vol. IV 28th July 1947
2. N. Gopalaswamy Ayangar CAD Vol. IV 28th July 1947
3. कुलदीप नायर Srengthening Rs as a federal chamber Pg. no. 44, 200th session of Rajya Sabha on 14th Dec. 2003

2. दूसरा प्रावधान यह था कि राज्यों के प्रतिनिधियों का चुनाव सम्बद्ध राज्य के निम्न सदन के सदस्यों के माध्यम से ही किया जाये।
3. जैसा कि अध्याय के प्रारम्भ में उल्लेख किया गया है कि मूल संविधान में यह स्पष्ट निर्देशित था कि द्वितीय सदन हेतु निर्वाचित होने के लिये उम्मीदवार का सम्बद्ध राज्य का नागरिक होना अनिवार्य था।

6.1 जन प्रतिनिधित्व कानून में संशोधन का दुरूपयोग

राज्य सभा की चारित्रिक विलक्षणता व संघीय चरित्र के अनुरूप संविधान निर्माताओं द्वारा राज्य सभा सांसद का राज्य सभा का मूल निवासी होना अनिवार्य किया गया था। यह प्रावधान सैद्धान्तिक रूप से 'राज्यों के सदन' की परिभाषा के पूर्णत: अनुरूप था, क्योंकि सामान्यत: राज्य का मूल निवासी ही राज्य को समावेशी प्रतिनिधित्व प्रदान कर सकता है।

उक्त प्रावधान से सम्बद्ध प्रथम प्रवृत्तातमक परिवर्तन सन् 2003 के पश्चात् अस्तित्व में आया। इस वर्ष तत्कालीन राजगसरकार द्वारा जन प्रतिनिधित्व कानून 1951 में महत्वपूर्ण संशोधन करते हुये राज्य सभा का उम्मीदवार होने के लिये राज्य का नागरिक होने की अनिवार्यता समाप्त कर दी गई। सम्भव है संशोधनकर्ताओं का यह मानना रहा हो कि इस संशोधन के माध्यम से राष्ट्रीय व्यवस्थापिका के द्वितीय सदन में राष्ट्रीय चरित्र के नेताओं का प्रवेश हो सकेगा।उक्त सन्दर्भों में यह जानना समीचीन होगा कि यह नवीन व्यवस्था संघात्मक व्यवस्था की दृष्टि से मानक व्यवस्थाओं (संयुक्त राज्य अमेरिका, स्विट्जरलैण्ड, कनाडा) में उपस्थित समकक्ष प्रावधानों से किस प्रकार की साम्यता अथवा भिन्नता रखता है। यह तथ्य निष्कर्षों को पूर्णता प्रदान करने में सहायक होंगे।

भारतीय संघात्मक व्यवस्था के सर्वाधिक निकट संयुक्त राज्य अमेरिका की संघीय व्यवस्था का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि अमेरिकी द्वितीय सदन में प्रतिनिधित्व का आधार घटक इकाइयों की समानता का सिद्धान्त है, साथ ही सीनेटरों का उस राज्य का नागरिक होना अनिवार्य है। अमरीकी संविधान के अनुसार

"No person shall be a senator who shall not have attained to the age of thirty years and been nine years a citizen of the united states and who shall not when elected be an inhabitant of that state for which he shall be chosen"

("कोई भी व्यक्ति यदि 30 वर्ष का नहीं हुआ है और 9 वर्ष से संयुक्त राज्य अमरीका का नागरिक नहीं है तथा जो चुने जाने के समय उस राज्य का निवासी नहीं है, जिस राज्य के लिये उसे चुना जाना है, तो वह सीनेटर नहीं होगा")[1]

इसी प्रकार स्विस संघीय सभा का उच्च या द्वितीय सदन राज्य परिषद है, यद्यपि स्विस संविधान के अनुसार यह निम्न सदन का अधीनस्थ नहीं बल्कि समकक्ष है, तथापि चूंकि यह संघीय इकाइयों का प्रतिनिधित्व करती है इसलिये इसे अमेरिकी सीनेट या भारतीय राज्य सभा की श्रेणी में रखा जा सकता है। स्विस घटक इकाइयों (कैण्टनों) को राज्य सभा परिषद में समान प्रतिनिधित्व दिया गया है। यदि कोई व्यक्ति किसी कैण्टन से राज्य परिषद का सदस्य निर्वाचित होना चाहता है, तो उसके लिये उसे कैण्टन का नागरिक होना अनिवार्य होगा।

कनाडा की संघीय व्यवस्था भी भारतीय संविधान निर्माताओं हेतु प्रेरणास्त्रोंत रही है। भारतीय संघ को परिभाषित करने वाला शब्द 'यूनियन' (union) कनाडा के संविधान से ही लिया गया है। कनाडा के संविधान के अनुसार "The senators in Canada are appointed by the Governor General on a regional basis on the advice of the prime minister and they retire at the age of 75 years they must reside in the province or territory for which they are appointed"

("कनाडा में सीनेटर गवर्नर जनरल द्वारा क्षेत्रीय आधार पर प्रधानमन्त्री की सलाह पर नियुक्त होते है और वे 75 वर्ष की आयु में सेवानिवृत्त होते है। उन्हें उसी प्रान्त या क्षेत्र में निवास करना चाहिये जिसके लिये उनकी नियुक्ति हुई है।")[2]

निष्कर्षत: यह माने जाने के पर्याप्त आधार है कि संघीय प्रतिनिधित्व के दृष्टिकोण से निर्मित द्वितीय सदनों के सदस्यों हेतु वांछित योग्यता में, उस इकाई विशेष का नागरिक होने का प्रावधान अनिवार्य रूप से पाया जाता है। भारतीय संविधान में भी मूल रूप से यह व्यवस्था उपस्थित थी जिसे 2003 के संशोधन द्वारा समाप्त कर दिया गया। यह परिवर्तन राज्य सभा में परिलक्षित एक नूतन प्रवृत्ति का प्रमुख आधार बना। यह प्रवृत्ति है–

---

1. अमरीकी संविधान Art 1 section 3 clause 3
2. Select world constitution – J.C. johri – Pg. 501

"राज्य विशेष के प्रतिनिधि के रूप में ऐसे व्यक्तियों का निर्वाचित होना जो कि राज्य से कोई विशेष जुड़ाव नहीं रखते हैं"।

उक्त तथ्य की पुष्टि श्री कुलदीप नैय्यर के निम्न वक्तव्य द्वारा भी होती है–

"In a study from 1952-2002 nearly 5% of the elected Rajya Sabha members do not belong to the states that they have been elected from. Now the volume is increased upto 10%".[1]

("1952–2002 के एक अध्ययन के अनुसार राज्य सभा के चुने गये सदस्यों में से 5% सदस्य उन राज्यों से नहीं थे जिनसे वे चुने गये थे। अब यह संख्या 10% तक बढ़ गई है।")

प्रस्तुत चार्ट में शोध हेतु चयनित अध्ययनकाल में (2004 – 2010) राज्य सभा में उक्त सन्दर्भों से सम्बन्धित आंकड़े दर्शाये गये हैं।

रेखाचित्र संख्या – 18

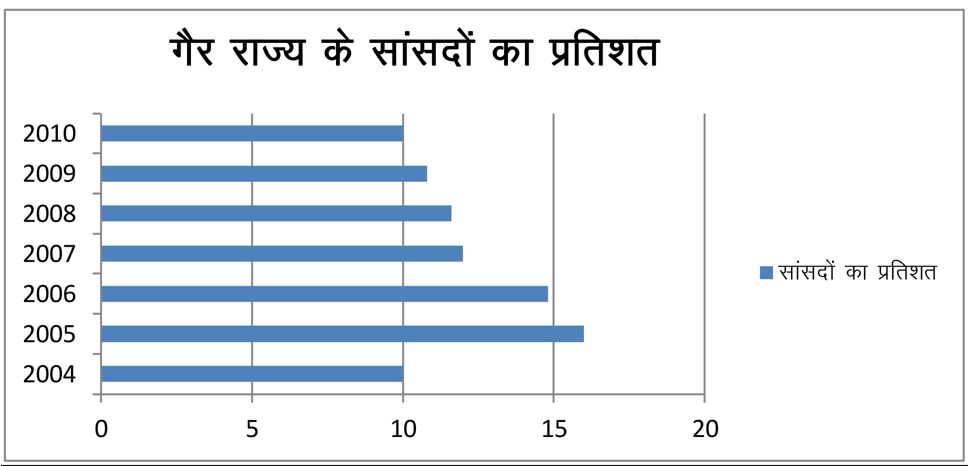

उक्त चार्ट से स्पष्ट है कि अध्ययन काल में राज्य सभा में गैर राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले सांसदों का प्रतिशत 10% से 16% के मध्य रहा। 2005 में अधिकतम 40 सांसद ऐसे थे जो अपने गृह राज्य का प्रतिनिधित्व नहीं कर रहे थे। यद्यपि शोध का विषय क्षेत्रीय दलों व राज्य सभा के अन्तर्सम्बन्धों पर आधारित है तथापि उक्त सन्दर्भों में यह जानना महत्वपूर्ण होगा कि, नागरिकता

1. Kuldeep N. Strengthening RS as the federal chamber of parliament 200th session of rajya sabha 14th Dec. 2003 Pg. 44

सम्बन्धी प्रावधान का दुरूपयोग व प्रावधान समाप्त होने के पश्चात् प्राप्त अवसर का सदुपयोग क्षेत्रीय दलों की अपेक्षा राष्ट्रीय दलों द्वारा अधिक किया गया। सम्भवत: क्षेत्रीय दलों के प्रत्याशियों का प्रभाव क्षेत्र सीमित होने के कारण अथवा अन्य राज्यों से प्रतिनिधित्व हेतु आवश्यक पृष्ठभूमि के अभाव के कारण यह सम्भव हुआ।

अध्ययनकाल के पश्चात् के वर्षों में भी निरन्तर इस प्रकार के उदाहरण विविध कारणों से चर्चा का केन्द्र रहे हैं। इनमें से कुछ प्रमुख उदाहरण निम्न हैं–

तालिका संख्या – 40

गैर राज्य से चयनित सांसदों के उदाहरण

सदस्य	गृह राज्य	प्रतिनिधित्व
अरूण जेटली	दिल्ली	गुजरात
स्मृति ईरानी	दिल्ली	गुजरात
सुरेश प्रभु	महाराष्ट्र	हरियाणा
एम जे अकबर	दिल्ली	झारखण्ड
चंदन मित्रा	कोलकत्ता, दिल्ली	मध्य प्रदेश
विजय गोयल	दिल्ली	राजस्थान
राम जेठमलानी	मुम्बई व दिल्ली	राजस्थान
मेहसिना किदवई	उत्तर प्रदेश	छत्तीसगढ़
करण सिंह	कश्मीर	दिल्ली
राज बब्बर	मुम्बई	उत्तराखण्ड
सीताराम येचुरी	आन्ध्रप्रदेश	पश्चिम बंगाल
पी चिदम्बरम	तमिलनाडु	महाराष्ट्र
मुख्तार अब्बास	दिल्ली	झारखण्ड
परिमल नाथवानी	गुजरात	झारखण्ड

के पी सिंह	चण्डीगढ़	झारखण्ड
कपिल सिब्बल	दिल्ली	उत्तर प्रदेश
वेंकैया नायडू	आन्ध्रप्रदेश	राजस्थान
निर्मला सीतारमण	तमिलनाडु	कर्नाटक
राम जेठमलानी	महाराष्ट्र	बिहार
शरद यादव	बिहार	मध्य प्रदेश
प्रेम चन्द गुप्ता	बिहार	हरियाणा
राशिद अल्वी	उत्तर प्रदेश	आन्ध्र प्रदेश
मनोहर पार्रिकर	गोवा	उत्तर प्रदेश
पी सी अलेकजेण्डर	महाराष्ट्र	चेन्नई

क्षेत्रीय दलों से इस प्रकार के उदाहरण अपवादस्वरूप प्राप्त होते हैं। इनमें दो प्रमुख नाम समाजवादी पार्टी (उत्तर प्रदेश) से हैं–

(1) जया बच्चन – मुम्बई – उत्तर प्रदेश

(2) अबु आसिम आजमी – मुम्बई – उत्तर प्रदेश

एक आकलन के अनुसार 2016 की राज्य सभा में भारतीय जनता पार्टी के 20% सांसद ऐसे हैं जो कि उस राज्य के नागरिक नहीं है, जिसका वे प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

उक्त सन्दर्भों में महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि वे कौनसे कारण हैं जिनकी वजह से राजनीतिक दल गैर नागरिकों को राज्य सभा के प्रतिनिधि के रूप में राज्य सभा में भेजते हैं। पर्यवेक्षण के आधार पर यह स्पष्ट है कि वे नेता जो लोक सभा के माध्यम से राष्ट्रीय व्यवस्थापिका में प्रवेश पाने में असमर्थ रहते हैं, उन्हें राज्य सभा द्वारा संसद में प्रवेश करवाया जाता है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इसका सर्वप्रमुख उदाहरण दिल्ली के श्री अरूण जेटली का गुजरात से निर्वाचन है। श्री अरूण जेटली 16 वीं लोक सभा चुनाव में पंजाब के निर्वाचन क्षेत्र अमृतसर से हारे थे। परन्तु राज्य सभा निर्वाचन के लिये भारतीय जनता पार्टी के वर्चस्व वाले गुजरात राज्य का प्रयोग करते हुये श्री जेटली को केन्द्रीय मन्त्रीमण्डल तक पहुंचाने का मार्ग प्रशस्त किया गया। यह

वास्तव में उसी प्रक्रिया की पुनरावृत्ति थी जो वर्ष 2004 में असम से श्री मनमोहन सिंह को निर्वाचित करके प्रधानमन्त्री पद तक पहुचाने के लिये अपनाई गई थी।

इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण अमेठी से चुनाव हारकर, गुजरात राज्य की प्रतिनिधि के रूप में राज्य सभा में पहुंची स्मृति ईरानी का है। कांग्रेस के कपिल सिब्बल दिल्ली के मूल निवासी हैं जो 1998 में बिहार से राज्य सभा सांसद बने, पुन: 2004 व 2009में दिल्ली के चांदनी चौक निर्वाचन क्षेत्र से लोक सभा चुनाव जीते तथा 2014 में हारने के पश्चात् राज्य सभा में उत्तर प्रदेश का प्रतिनिधित्व किया।इसी प्रकार आन्ध्र प्रदेश के मूल निवासी श्री बेंकैया नायडू 1978 व 1983 में आन्ध्र प्रदेश विधान सभा हेतु निर्वाचित हुये थे। 1998 के बाद से वे तीन बार राज्य सभा हेतु निर्वाचित हुये, परन्तु एक बार भी राज्य सभा में आन्ध्र प्रदेश का प्रतिनिधित्व नहीं किया। दो बार उनका निर्वाचन कर्नाटक राज्य के लिये हुआ तथा वर्तमान में वे राजस्थान राज्य से राज्य सभा सांसद हैं।

गृह राज्य के अतिरिक्त किसी अन्य राज्य से निर्वाचित प्रतिनिधि किस प्रकार सम्बद्ध राज्य के हितों को संरक्षित कर पायेंगे यह विचारणीय प्रश्न है। इस सन्दर्भ में आन्ध्र प्रदेश के मूल निवासी तथा वर्तमान में राजस्थान से राज्य सभा सांसद श्री बेकैंया नायडू का उदाहरण तथ्यों के स्पष्टीकरण में सहायक होगा। श्री नायडू 1998 के बाद से दो बार कर्नाटक व एक बार राजस्थान राज्य के प्रतिनिधि के रूप में राज्य सभा में निर्वाचित हुये। 9 जून 2009 से 21 फरवरी 2014 के बीच श्री नायडू ने 86 बार राज्य सभा वाद विवाद में भाग लिया तथा उनके द्वारा प्रस्तुत विषयों में से एक भी विषय कर्नाटक राज्य से सम्बन्धित नहीं था। उनके द्वारा राज्य सभा में निम्न विषय रखे गये–

- आन्ध्र प्रदेश पुनर्गठन विधेयक
- विशाखापट्नम में आग दुर्घटना
- तेलंगाना का निर्माण
- हैदराबाद में बम विस्फोट
- पंचकोड़ा (उत्तर प्रदेश) में रेल दुर्घटना
- उत्तर प्रदेश में भारी वर्षा
- लंदन में आन्ध्र छात्रों की हत्या

स्पष्ट है कि श्री नायडू द्वारा कर्नाटक अथवा राजस्थान से समस्याओं के चिन्तन व उन्हें सदन के संज्ञान में लाने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

इसी प्रकार तमिलनाडु की निर्मला सीतारमण ने कर्नाटक राज्य के प्रतिनिधि के रूप में राज्य सभा में प्रवेश किया। तमिलनाडु व कर्नाटक के बीच कावेरी जल विवाद प्रारम्भ से ही उग्र मुद्‌दा रहा है, ऐसे में तमिलनाडु की मूल निवासी कर्नाटक को उक्त विषय में सही प्रतिनिधित्व दे पायेंगी, यह विवाद का विषय है।

इस सन्दर्भ में क्षेत्रीय पार्टियों से सम्बन्धित दो उल्लेखनीय उदाहरण उत्तर प्रदेश की समाजवादी पार्टी के अबु आजमी व जया बच्चन है। अबु आजमी का मूल राज्य महाराष्ट्र है तथा वे 12 वीं महाराष्ट्र विधान सभा के सदस्य रह चुके हैं 2002 में उन्हें उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से राज्य सभा में भेजा गया परन्तु आंकड़ों पर नजर डाले तो उन्होंने महाराष्ट्र राज्य को ही प्रतिनिधित्व प्रदान किया।

श्रीमती जया बच्चन इस विषय में अपवाद है। वे यद्यपि मूल रूप से मुम्बई की नागरिक हैं तथा सांसद के रूप में उन्होंने उनसे अपेक्षित कार्यों से पूरी तरह न्याय किया है। परन्तु साथ ही दिल्ली व मुम्बई से सम्बन्धित विषयों को भी काफी गंभीरता के साथ राज्य सभा में प्रस्तुत किया।

संघवाद व द्विसदनात्मकता का सिद्धान्त सीधे–सीधे राज्य इकाइयों की स्वायत्ता व हित संरक्षण से सम्बन्धित है। परन्तु वे प्रतिनिधि जो राज्य के मूल नागरिक नहीं हैं, राज्य से अपरिचित हैं, वे किस प्रकार राज्य के हितों को संरक्षण देने में सक्षम होंगे यह एक विचारणीय प्रश्न है। राज्य सभा मात्र व्यक्तियों का संगठन नहीं है, न ही इसका चरित्र पूर्णरूपेण राष्ट्रीय है। यह राज्य के प्रतिनिधियों का सदन है तथा इसी कारण राज्य सभा को संघीय सदन का दर्जा दिया गया है। इस सम्बन्ध में अमरीकी संविधान के जनक जेम्स मेडिसन को उद्‌धत करना आवश्यक है।

"The house of representative will derive it's power from the people of America, so that it is National. The senate on the other hand will derive it's power from the states as political and co equal socities than it is federal and not National".

("प्रतिनिधि सभा अपनी शक्ति अमरीका के लोगों से प्राप्त करती है, इसलिये वह राष्ट्रीय है। दूसरी ओर सीनेट राजनीतिक व समरूपी समाजों के रूप में अपनी ताकत राज्यों से प्राप्त करती है।, इसलिये वह संघात्मक है और राष्ट्रीय भी।")[1]

---

1. James Medison Father of USA constitution – Representing the federal chamber of the Indian constitution – Shri Era Sezhiyan (EX MP RS) Pg. no. 57, 200th session of Rajya Sabha on 14th Dec. 2003

उक्त कथन के सन्दर्भ में राज्य सभा का विश्लेषण करने पर हम कह सकते हैं कि राज्य सभा वास्तविक रूप से संघीय सदन तब ही माना जायेगा जब वह अपनी शक्ति राज्यों से अर्जित करे तथा यह शक्ति राज्य सभा में राज्यों के वास्तविक प्रतिनिधियों के माध्यम से प्रवेश करेगी। अत: नागरिकता सम्बन्धी नियमों में संशोधन वास्तव में संघात्मक व्यवस्था के मूल आधार को कमजोर करने के समान है।

निष्कर्षत: राज्य सभा की निर्वाचन प्रक्रिया का निर्धारण सदन के संघीय चरित्र के अनुरूप किया गया था। नागरिकता सम्बन्धी प्रावधान में संशोधन व गैर राज्य के नागरिकों का प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचन न सिर्फ राज्य सभा के संघीय स्वरूप हेतु घातक है, बल्कि वह राज्यों को प्रतिनिधित्व के समुचित अधिकार से भी वंचित करता है।

उक्त प्रवृत्ति का परीक्षण क्षेत्रीय दलों के परिप्रेक्ष्य में करने पर स्पष्ट है कि क्षेत्रीय दलों द्वारा संशोधित प्रावधान का अधिक लाभ उठाने का प्रयास नहीं किया गया है। संघात्मक व्यवस्था हेतु इसे एक सकारात्मक लक्षण माना जा सकता है। संघीय प्रणाली का मूल तत्व विविध हितों का समावेशन है तथा क्षेत्रीय दल इन हितों के प्रतिनिधित्व का माध्यम हैं।

नागरिकता सम्बन्धी प्रावधान में संशोधन वास्तव में प्रतिनिधित्व के अधिकार का हनन है तथा संतोषजनक तथ्य यह है कि इस प्रावधान का राष्ट्रीय दलों के समान दुरूपयोग न करके क्षेत्रीय दलों द्वारा संघीय प्रणाली के मूल स्वर को कुछ सीमा तक सुरक्षित रखा गया है।

6.2 लोक सभा व राज्य सभा में दलगत विषमरूपता

राज्य सभा संगठन पर क्षेत्रीय दलों का दूसरा प्रमुख प्रभाव लोक सभा व राज्य सभा में समग्र रूप से क्षेत्रीय दलों की लगभग समान उपस्थिति परन्तु दलीय सहभागिता के सन्दर्भों में विषमरूपता के रूप में सामने आया।

सन्दर्भित वर्षों में दोनो सदनों में समग्र रूप से क्षेत्रीय दलों के प्रतिशत में विशेष अन्तर नहीं है। दोनो ही सदनों में क्षेत्रीय दलों का एक चौथाई से अधिक सीटों पर विस्तार है। निर्वाचन प्रणाली की विशिष्टताओं के परिणामस्वरूप संसद के दोनो ही सदनों में राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दलों का अनुपात लगभग समान है।

रेखाचित्र संख्या – 19

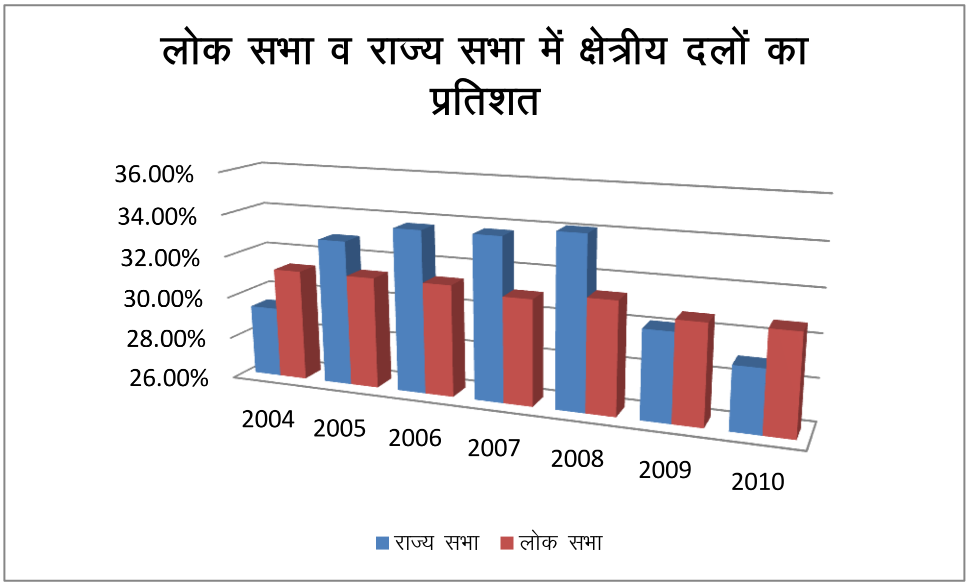

प्रथम दृष्टया यह परिणाम संविधान निर्माताओं की इच्छा के विपरीत प्रतीत होता है जिन्होंने भारतीय संसद के दोनो सदनों को पृथक स्वरूप प्रदान करने हेतु विशेष प्रयास किये थे। परन्तु मात्र कुल प्रतिशत समान होने के आधार पर लोक सभा व राज्य सभा को समरूपी नहीं माना जा सकता है। अंतिम निष्कर्ष तक पहुंचने से पूर्व दोनो सदनों में दलीय प्रतिनिधित्व के प्रारूप, तदनुरूप दोनो सदनों में समरूपता अथवा विषमरूपता का विश्लेषण ऐतिहासिक व समकालीन दोनो ही सन्दर्भों में करना समीचीन होगा।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के वर्षों में, चतुर्थ आम चुनाव (1967 वर्ष) तक कांग्रेस के वर्चस्व का काल था। केन्द्र व राज्य दोनो स्तर पर कांग्रेस का शासन था तथा राज्य सभा जिसका निर्वाचन मूलत: राज्य विधायिकाओं पर निर्भर करता है स्वाभाविक रूप से लोक सभा की प्रतिगामी थी। 1967–1989 का काल दो अर्थों में महत्वपूर्ण था। प्रथम–1971 में समय से पूर्व लोक सभा चुनाव करवाकर श्रीमती गांधी ने लोक सभा व विधान सभा के एक साथ सम्पन्न होने वाले निर्वाचनोंका चक्र तोड़ा।यह परिवर्तन राजनीतिक दलों के लिये एक प्रोत्साहन के समान था।दूसरा इस काल में शनै:-शनै: कांग्रेस पतन की ओर अग्रसर हो रही थी। साथ ही सीमित क्षेत्रों में सक्रिय क्षेत्रीय दल पृथक विधान सभा चुनावों के माध्यम से सक्षम प्रतिस्पर्धी के रूप में सामने आने लगे थे। परन्तु इस काल में भी राज्य सभा व लोक सभा में विषमरूपता दृष्टिगोचर नहीं हुई।

1989 के बाद का समय भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में अनेक परिवर्तनों का काल था। इस काल में भारत की दलीय व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन देखे गये। जैसे कि कांग्रेस का पतन

(यादव एवं पाल्शीकर, हासन 2012), क्षेत्रीयतावाद का उदय (यादव 1996, पाई 1996, हासन 1999, नगिनदास एवं ठक्कर 2000), संघात्मकता का विस्तार (अरोरा 2000, वर्ने 2003), दलीय प्रतिस्पर्धा (कैलाश 2014) आदि।

क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का मात्रात्मक व गुणात्मक दोनो ही दृष्टिकोण से विस्तार। इसका स्वाभाविक परिणाम था राज्य स्तरीय व केन्द्रीय व्यवस्थापिकाओं में इन दलों की संख्या में वृद्धि।

तालिका 41

राज्य सभा तथा लोक सभा में क्षेत्रीय दलों की संख्या में वृद्धि

वर्ष	राज्य सभा	लोक सभा
1952	6	15
1994	20	40
2013	27	35
2017	31	40

राज्य सभा तथा लोक सभा में राजनीतिक दलों (विशेषकर क्षेत्रीय दलों) की संख्या में वृद्धि स्वत: ही राज्यों में इन दलों की सक्रियता को रेखांकित करती है। Schakel and Swenden (2016) ने अपने अध्ययन में (1952 से 2014 तक के निर्वाचनों के अध्ययन के माध्यम से) यह तथ्य स्थापित किया कि राज्य विधान सभा निर्वाचन तथा लोक सभा निर्वाचन में समान मतदाता समूह का मतदान व्यवहार अलग–अलग होता है। साथ ही उनका मानना था कि अलग–अलग राज्यों के निर्वाचन में परिणामों में अत्याधिक मात्रा में विचलन पाया जाता है। राज्य सभा के सन्दर्भों में उक्त तर्क को व्यापकता देते हुये राज्य सभा के दलीय परिदृश्य को सरलता से समझा जा सकता है। राज्य सभा का मतदाता समूह राज्य व्यवस्थापिका के विधायक होते है, जिनका निर्वाचन वहीं मतदाता समूह करता है जो लोक सभा सांसदों को चुनता है। परन्तु मतदान व्यवहार का परिवर्तन अंतत: लोक सभा व राज्य सभा में पृथक दलीय समीकरणों के रूप में हमारे सामने आता है तथा दोनो सदनों में विषमरूपता को प्रोत्साहित करता है।

गठबन्धन व्यवस्था के अन्तर्गत संसद में राजनीतिक दल सामान्य रूप से या तो सत्तापक्ष गठबन्धन का भाग होते है अथवा विपक्षी गठबन्धन में सहभागी होते है। यद्यपि कुछ दल इन दोनो गठबन्धन से विलग अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के आधार पर विधायी प्रक्रिया में भाग लेते हैं।

स्वाभाविक रूप से लोक सभा में सत्तापक्ष गठबन्धन बहुमत की स्थिति में ही होगा, अब यदि यही गठबन्धन राज्य सभा में भी बहुमत की स्थिति में होगा तो यह समरूपता की स्थिति मानी जायेगी अन्यथा यह विषमरूपता की स्थिति होगी उक्त तथ्य को 2014 के निर्वाचन के बाद लोक सभा व राज्य सभा के दलीय आंकड़ों के माध्यम से सरलता से समझा जा सकता है।

2014 लोक सभा निर्वाचन के पश्चात् दोनो सदनों की दलीय स्थिति

तालिका संख्या – 42

लोक सभा	**राज्य सभा**	**राज्य सभा में क्षेत्रीय दल**
भाजपा – 282 सहयोगी – 33 NDA + –315/545	भाजपा – 47 सहयोगी – 13 NDA + – 60/245	AIADMK – 17 AITC – 9 SP – 9 BJD – 6 JD(U) – 9 DMK – 6 BSP – 15 TDP – 4 RJD – 2

है। 2014 के लोक सभा निर्वाचन इस अर्थ में महत्वपूर्ण हैं कि लम्बे अन्तराल के पश्चात् कोई राजनीतिक दल लोक सभा में अकेले बहुमत प्राप्त कर सका था। ऐसे में यह प्रश्न चर्चा के केन्द्र में था कि प्रचण्ड बहुमत पाने के बाद भी भारतीय जनता पार्टी ने अकेले सरकार बनाने का विकल्प क्यों नहीं चुना। इस प्रश्न का जवाब तत्कालीन राज्य सभा के दलीय समीकरणों में निहित है।

भारत में वर्ष 2014 लोक सभा निर्वाचन से प्राप्त आंकड़े उक्त तथ्य की पुष्टि करते हैं कि लोक सभा में पूर्ण बहुमत होने के बाद भी राज्य सभा में भारतीय जनता पार्टी के पास मात्र 19% सीटें थी तथा गठबन्धन सहयोगियों के साथ मिलकर भी यह आंकड़ा 24.48% ही होता है, जो कि राज्य सभा में किसी विधेयक को पारित करवाने के लिये आवश्यक बहुमत से काफी कम है। यह विश्लेषण स्वाभाविक रूप से अनेक नई सम्भावनाओं को जन्म देता है। स्पष्ट है कि लोक सभा व

राज्य सभा में दलीय प्रतिनिधित्व के सन्दर्भों में विषमरूपता ही वह प्रमुख प्रेरक तत्व है, जिसके कारण 2014 में BJP के स्थान पर NDA सत्तारूढ़ हुई

Lijphart (1994) ने अपने अध्ययन में यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया कि व्यवस्थापिका की संरचना भी सरकार बनाने की प्रक्रिया को प्रभावित करती है अर्थात एकसदनीय अथवा द्विसदनीय व्यवस्थापिका में सरकार बनाने के तरीके अलग–अलग होते हैं। विशेषकर द्विसदनात्मक व्यवस्थापिका में जहां विधायी प्रक्रिया में द्वितीय सदन भी समान रूप से सहभागी होता है वहां गठबन्धन का आकार द्वितीय सदन की दलीय संरचना से भी प्रभावित होता है। अग्रलिखित अध्ययन [Carruba and Volden 2000, Crombez 1996, Diermeier and Merlo 2000] भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि भविष्य के राजनीतिक लाभ को ध्यान में रखते हुये राजनीतिक दलों द्वारा बड़े गठबन्धन का निर्माण किया जाता है।

उक्त विश्लेषण स्वाभाविक रूप से एक नवीन सम्भावना को जन्म देता है–

राज्य सभा में आवश्यक बहुमत प्राप्त करने के लिये सरकार लोक सभा में भी अपने गठबन्धन को विस्तार देने का प्रयास करेगी। यह सम्भावना न सिर्फ क्षेत्रीय पार्टियों को राष्ट्रीय राजनीतिक परिदृश्य में प्रवेश का अवसर प्रदान करती है, बल्कि वृहद गठबन्धन का कारण भी बनती है जैसा कि Sridharan (2012) ने अपने अध्ययन में माना। 2014 में भाजपा द्वारा अकेले सरकार न बनाकर NDA गठबन्धन को साथ लेकर चलना इसका स्पष्ट उदाहरण है साथ ही राजनीतिक प्रतिद्वन्दिता को भूलकर ऐसे दलों का भी गठबन्धन में स्वागत करना होता है, जो कि किसी समय में राजनीतिक प्रतिद्वन्दी रहे हों जनता दल (यूनाइटेड) का राष्ट्रीय जनता दल से अलग होकर NDA में शामिल होना ऐसा ही एक दृष्टान्त है।

मात्र गठबन्धन विस्तार ही राज्य सभा में बहुमत प्राप्त करने का एकमात्र साधन नहीं है। राज्य सभा में दलीय समीकरण अपने पक्ष में करने के प्रयासों के कारण, राज्य सभा निर्वाचन प्रक्रिया में एक बड़ा दोष निम्न नूतन प्रवृत्ति के रूप में सामने आया है।

6.3 राज्य सभा निर्वाचन में भ्रष्टाचार

उक्त सन्दर्भों में राज्य सभा निर्वाचन प्रक्रिया में 2003 में तत्कालीन भाजपा गठबंधन सरकार द्वारा किये गये संशोधन के विषय में जानना समीचीन होगा।

2003 से पूर्व तक राज्य सभा में गुप्त मतदान होता था। परन्तु जन प्रतिनिधित्व अधिनियम–1951 में संशोधन के पश्चात् वोट देने से पहले पार्टी के अधिकृत प्रतिनिधि को दिखाना होगा। संशोधन का कारण क्रॉस वोटिंग को रोकने का प्रयास बताया गया। एक राजनीतिक दल एक बार में दो लोगो को नियुक्त करता है, जिनमें से मतपत्र देखने का अधिकार एक ही सदस्य को होता है। दूसरे सदस्य को मतपत्र दिखाने पर वह मतपत्र निरस्त माना जाता है।

इसके अतिरिक्त वोट देने के लिये विधेयकों को रिटर्निंग अफसर द्वारा दिये गये एक विशेष रंग के पेन का ही प्रयोग करना होता है। साथ ही विधायकों को मतपत्र पर केवल संख्या द्वारा वरीयता दर्शानी होगी इन नियमों को न मानने की स्थिति में मतपत्र स्वीकार नहीं किया जाता है। परन्तु इस व्यवस्था में कुछ व्यवहारिक खामियां भी हैं। जैसे कि यह सुनिश्चित करने का कोई साधन नहीं है कि विधायक कोई अन्य सामग्री (किसी अन्य रंग का पेन) लिये बिना मतदान करने कक्ष में जायें। साथ ही दल–बदल विरोधी कानून (anti defection law) राज्य सभा पर लागू नहीं होता है इसलिये क्रॉस वोटिंग करने वाले विधायक पर सम्बद्ध राजनीतिक पार्टी अनुशासनात्मक कार्यवाही तो कर सकती हैं, परन्तु उसे सदन की सदस्यता से निष्कासित नहीं किया जा सकता है।

इन्हीं खामियों का प्रयोग करके राज्य सभा निर्वाचन के परिणामों को प्रभावित करने के प्रयास हाल के दिनों में देखने में आये हैं। हरियाणा देश का पहला ऐसा राज्य है जहां राज्य सभा निर्वाचन की प्रक्रिया के सम्बन्ध में FIR दर्ज की गई। भारतीय निर्वाचन आयोग ने राज्य के मुख्य निर्वाचन अधिकारी वकील आर. के. आनन्द की शिकायत के आधार पर FIR दर्ज करवाने का आदेश दिया। आर. के. आनन्द इस निर्वाचन में मीडिया मुगल सुभाष चन्द्रा से हार गये थे। आयोग को इस बात के पुख्ता सबूत प्राप्त हुये थे कि वोटिंग के लिये अनाधिकृत पेन का प्रयोग किया गया, जिसके कारण 11 कांग्रेस वोट निरस्त कर दिये गये। हरियाणा असेम्बली के सचिव आर.के. नंदल के खिलाफ भी कार्यवाही की सिफारिश इस आधार पर की गई कि उन्होंने पर्यवेक्षण कार्य में लापरवाही की। वे निर्वाचन प्रक्रिया में रिटर्निंग अधिकारी का कार्यभार संभाल रहे थे। चन्द्रा की जीत आश्चर्य का विषय इसलिये थी क्योंकि कांग्रेस ने अपने विधायकों को INLD के उम्मीदवार आर. के. आनन्द को वोट देने का निर्देश दिया था।

हरियाणा के ही कांग्रेस विधायक श्री रणदीप सुरजेवाला का मत इस आधार पर निरस्त किया गया कि उन्होंने अनाधिकृत सदस्य को अपना मत दिखा दिया था।

11 जून 2016 के राज्य सभा चुनाव उक्त प्रकरण के अतिरिक्त निम्न उदाहरणों के कारण भी चर्चा में रहे।

(1) कर्नाटक से उद्योगपति विजय माल्या का निर्वाचन

(2) कर्नाटक से जनता दल (सेक्यूलर) के विधायक द्वारा वोट के बदले पैसे की मांग की गई।

(3) उत्तर प्रदेश से प्रीती महापात्रा धनबल से राज्य सभा सांसद बनने की आरोपी। इसी प्रकार के आरोप झारखण्ड के महेश पोद्दार, राजस्थान के कमल मोरारका व कर्नाटक के के. सी. रामामूर्ति पर भी लगाये गये।

(4) लगभग इसी प्रकार का प्रकरण 2017 गुजरात राज्य सभा निर्वाचन में देखने में आया। गलत अधिकारी को मतपत्र दिखाने के कारण कांग्रेस के दो मत निरस्त किये गये। मतदान से पूर्व जिस प्रकार कांग्रेस की सदस्यता से इस्तीफा दिया उसे देखकर धन बल के प्रयोग की आशंका को बल मिला।

2017 गुजरात राज्य सभा चुनाव न सिर्फ जोड़–तोड़ व भ्रष्टाचार के चलते चर्चा के केन्द्र में रहा बल्कि एक अन्य कारण भी इस निर्वाचन को विशिष्टता प्रदान करता है। 1952 में राज्य सभा के निर्माण से लेकर वर्तमान तक ऐसा एक भी उदाहरण नहीं है जबकि राज्य सभा निर्वाचन से पूर्व दल के विधायकों को राजधानी से दूर आलीशान कैद व निगरानी में रखा गया तथा निर्वाचन से एक दिन पूर्व राजधानी वापस लाया गया। यह उदाहरण कांग्रेस पार्टी द्वारा 2017 राज्य सभा निर्वाचन में प्रस्तुत किया गया। इसका एकमात्र उद्देश्य विधायकों को विपक्षी दल के सम्पर्क से दूर रखना था। इस प्रकार का कार्य स्थानीय निकाय चुनावों अथवा अविश्वास प्रस्ताव पर वोटिंग के समय पूर्व में भी किया गया है, परन्तु राज्य सभा निर्वाचन के सम्बन्ध में यह पहला मौका था जबकि इस तरह की घटना देखने में आई।

6.4 प्रक्रियागत नूतन प्रवृत्तियाँ

स्पष्ट है कि मात्र संगठन में सहभागिता का विश्लेषण क्षेत्रीय दलों के राज्य सभा पर पड़ने वाले प्रभाव को समझने हेतु पर्याप्त नहीं है। बल्कि प्रक्रियागत अध्ययन के माध्यम से, जिसमे क्षेत्रीय दलों की संख्या, राज्य सभा की निर्वाचन प्रणाली, गठबन्धन संस्कृति की सीमायें आदि अन्तर्निर्भर उपव्यवस्थाओं का विश्लेषण भारतीय संघात्मक व्यवस्था के सन्दर्भों में करने पर ही यह जानना सम्भव हो सकेगा कि राज्य सभा में उपस्थित क्षेत्रीय दल राज्य सभा के कार्य व्यवहार को किस प्रकार संशोधित कर रहे हैं।

क्षेत्रीय अथवा राज्य स्तरीय दल अपने सीमित कार्यक्षेत्र में लम्बे समय से सक्रिय होते हैं तथा स्थानीय जन मानस पर उनकी कार्यविधियों का गहरा प्रभाव होता है। क्षेत्रीय दलों की बदलती

भूमिका के परिप्रेक्ष्य में राज्य भारतीय राजनीति का महत्वपूर्ण मंच बन गये हैं। इसी तथ्य को स्थापित करते हुये योगेन्द्र नारायण व सुहास पाल्शीकर (2003, 2008, 2009) ने अपने निबन्धों की श्रृंखला में यह माना कि नागरिक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु राज्य सरकारों के साथ संवाद करने की बेहतर स्थिति में हैं। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुये कैलाश (2011) ने माना कि राज्य स्तरीय राजनीति राष्ट्रीय राजनीति को नवीन अर्थ प्रदान कर रही हैं। के. कैलाश ने अपने अध्ययन में यह भी माना कि राज्य स्तरीय दल, राष्ट्रीय दलों के नियन्त्रण में काम नहीं करते हैं। बल्कि सौदेबाजी की वृहद सम्भावनाओं के चलते अनेकों बार राष्ट्रीय राजनीति की कार्यसूची तय करते हैं। यही कारण है कि क्षेत्रीय दलों की सक्रिय उपस्थिति राज्य सभा के विधायी व्यवहार में भी अनेक परिवर्तन लाने में सक्षम है। द्विसदनात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत विधेयक पारित करने हेतु आवश्यक बहुमत का आकार बड़ा होता है। स्थितियां तब अधिक जटिल हो जाती है जब या तो दोनो सदनों के बीच हितों का टकराव होता है अथवा दलीय सदस्यता के दृष्टिकोण से दोनो सदन विषमरूपी होते हैं। (Buchanan and Jullock 1962) यदि दोनो सदन दलीय सहभागिता की दृष्टि से एक दूसरे को प्रतिबिम्बित करते हैं तो विधायन या व्यवस्थापन सम्बन्धी कार्यों में मतभेद की सम्भावना कम होती है। क्योंकि राजनीतिक दल दोनो सदनों के बीच संयोजक का कार्य करते हैं तथा सांसदों को दल के एजेण्डा के अनुसार कार्य करने को प्रेरित करते हैं परन्तु ऐसा न होने की स्थिति में विधायी व व्यवस्थापन सम्बन्धी कार्यों की दिशा का निर्धारण पूर्णत: दलीय समीकरणों पर निर्भर करता है।

उक्त सन्दर्भों में अधिकांश अध्ययन निम्न सदन की गतिविधियों पर केन्द्रित होते रहे हैं क्योंकि निम्न सदन के परिणाम सरकार की स्थिति को प्रभावित करते हैं। जबकि संसदात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत किसी विधेयक को कानून बनने की प्रक्रिया में दोनो सदनों से गुजरना होता है। विषमरूपी सदन होने की स्थिति में दोनो सदनों के बीच असहमति की सम्भावना बढ़ जाती है जो अंतत: दोनो सदनों के बीच गतिरोध का कारक भी बनती है।

प्रस्तुत अध्ययन का विषय राज्य सभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव से सम्बन्धित है, अत: विषमरूपता की स्थिति में क्षेत्रीय दलों के व्यवहार के सम्बन्ध में विश्लेषण समीचीन होगा।

वर्तमान राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों की मूलत: तीन श्रेणियां हैं–

(1) वे दल जो NDA का भाग है।

(2) वे दल जो UPA का भाग है।

(3) वे दल जो उक्त दोनों गठबन्धनों का हिस्सा नहीं हैं। ये दल मुद्दों, राज्य स्तरीय हितों अथवा राजनीतिक लाभ के आधार पर किसी भी गठबन्धन का साथ दे सकते हैं।

ऐसे उदाहरण भी है कि अलग–अलग विधेयकों के सम्बन्ध में इन दलों द्वारा पृथक–पृथक व्यवहार का परिचय दिया गया जैसे की महिला आरक्षण बिल पर चर्चा के समय इसके कुछ प्रावधानों से असहमत होते हुये तृणमूल कांग्रेस (पश्चिम बंगाल) व बहुजन समाज पार्टी (उत्तर प्रदेश) ने सदन का बहिष्कार किया, जबकि लोकपाल बिल पर चर्चा के समय तृणमूल कांग्रेस की नेत्री ममता बनर्जी ने स्वयं माना कि वे विधेयक के कुछ प्रावधानों से असहमत हैं परन्तु वे सरकार का साथ देंगी। उनके अनुसार उनके लिये उनका चुनाव घोषणा पत्र रक्षा कवच के समान है, उनके भारतीय जनता पार्टी के साथ वैचारिक मतभेद हैं, परन्तु यदि ऐसे मामले सामने आते है जो लोगो की मदद करते हों तो वे सहयोग कर सकते हैं।

{For us our election manifesto is like Raksha Kavach. We have ideological differences with Bhartiya Janta Party but if there are matters which will help people, we can cooperate}…………………………..-Banerjee on Trinmool's role

इसी विचारधारा के अन्तर्गत तृणमूल कांग्रेस ने GST विधेयक को समर्थन दिया परन्तु महिला आरक्षण बिल के प्रावधानों का विरोध किया।

लोकपाल बिल कई अर्थों में महत्वपूर्ण माना जा सकता है। संप्रग शासन काल में 30 दिसम्बर 2011 को यह विधेयक राज्य सभा में प्रस्तुत किया गया। लोक सभा में राष्ट्रीय जनता दल, समाजवादी पार्टी व बहुजन समाज पार्टी ने वोटिंग का बहिष्कार किया, जिससे बहुमत हेतु आवश्यक वोटों की संख्या घट गई तथा विधेयक लोक सभा में आसानी से पारित हो गया। परन्तु राज्य सभा में लोकपाल विधेयक पर चर्चा के बीच ये क्षेत्रीय दल हंगामे के सूत्रधार रहे। इन दलों द्वारा किये गये हंगामे व विरोध तथा राष्ट्रीय जनता दल के सांसद द्वारा विधेयक की प्रतिलिपि फाड़े जाने के बाद 30 दिसम्बर 2011 रात 12 बजे से पूर्व सदन की कार्यवाही स्थगित कर दी गई। विपक्ष ने इस हंगामे को वोटिंग टालने का माध्यम बताया।

इसी प्रकार भूमि अधिग्रहण विधेयक पारित करने की प्रक्रिया के दौरान बीजू जनता दल, तृणमूल कांग्रेस, समाजवादी पाटी र्व राष्ट्रीय जनता दल ने राज्य सभा में चर्चा का बहिष्कार किया। जबकि लोक सभा में ध्वनिमत द्वारा पारित इस बिल के विरोध में मात्र 19 वोट डाले गये।

उक्त प्रवृत्ति को इस आधार पर समझा जा सकता है कि लोक सभा में गठबन्धन–धर्म निभाने के साथ–साथ ये क्षेत्रीय दल राज्य सभा का प्रयोग करके राज्य सम्बन्धी हितों को स्वर प्रदान करते हैं साथ ही अपने मूल मतदाता समूह के सामने अपनी बेहतर छवि प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं।

राज्य सभा में बहुमत प्राप्त न होने की स्थिति में महत्वपूर्ण विधेयकों को वित्तीय विधेयकों के रूप में प्रस्तुत करना विधायी प्रक्रिया में आया एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है। इसके सर्वप्रमुख उदाहरण है 11 March 2016 को लोक सभा में पारित आधार बिल (2016) तथा 6 May 2015 को पारित GST Bill. आधार बिल को वित्तीय विधेयक के रूप में प्रस्तुत एवं पारित करने को लेकर प्रमुख क्षेत्रीय दलों ने रोष जताया तथा इसे राज्य सभा की उपेक्षा का प्रयास बताया। समाजवादी पार्टी व बीजू जनता दल ने इस प्रक्रिया का विरोध किया। राज्य सभा ने तय समय में विधेयक को कुछ संशोधनों के साथ लोक सभा में वापस भेजा परन्तु लोक सभा ने इन सभी संशोधनों को अस्वीकार करते हुये आधार बिल पारित कर दिया। महत्वपूर्ण विधेयकों को वित्तीय विधेयक के रूप में पारित करने की प्रवृत्ति का विरोध करते हुये 21 जून 2015 को राज्य सभा सभापति हामिद अंसारी ने राज्य सभा सांसदों से विधेयक की इस प्रकार की मनमानी व्याख्या के प्रति जागरूक रहने का आग्रह किया। 1984 के बाद 2014 में पहली बार ऐसा अवसर आया जबकि लोक सभा में एक राजनीतिक दल का पूर्ण बहुमत हो जबकि राज्य सभा में आवश्यक बहुमत का अभाव हो। उचित होता यदि दोनो सदनों द्वारा सकारात्मक रूख का परिचय देते हुये, राजनीतिक हितों से ऊपर उठकर विधेयकों पर विचार किया जाता। परन्तु राज्य सभा में अल्पमत की समस्या के समाधान के स्थान पर सदन की उपेक्षा कर देना लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिये घातक है।

28 जुलाई 1947 को द्विसदनात्मकता की व्यवस्था को अपनाते समय श्री गोपालास्वामी आयंगर ने कहा था– कि उच्च सदन, अनुभवी लोगों द्वारा विद्वतापूर्ण वाद–विवाद तथा चर्चा के माध्यम से उतावलेपन में लिये गये निर्णयों को रोकने में एक साधन का कार्य कर सकता है।

"Upper house can act as an instrument to delay action on a hasty conceived decision, through debates and discussions by seasoned people with an amount of learning and importance".

परन्तु यदि विधेयक के प्रारूप में परिवर्तन करके राज्य सभा को संशोधन का अधिकार नहीं दिया जाता है तो यह द्विसदनात्मकता का उल्लंघन होगा।

राज्यों की अर्थव्यवस्था को स्पष्ट रूप से प्रभावित करने वाले विधेयक के सम्बन्ध में किसी प्रकार के निर्णय का अधिकार राज्यों के सदन (राज्य सभा) को न दिया जाना स्पष्ट इंगित करता है कि राज्य सभा के दलीय समीकरण सत्ता पक्ष के अनुकूल होना विधायी प्रक्रियाओं के सुचारू सम्पादन के लिये कितना आवश्यक है।

संविधान निर्माताओं द्वारा राज्य सभा को आवंटित कार्य थे लोक सभा द्वारा पारित विधेयकों का दलीय राजनीतिक दृष्टिकोण से परे जाकर पुनर्निरीक्षण करना, गंभीर बहस, सकारात्मक व रचनात्मक आलोचना आदि। परन्तु जैसा पूर्व राज्य सभा सांसद श्री कुलदीप नैय्यर ने भी माना।

"वास्तव में इन कुछ वर्षों में राज्य सभा बहुत कुछ लोक सभा की भांति हो गई है। अधिक दलीय, अधिक राजनीतिक" "Rajya Sabha has offcourse become over the years very much more like Lok Sabha much more Party Political".[1]

अर्थात् दलगत बाध्यतायें लोक सभा के समान राज्य सभा के कार्यकरण को भी प्रभावित करने लगी है। लोक सभा के समकक्ष राजनीतिक व दलगत स्वरूप हो जाने के कारण राज्य सभा को आवंटित कार्य स्वत: ही पुनर्परिभाषित हो गये हैं। ऐसी स्थिति में यदि दलीय समीकरण सत्तापक्ष के अनुरूप होते हैं तो राज्य सभा में बहस व निष्पक्ष दोहरान कार्य की संभावना ही समाप्त हो जाती है तथा यदि दलीय समीकरण सत्तापक्ष के अनुरूप नहीं होते तो विपक्ष द्वारा राज्य सभा का प्रयोग विधायी प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न करने हेतु करने की संभावना बढ़ जाती है।

प्रस्तुत अध्याय में पूर्व में विधेयकों के उदाहरण के माध्यम से यह तथ्य रेखांकित किया जा चुका है। उक्त संभावनायें स्वत: ही निर्वाचन प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं व राजनीतिक दलों को राज्य सभा के दलीय समीकरण अपने पक्ष में करने हेतु प्रत्येक प्रयास करने को प्रोत्साहित करती हैं। निर्वाचन में उत्पन्न समकालीन प्रवृत्तियां इसी का अनिवार्य परिणाम हैं। पुन: राज्य सभा के लोक सभा के समान दलगत बाध्यताओं पर आधरित होने का परिणाम अनेक स्वरूपों में हमारे सामने आता है। निम्न तालिका में प्रदर्शित आंकड़ों से स्पष्ट है कि दोनो ही सदनों में न सिर्फ गतिरोध की स्थितियां बढ़ी है, बल्कि कई बार राज्य सभा में गतिरोध के कारण लोक सभा से अधिक समय व्यर्थ हुआ है।

---

1. Kuldeep N. Sthrengthening RS as the federal chamber of Parliament Pg. no. 47, 200th session of Rajya Sabha on 14th Dec. 2003

तालिका संख्या – 43

राज्य सभा व लोक सभा के उत्पादक घण्टों में आये परिवर्तन[1]

	LOK SABHA					RAJYA SABHA				
Sessions	Available hours	Productive Hours	Time Lost	Productive time as % of available time	Time lost as % of available time	Available hours	Productive Hours	Time Lost	Productive time as % of available time	Time lost as % of available time
Budget 2009	156	162.05	-6.05	104%	-4%	130	147.45	-17.45	113%	-13%
Winter 2009	126	105.50	20.50	84%	16%	115	101.75	13.25	88%	12%
Budget 2010	192	137.93	54.07	72%	28%	160	129.88	30.12	81%	19%
Monsoon 2010	156	136.08	19.92	87%	13%	130	120.58	9.42	93%	7%
Winter 2010	138	7.62	130.38	6%	94%	115	2.78	112.22	2%	98%
Budget 2011	138	116.63	21.37	85%	15%	115	80.39	34.61	70%	30%
Monsoon 2011	156	104.20	51.80	67%	33%	130	81.40	48.60	63%	37%
Winter 2011	144	85.00	59.00	59%	41%	120	74.40	45.60	62%	38%
Budget 2012	210	187.15	22.85	89%	11%	175	164.33	10.67	94%	6%
Monsoon 2012	114	24.42	89.58	21%	79%	95	26.60	68.40	28%	72%
Winter 2012	120	63.85	56.15	53%	47%	100	58.03	41.97	58%	42%
Budget 2013	192	94.90	97.10	49%	51%	160	83.43	76.57	52%	48%
Monsoon 2013	126	73.13	52.87	58%	42%	125	99.55	25.45	80%	20%
Winter 2013	60	4.48	55.52	7%	93%	50	11.40	38.60	23%	77%
Winter 2013-2014	72	15.09	56.91	21%	79%	60	16.53	43.47	28%	72%
Budget 2014	162	167.23	-5.23	103%	-3%	135	142.38	-7.38	105%	-5%
Winter 2014	132	129.70	2.30	98%	2%	130	76.57	53.43	59%	41%
Budget 2015	201	246.02	-45.02	122%	-22%	179.5	181.18	-1.68	101%	-1%
Monsoon 2015	102.00	47.05	54.95	46%	54%	100.5	9.03	91.47	9%	91%
Winter 2015	114.00	115.82	-1.82	102%	-2%	112.0	57.0	55.0	50%	50%
Budget 2016	38.90	42.98	-4.08	108%	-8%	35.98	31.53	6.5	90%	10%
Data updated as of 3rd March										

यह अवस्था राज्य सभा की उच्च सदन की गरिमा के अनुकूल नहीं मानी जा सकती है। सदन में अनुशासन व शिष्टाचार की समस्या सामान्य व्यवस्था का एक भाग हो गई हैं। सदन की बैठकों के बीच व्यवधान व विघटन के ऐसे अनेक अवसर आये जिनके फलस्वरूप कार्यवाही के स्थगन की संख्या बढ़ी है। जो कि न सिर्फ सदन के समय व करदाताओं के पैसे की बर्बादी है, बल्कि ये सदन के उद्देश्यों को भी बुरी तरह प्रभावित करती है। यह कहना अतिश्योक्ति होगा कि उक्त स्थिति का उत्तरदायित्व मात्र क्षेत्रीय दलों का है, न ही इसमे राष्ट्रीय दलों की सहभागिता को नकारा जा सकता है, परन्तु राज्य सभा के दैनिक कार्यकरण की समीक्षा के आधार पर क्षेत्रीय दलों को पूर्णत: दोषमुक्त भी नहीं किया जा सकता है। गतिरोध के अतिरिक्त राज्य सभा के विधायी कार्यकरण में कुछ अन्य नवाचार भी अभिव्यक्त हो रहे हैं, जिन्हें स्पष्ट रूप से क्षेत्रीय दलों से सम्बद्ध किया जाना सम्भव नहीं है, परन्तु चूंकि राज्य सभा स्वयं प्रस्तुत अध्ययन का केन्द्र बिन्दु है, अत: इन नवाचारों को अध्ययन में शामिल करना समीचीन होगा।

---

1. PRS Legislative research organization; New Delhi

विधायी कार्यकरण से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण समकालीन प्रक्रिया है राज्य सभा की बैठकों की संख्या में कमी आना। प्रारम्भिक वर्षों में राज्य सभा एक वर्ष में औसतन 90 दिनों के लिये बैठती थी, विगत सात वर्षों में यह संख्या वर्ष में 65 दिनों तक आ गई है।

रेखाचित्र संख्या – 20

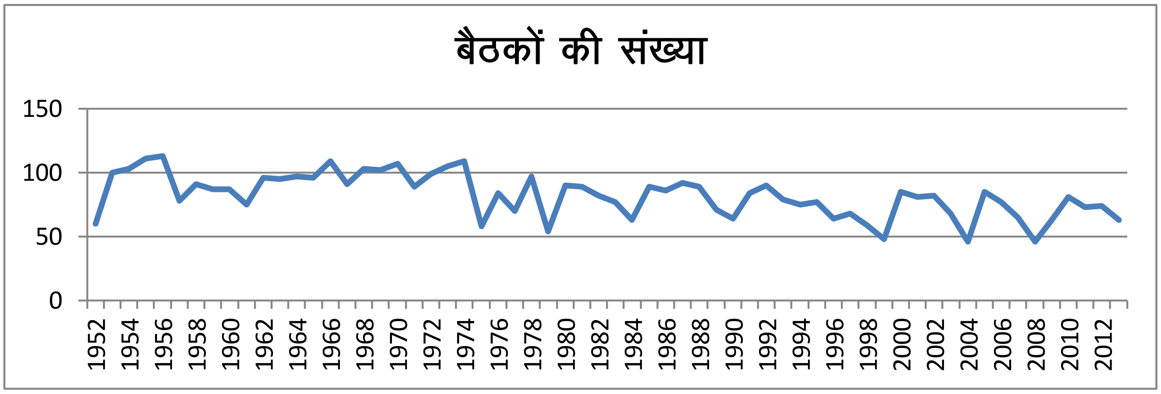

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि प्रतिवर्ष उन दिनों की संख्या जिनमें सदन की बैठकें होती हैं, तेजी से कम होती जा रही हैं, संयोगवश वर्ष 2008 में राज्य सभा की मात्र 46 बैठकें हुई। संसद में सदनों की बैठकों के कार्यकाल के प्रश्न पर भारत की विधायी संस्थाओं के पीठासीन अधिकारियों की एक बैठक नई दिल्ली में 10–11अक्टूबर 1996 में हुई। जिसमें पारित प्रस्ताव के अनुसार सदन की बैठकें जल्दी–जल्दी व लम्बी बैठकों के रूप में होनी चाहिये,

क्योंकि ऐसा न होने से सदस्य अपने निर्वाचन क्षेत्र से सम्बन्धित कार्यों को प्रभावी रूप से पूर्ण नहीं कर पाते है तथा यह उनकी कुण्ठा का कारण भी बनता है। इस परिप्रेक्ष्य में विधायिकाओं को अभिसमयों (संवैधानिक परम्पराओं) का प्रतिपालन करना चाहियें। बैठकों की न्यूनतम संख्या व प्रत्येक बैठक हेतु न्यूनतम समय का निर्धारण किया जाना चाहिये।[1]

वर्तमान में संवैधानिक प्रावधान के अनुसार संसदीय सत्रों हेतु किसी न्यूनतम संख्या का निर्धारण नहीं किया गया है। एकमात्र संवैधानिक वांछनीयता यह है कि एक सत्र की अंतिम बैठक व दूसरे सत्र की प्रथम बैठक में 6 माह से अधिक का समय अंतराल न हो।

---

1. Proceedings of the conference of preciding officers of legislative bodies in India.

इसी क्रम में 2001 में चण्डीगढ़ में आयोजित विधायी संस्थाओं के प्रिसाइडिंग अधिकारियोंहेतु आयोजित कांफ्रेंस में (Procedural uniformity and better management of the time of the house)विषय पर रिपोर्ट को एक मत से स्वीकार किया गया जिसके अनुसार विधायिकाओं की बैठकों की न्यून्तम संख्या के विषय में कुछ प्रावधान किये जाने चाहिये।[1]

यहाँ भारत के पूर्व उपराष्ट्रपति श्री हामिद अंसारी व राज्य सभा के पूर्व सभापति के कथन को उद्‌धृत करना प्रासंगिक होगा जो उन्होंने 2008 मुम्बई में आयोजित 14वीं अखिल भारतीय व्हिप कांफ्रेंस को सम्बोधित करते हुये कहा–"संसद की उद्‌देश्यपूर्ण भूमिका की पुनर्वापसी उसकी वार्षिक बैठकों को 300 दिन तक बढ़ाकर की जा सकती है। ब्रिटिश व कनाडियन सांसदों के लिये तुलनात्मक संख्या 140 से अधिक है। संयुक्त राज्य अमेरिकी कांग्रेस एक सत्र में 150 दिनों से अधिक बैठती है।"[2]

13वीं अखिल भारतीय व्हिप कांफ्रेंस में यह प्रस्तावित था कि संविधान संशोधन विचाराधीन होगा ताकि संसद के दोनो सदनों और राज्य विधायिकाओं के लिये न्यूनतम बैठकों को निर्धारित किया जा सके। 14 वीं अखिल भारतीय कांफ्रेंस में इन सिफारिशों का समर्थन किया गया।[3]

यह प्रक्रिया जारी रही और संविधान क्रियान्वयन के पुनरावलोकन हेतु गठित राष्ट्रीय आयोग (पूर्व न्यायाधीश एम. एन. वेंकटचलैया के सभापतित्व में कार्यरत) ने अपनी रिपोर्ट में उल्लिखित किया–"संसद व राज्य विधानमण्डलों की बैठक करने और कार्यकलापों पर क्रिया–प्रतिक्रिया करने का कार्य न्यूनतम दिनों से कम पर नहीं होना चाहिये। राज्य सभा व लोक सभा की बैठकें क्रमश: 100 व 120 दिनों के लिये निर्धारित हो"।[4]

---

1. Proceedings of the conference of presiding officers of legislative bodies in India : Chandigarh 28-29 June 2001
2. Address at the innaugration of the 14th all India whips conference, Mumbai 4th Feb. 2008.
3. Report of the 14th all India whips conference New Delhi, Ministry of Parliament affairs March, 2008.
4. Report of the National Commission to review the working of the constitution Vol. I Chapter 5 (Para 5.11.4)

राज्य सभा की बैठको की संख्या में आती कमी अंततोगत्वा संसद की राष्ट्रीय पहरेदार (watch dog) केरूप में संवैधानिक भूमिका को और संसद के प्रति प्रशासकीय जवाबदेही को उत्तरोत्तर निष्प्रभावी करता जाता है। सदन की बैठकों की घटती संख्या के प्रति अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुये राज्य सभा के एक सदस्य ने दिसम्बर 2008 में निजी सदस्य विधेयक प्रस्तुत किया। जिसके अन्तर्गत संसदीय संस्थाओं की बैठकों की संख्या को बढाने की आवश्यकता पर जोर देते हुये प्रस्तावित किया गया कि संसद तथा विधान मण्डलों के दोनो सदनों की बैठकों की न्यूनतम संख्या का वार्षिक कैलेण्डर में उल्लेख हो,ताकि लोकहित के मुद्दों पर समुचित चर्चा की जा सके। विधेयक के अनूसार संविधान के अनुच्छेद 85 व 174 मे संशोधन किया जाये कि संसद का प्रत्येक सदन वर्ष में कम से कम वर्ष में 120 दिनो के लिये और राज्य विधान मण्डल कम से कम वर्ष में 60 दिनो की बैठक करे।[1] राज्य सभा की बैठकों की संख्या में आती कमी का अनिवार्य परिणाम है, विभिन्न विधायी प्रक्रिया को दिये जाने वाले समय में आती कमी।

रेखाचित्र संख्या – 21

विभिन्न विधायी प्रक्रियाओं को वर्ष भर में दिया जाने वाला समय

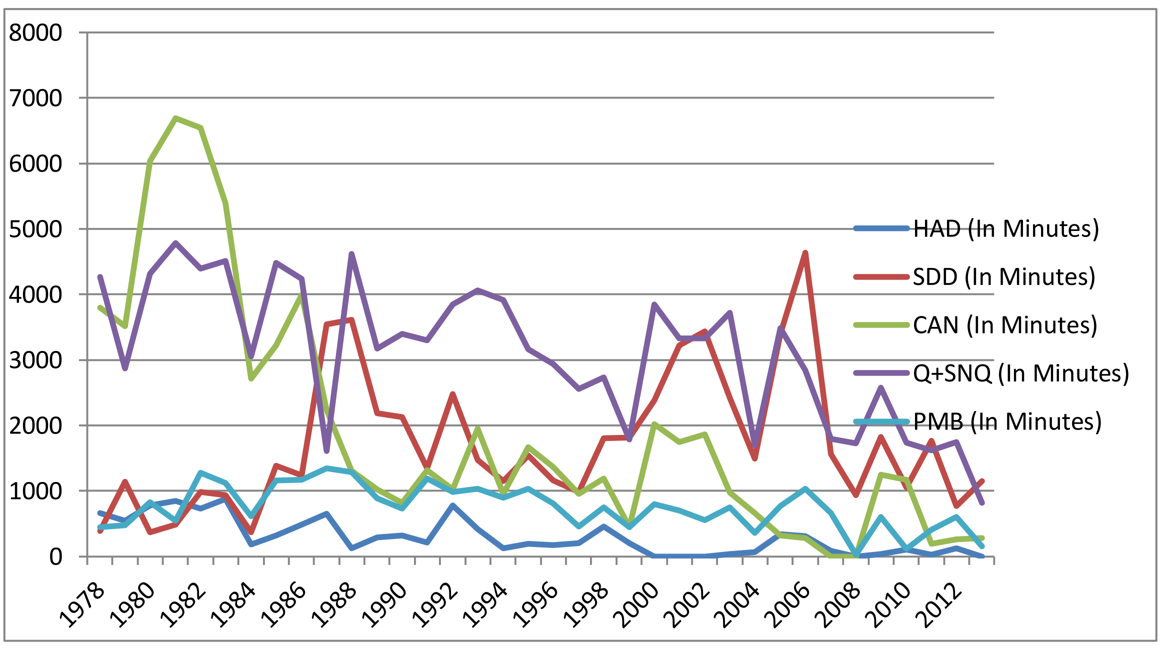

प्रदर्शित रेखाचित्र में पांच विधायी प्रक्रियाओं– निजी सदस्य विधेयक, आधे घण्टे की चर्चा, अल्पकालीन चर्चा, ध्यानाकर्षण प्रस्ताव, प्रश्न उत्तर को शामिल किया गया है।

---

1. the constitution (amendment) Bill 2008 in Rajya sabha on 19 Dec. 2008 by shri Mahendra Mohan(SP)

- जैसा कि चार्ट से स्पष्ट है आधे घण्टे की चर्चा वह विधायी प्रक्रिया है जिसका सदन में सबसे कम प्रयोग किया गया है। वर्ष 1978 में 11 घण्टे का समय इस प्रक्रिया को दिया गया था वहीं 2013 में यह समय शून्य था जबकि 2012 में मात्र 2 घण्टे का समय आधे घण्टे की चर्चा हेतु रखा गया। 1980 से 1983 के बीच अवश्य आधे घण्टे की चर्चा हेतु 12 से 14 घण्टे का समय सदन में उपयोग में लाया गया शेष पूरा काल में यह विधायी प्रक्रिया उपेक्षित ही रही।
- विधायी प्रक्रियाओं का सबसे महत्वपूर्ण उपकरण बिल प्रस्तुतिकरण है, क्योंकि बिल के माध्यम से ही नीतियां, विमर्श अग्रसरित होते है। बिल पारित करने की प्रक्रिया में किया गया वाद विवाद वास्तव में नीति निर्धारकों हेतु दिशा निर्देशक के समान होता है। 1978 से 2013 के बीच निजी सदस्यों द्वारा प्रस्तुत विधेयकों पर चर्चा का समय सात घण्टे सत्ताइस मिनट से घटकर दो घण्टे सैंतीस मिनट पर आ गया। वर्ष 1982 से वर्ष 1988 के बीच निजी सदस्यों के विधेयकों को चर्चा हेतु अधिकतम समय दिया गया। 1978 से 2013 के काल में एक भी निजी सदस्य विधेयक राज्य सभा द्वारा पारित नहीं किया गया। वर्ष 2014 में एक विधेयक पारित किया गया।
- प्रतिनिधि लोकतन्त्र में निर्वाचित जनप्रतिनिधियों की जवाबदेही सुनिश्चित करने का सर्वोत्तम साधन प्रश्न पूछने की प्रक्रिया है। प्रश्नों के माध्यम से ही संसदीय प्रणाली का सुचारू कार्यान्वयन सम्भव है1978 के वर्ष में कुल 71 घण्टे प्रश्न पूछने की प्रक्रिया में व्यय किये गये। सन् 1988 तक प्रश्न पूछने की प्रक्रिया में औसतन प्रतिवर्ष 70–72 घण्टे दिये गये। यहाँ मात्र 1987 का वर्ष अपवाद है, जिसमें राज्य सभा सांसदों ने मात्र 26 घण्टे 49 मिनट ही प्रश्न पूछे।सन् 1988 के पश्चात् इस प्रक्रिया में दिये गये समय में लगातार गिरावट देखने में आई। 2000, 2003 व 2005 वे वर्ष रहे जब राज्य सभा में प्रश्न पूछने हेतु तुलनात्मक रूप से अधिक समय दिया गया। वर्ष 2013 में मात्र 13 घण्टे 39 मिनट के समय में ही प्रश्न पूछे गये।
- ध्यानाकर्षण प्रस्ताव वह विधायी प्रक्रिया है, जिसको राज्य सभा में दिये गये समय में सबसे अधिक गिरावट (35%) देखने में आई। जबकि इस प्रक्रिया के माध्यम से सांसद सभापति की अनुमति से अविलंबनीय लोक महत्व के किसी मामले की ओर किसी मंत्री का ध्यान दिलाता है और उससे अनुरोध करता है कि वह उस मामले पर एक वक्तव्य दे।
- अल्पकालीन चर्चा हेतु लिये गये समय में अन्य विधायी प्रक्रियाओं के विपरीत बढ़त देखी गई।

बैठकों की कम होती संख्या व विधायी प्रक्रियाओं को दिये जाने वाले समय में गिरावट का अनिवार्य परिणाम राज्य सभा की उत्पादकता में आई कमी के रूप में देखने में आया।

रेखाचित्र संख्या – 22

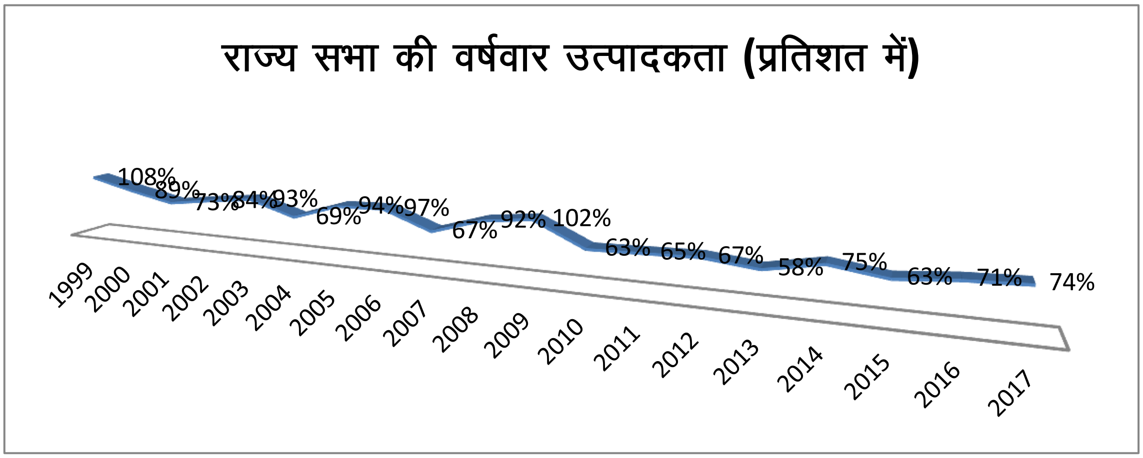

रेखाचित्र से स्पष्ट है– 1989 में 108% की उत्पादकता वर्ष 2017 में घटकर 74% तक आ गई। वर्ष 2010 से 2013 के दौरान इस उत्पादकता अप्रत्याशित रूप से 63% से 58% तक गिरावट देखी गई।

उक्त विश्लेषण की व्याख्या शोध हेतु चयनित विषय के आलोक में करने पर स्पष्ट है कि क्षेत्रीय आकांक्षाओं के साथ पल्लवित क्षेत्रीय व राज्य स्तरीय राजनीतिक दल संघीय इकाइयों के प्रतिनिधि के रूप में राज्य सभा में प्रवेश करते हैं तथा राज्य सभा के संघीय स्वरूप को पोषित व विकसित करते हैं। विकास के इसी स्वरूप को समझना प्रस्तुत अध्ययन का मूल उद्देश्य है। पूर्वोक्त आंकड़े, तथ्य व विश्लेषण स्पष्ट दर्शाते है कि संसद के दोनो सदनों में शनैः-शनैः संरचनात्मक विषमरूपता दृष्टिगत होने लगी है। जिसके कारण लोक सभा व राज्य सभा के विधायी सम्बन्धों में नवीन आयाम उदघाटित होने लगे हैं। राज्य सभा का नवीन स्वरूप राज्य सभा को मात्र लोक सभा का प्रतिगामी सदन नहीं बल्कि सही अर्थों में द्वितीय सदन के रूप में सक्रिय होने का अवसर प्रदान करता है। यद्यपि प्रतिनिधि सदन लोक सभा द्वारा समय–समय पर राज्य सभा की अतिसक्रियता पर प्रश्नचिन्ह लगाया जाता रहा है।

परन्तु अंततः राज्य स्तरीय हितों व राजनीतिक बाध्यताओं में समन्वय स्थापित करते हुये अनेक महत्वपूर्ण अवसरों पर परिपक्वता का परिचय दिया है। साथ ही आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि राज्य सभा निर्वाचन के सम्बन्ध में 2003 में जनप्रतिनिधित्व कानून में किये गये संशोधनों तथा निर्वाचन प्रक्रिया में व्याप्त भ्रष्टाचार को क्षेत्रीय दलों का समर्थन प्राप्त नहीं है। विगत दशकों में

राज्य सभा की विधायी प्रक्रिया की गुणवत्ता तथा सदन की उत्पादकता में निरन्तर गिरावट देखने में आई है परन्तु साथ ही संघीय हितों हेतु खड़े होने की प्रवृत्ति का अभी क्षरण नहीं हुआ है।

6.5 भविष्य हेतु संकेत

राज्य सभा के कार्यव्यवहार व संगठन पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव के विवेचन के परिणामस्वरूप भविष्य हेतु संकेत हमारे समक्ष उपस्थित होते है।

(1) संसद के दोनो सदनों में क्षेत्रीय दलों की निरन्तर बढ़ती सहभागिता के कारण दोनो सदनों की चारित्रिक विलक्षणता पूर्णत: विलुप्त होने की सम्भावना है।

(2) राज्य सभा वलोक सभा में दलगत प्रतिनिधित्व के कारण व्याप्त विषमरूपता दोनो सदनों के विधायी सम्बन्धों पर नकारात्मक प्रभाव डाल रही है, जिसमे भविष्य में वृद्धि के संकेत है।

(3) दोनों सदनों की विषमरूपता के परिणामस्वरूप विधायी प्रक्रियाओं में सत्तापक्ष की राज्य सभा पर निर्भरता बढ़ गई है।

(4) उक्त के कारण ही राज्य सभा निर्वाचन में राज्य की अपेक्षा दल अधिक महत्वपूर्ण हो गये है। परिणामस्वरूप राज्य सभा निर्वाचन राजनीतिक दलों हेतु शक्ति प्रदर्शन का माध्यम बनते जा रहे है। परन्तु वर्तमान में क्षेत्रीय दलों के इस शक्ति प्रदर्शन में सहभागी होने के कोई संकेत नहीं मिलते हैं।

(5) राज्य सभा सांसदों में दलगत प्रतिबद्धताओं के अनुरूप कार्य करने की प्रवृत्ति व्यापक होती जा रही है तथा क्षेत्रीय दल इसका पूरी तरह से पोषण कर रहे हैं।

(6) विधेयक पारित करवाने हेतु सत्ता पक्ष की राज्य सभा में उपस्थित क्षेत्रीय दलों पर बढ़ती निर्भरता क्षेत्रीय दलों को सौदेबाजी के तथा राष्ट्रीय दलों का एजेण्डा निर्धारित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान कर रही है।

राज्य सभा के संगठन तथा दोनो सदनों के परिवर्तित विधायी सम्बन्धों में परिलक्षित परिवर्तनों व संकेतों के परिणामस्वरूप राज्य सभा के विरोध में स्वर तीव्र होने लगे हैं। यद्यपि यह मांग प्रत्यक्ष रूप से क्षेत्रीय दलों से सम्बद्ध नहीं है परन्तु राज्य सभा का संशोधित रूप काफी सीमा तक क्षेत्रीय दलों पर निर्भर है, अत: राज्य सभा के वर्तमान स्वरूप में संशोधन सम्बन्धी सुझाव किसी न किसी तरह से क्षेत्रीय दलों से भी सम्बन्धित हैं। राज्य सभा में संशोधन व सुधार की आवश्यकता

को क्षेत्रीय दलों द्वारा भी महसूस किया गया। जैसा कि जनता दल (यूनाइटेड) के सांसद हरिवंश ने माना– "राज्य सभा की ओर जाने के पूर्व मैं स्वयं से पूछता हूं कि मैं सदन में क्या करता हूं ? एक सांसद के रूप में उन विशेषाधिकारों और सुविधाओं (जिनका मैं उपभोग करता हूं) के बदले में लोगों को क्या दूंगा? यदि मैं सदन में मुद्दों को उठाने में सक्षम नहीं हूं। मैं आशा करता हूं कि हमारे देश की महान संसदीय परम्परायें पुनर्संचित हैं और हम इस महान देश के लोगों के प्रति अपनी जिम्मेदारियों और जवाबदेही को जानता हूँ।"

"I ask myself everyday before I head to the Rajya Sabha about what I do in the house. As an MP how do I repay the ppl for the privilages and facilities I enjoy. If I am not able to raise issues in the house. I only hope that the great parliamentary traditions of our country are restored and we recognize our responsibilities and accountability to the ppl of this great country".

राज्य सभा का विरोध करने वाले अथवा उसको समाप्त करने का सुझाव देने वाले मूल रूप से दो तर्क देते हैं–

(1) भारतीय संघात्मक व्यवस्था के दृष्टिकोण से यदि राज्य सभा को अपरिहार्य माना जाता है तो वर्तमान में लोक सभा का स्वरूप भी काफी हद तक संघीय सदन के समान हो गया है जहां इकाइयों में सक्रिय क्षेत्रीय दलों को समुचित प्रतिनिधित्व (अनेक छोटे दलों को राज्य सभा से बेहतर) मिल रहा है अत: अलग से राज्यों के सदन की आवश्यकता नहीं है।

(2) राज्य सभा एक परिपक्व सदन बनने के स्थान पर, हारे हुये नेताओं तथा साधन सम्पन्न धनाड्यों का सदन बनकर रह गया है जो पूर्णत: दलीय एजेण्डे के आधार पर काम करते है।

सर्वप्रथम प्रश्न संघीय सदन के रूप में राज्य सभा के अस्तित्व का है। द्विसदनात्मकता भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के मूल ढांचे का भाग है अत: नये संविधान को अंगीकार किये बिना राज्य सभा को समाप्त किया जाना सम्भव नहीं है। यह स्पष्ट है कि लोक सभा में राज्यों में सक्रिय सीमित जनाधार वाले क्षेत्रीय दलों को भी एक या दो स्थान प्राप्त हो जाते है (इसका कारण प्रत्यक्ष निर्वाचन माना जा सकता है)। इनमे से अनेक दल ऐसे होते हैं जो राज्य सभा में स्थान नहीं बना पाते हैं।.परन्तु राज्य सभा का उद्देश्य मात्र संख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व देना नहीं है बल्कि उन दलों से जुड़े हुये हितों को स्वर प्रदान करना भी है। लोक सभा में उपस्थित दल गठबन्धन

संस्कृति की बाध्यताओं व बहुमत की राजनीति के कारण राज्य अथवा क्षेत्र सम्बन्धी हितों को लेकर उस प्रकार से सक्रिय नहीं हो सकते है, जैसे कि वे राज्य सभा में हो सकते **है। राज्य सभा की संघीय सदन के रूप में स्थापना का उद्देश्य भी यही था कि सरकार के अस्तित्व को प्रभावित किये बिना, सरकार की नीतियों से असहमति जाहिर की जा सके तथा क्षेत्र सम्बन्धी समस्याओं को दलगत बाध्यताओं से ऊपर उठकर सत्तापक्ष के संज्ञान में लाया जा सके। लोक सभा में ये दल संख्या के आधार पर तो उपस्थिति दर्शा लेंगे परन्तु अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता उन्हें राज्य सभा में ही सुलभ होगी।**

6.6 राज्य सभा में सुधार हेतु सुझाव

उक्त सन्दर्भों में राज्य सभा को अधिक अर्थपूर्ण बनाने के लिये निम्न सुझावों पर विचार किया जा सकता है–

(1) राज्य सभा में विषयों को उठाने की प्रक्रिया को और अधिक परिवर्तनशील तथा जन आकांक्षाओं के अनुरूप बनाने का प्रयास किया जाना चाहिये। इसके लिये–

- विधायी प्रक्रिया में व्यक्तिगत सदस्यों हेतु आवंटित समय में सुधार की आवश्यकता है, क्योंकि संविधान निर्माण के समय सदन इतना विविधतापूर्ण होने की सम्भावना नहीं थी, परन्तु वर्तमान में राज्य सभा में उपस्थित विविध स्वरों की अभिव्यक्ति के लिये यह आवश्यक है कि व्यक्तिगत सदस्यों को राज्य सभा की विधायी प्रक्रिया में सहभागिता हेतु अधिक अवसर प्रदान किये जाये।
- विविध विधायी प्रक्रियाओं में सदस्यों द्वारा दिये गये नोटिस में से, कार्यवाही में शामिल किये जाने वाले नोटिसों का चयन मूलतः लॉटरी प्रक्रिया द्वारा होता है। ऐसी स्थिति में वे दल जिनकी सदस्य संख्या ज्यादा है (जिनके द्वारा अधिक संख्या में नोटिस दिये गये हैं) उन्हें वरीयता मिलने की सम्भावना स्वतः ही बढ़ जाती है। अतः उचित होगा कि नोटिस का चयन लॉटरी द्वारा न करके विषय के महत्व व आवश्यकता के आधार पर किया जाये।
- एक अध्ययन के अनुसार राज्य सभा में लोक सभा की तुलना में चार गुना अधिक बिल लम्बित है, यह स्थिति राष्ट्रहित के दृष्टिकोण से सर्वथा अनुचित है। अतः प्रयास इस दिशा में होने चाहिये कि निर्धारित समय सीमा के अन्दर विधेयकों का निस्तारण सम्भव हो सके। इस सन्दर्भ में यूरोपियन देशों व ऑस्ट्रेलिया के द्वितीय सदनों से सीख ली जा सकती है। जहां यदि कोई बिल उच्च सदन में दो बार अस्वीकार कर दिया जाता है तो दोनो सदनों

का संयुक्त अधिवेशन बुलाया जाता है, जहाँ पूर्ण बहुमत के साथ विधेयक पारित किया जाता है।

- राज्य सभा की बैठकों की संख्या में कमी, निरन्तर गतिरोध व अव्यवस्था एक अन्य आयाम है जहां संशोधन की आवश्यकता है। सदन के कार्य प्रशासन में व्यवधान उत्पन्न करना वास्तव में प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त का उल्लंघन है। वास्तव में सदन का व्यवस्थित कार्यान्वयन तीन घटकों पर निर्भर करता है। सदस्य, मंत्रीगण व पीठासीन अधिकारी।
- उक्त सन्दर्भों में पूर्व उपराष्ट्रपति के. आर. नरायणन के उद्‌गार थे कि सदन में अव्यवस्था, अनुशासनहीनता की समस्या का पीठासीन अधिकारी राजनीतिक दलों के नेताओं और राजनीतिक दलों के व्हिपों के साथ बैठकर समाधान निकाले।[1]
- प्राय: सदन में अव्यवस्था का उदय अपने बिन्दु को स्पष्ट करने का अवसर न मिलने पर उत्पन्न क्षुब्धता से होता है। इसे संभाला जा सकता है, परन्तु नियोजित संसदीय अपमान और जानबूझकर कोलाहल फैलाना—उन्हें नियन्त्रित करना कठिन है। इससे भी अधिक गंभीर है राजनीतिक दलों द्वारा निर्देशित अवरोध तथा राज्य सभा की कार्यवाही को बाधित करके सरकार पर दबाव बनाना।

श्री के. आर. नारायणन द्वारा इस विषय में कुछ सुझाव भी दिये गये—

- यदि व्यवधान के कारण सदन का समय नष्ट हुआ है तो उसकी पूर्ति उसी दिन सामान्य घण्टों के बाद भी बैठक करके की जानी चाहिये।
- सभापति व्हिपों को साथ ले और व्यवहारगत नियमों के उल्लंघन वाली घटनाओं के सन्दर्भ में प्रतिदिन और जब आवश्यकता हो सम्बन्धित सदस्यों के नाम घोषित करने वाले नियम को लागू करे।

सदन में बहस तथा महत्वपूर्ण मुद्‌दों पर विवाद को बाधित करने वाली प्रवृत्ति से बचना होगा। सरकार और विपक्ष दोनो स्वयं को ऐसे विषयों पर चर्चा के लिये प्रतिबद्ध करे, जिनके लिये न्यूनतम एक तिहाई या एक चौथाई सदस्यों ने प्रार्थना की हो।

महत्वपूर्ण यह है कि राज्य सभा को यह याद रखना होगा कि उसके निर्माण का मूल आधार क्या है।

"द्वितीय सदन से सर्वाधिक अपेक्षा जो हम कर सकते है वह यह कि वह महत्वपूर्ण मुद्‌दों पर गौरवपूर्ण वाद—विवाद करे तथा उन विधेयकों पर जो क्षणिक आवेश का परिणाम है, विलंबकारी

विद्यायन करे जब तक कि आवेश समाप्त न हो हम संविधान को सुरक्षा प्रदान करें ताकि किसी महत्वपूर्ण मामले विशेषत: वित्तीय मामले या जिनमें लोकसदन और राज्य सभा में संघर्ष हो, लोकसदन का दृष्टिकोण ही कायम रहे।"

1. All India conference of presiding officers, leaders of parties, ministers of parliamentary affairs, whips, parliamentarians & legislatures on "Descipline and decorum in the parliament and state legislatures" New Delhi 23-24 Sep. 1992

"The most that we expect the second chamber to do is perhaps to hold dignified debates on important issues and delay legislation which may be the outcome of passions of the moment until the passions have subsided -----and we shall take care to provide in the constitution that whenever on any important matter, especially matters related to finance, there is a conflict between the house of people and council of states, it is the view of the house of people that should prevail"[1]

स्पष्ट है कि राज्य सभा को आवंटित कार्यों में दलीय मानकों के आधार पर कार्य करके, सरकार के विधायी कार्यों में गतिरोध उत्पन्न करना नहीं था, बल्कि उसे तो विधायी कार्यों को सही दिशा देने, लोकतान्त्रिक मूल्यों को सुरक्षित रखने के दृष्टिकोण से संसद में स्थान दिया गया था। राज्य सभा को यह स्वीकार करना होगा कि वह प्रत्यक्ष रूप से चुने गये सदस्यों की विधायिका नहीं है और लोक सभा के साथ समन्वय व सहयोग के मार्ग पर चलना होगा न कि गतिरोध के।

राज्य सभा के कार्यव्यवहार को बेहतर बनाने के लिये वेंकटचल्लैया आयोग द्वारा भी दो महत्वपूर्ण संस्तुतियां की गई। उक्त आयोग का गठन मार्च 2002 में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा किया गया था।

आयोग के अनुसार

- राज्य सभा की बैठक हेतु वर्ष में कम से कम 100 दिन निर्धारित किये जाने चाहिये तथा इन बैठकों में सांसदों को सदन की गरिमा का ध्यान रखना होगा
- इस समिति द्वारा नये सदस्यों हेतु प्रशिक्षण की भी संस्तुति की गई, जिसमे वे सदन में विषय उठाने की प्रक्रिया को सही प्रकार से समझ सके तथा विधायी कार्यों में सकारात्मक योगदान दे सके।

---

1. "Time to rethink the role of the Rajya Sabha"- live mint 27/04/2018

सामान्य मान्यता यह है कि राज्य सभा में 245 में से 12 सांसदों का मनोनयन होता है तथा शेष का निर्वाचन सम्बद्ध राज्य की व्यवस्थापिकाओं द्वारा किया जाता है। जबकि वास्तविकता यह है कि शेष सदस्यों का चयन दलगत मनोनयन के सादृश्य हो गया है, जो कि राज्य व्यवस्थापिका में दल के वर्चस्व, दलीय नेतृत्व के चुनाव कौशल आदि प्रमुख तत्वों पर आधारित है तथा सदस्य की योग्यता गौण हो गई है। 2003 के जन प्रतिनिधित्व कानून में संशोधन के पश्चात् सदस्य के सम्बद्ध राज्य का नागरिक होने की आवश्यकता भी समाप्त हो गई है तथा मतपत्र निर्धारित व्यक्ति को दिखाने की अनिवार्यता के साथ ही मतदाताओं (राज्य व्यवस्थापिका के निर्वाचित सदस्यों) पर दलीय अनुशासन और कठोर हो गया है। परिणामत: राज्य सभा सांसद दलीय व्यवस्थाओं के अन्तर्गत चुनकर आते है तथा दलीय निष्ठा के अनुसार ही कार्य करते हैं।

उक्त सन्दर्भों में बीजू जनता दल सांसद वैजयंत जे. पाण्डा द्वारा दिये गये सुझाव का उल्लेख समीचीन होगा। श्री पाण्डा ने अमेरिकी सीनेट का उदाहरण दिया है। अमेरिका के मूल संविधान के अनुसार सीनेटर का चुनाव राज्य विधायिकाओं द्वारा (राज्य सभा के समान) होता था 1913 में संविधान संशोधन के साथ अनेक महत्वपूर्ण राजनीतिक सुधार किये गये जिसमे सीनेटर की निर्वाचन प्रक्रिया में संशोधन करते हुये यह निर्धारित किया गया कि सीनेटर का निर्वाचन सम्बद्ध राज्य की जनता द्वारा प्रत्यक्ष विधि के माध्यम से किया जायेगा। इस संशोधन के सकारात्मक परिणाम प्राप्त हुये सर्वप्रथम पार्टी नेतृत्व द्वारा जनहित को दरकिनार करके किये जाने वाली नेताओं की मनोनयन की प्रक्रिया पर रोक लगी साथ ही सीनेटर जनता के प्रति जवाबदेह हुये न कि पार्टी नेतृत्व के प्रति।

इसी प्रकार राज्य सभा सांसदों को संसदीय दायित्वों व राज्य के प्रति उनके उत्तरदायित्व के प्रति और अधिक जवाबदेह बनाये जाने की आवश्यकता है। पाण्डा इसके लिये दो रास्ते सुझाते हैं–

(1) राज्य सभा की निर्वाचन प्रक्रिया में परिवर्तन किये बिना उसकी शक्तियों में इस प्रकार कटौती की जाये कि हारे हुये/अप्रत्यक्ष विधि से चुने हुये/धनबल के माध्यम से संसद तक पहुंचे सांसद विधायी प्रक्रिया को दलगत उद्देश्यों की पूर्ति हेतु बाधित न कर सकें

(2) द्वित्तीय समाधान की प्रेरणा अमेरिकी सीनेट के उदाहरण से ली जा सकती है जिसके अनुसार राज्य सभा की शक्तियों में परिवर्तन किये बिना राज्य सभा का निर्वाचन प्रत्यक्ष नीति से किया जाये जिसके कारण सांसदों की कार्यसूची अधिक व्यापक होगी तथा वे जनहित के दृष्टिकोण अधिक सक्रिय होंगे। साथ ही जब सदस्यों का निर्वाचन जब

राजनीतिक दलों पर निर्भर नहीं रहेगा तो स्वत: ही वे दलीय संकीर्ण मानसिकता से मुक्त होकर काम कर सकेंगे।

राज्य सभा निर्वाचन प्रत्यक्ष नीति से करने का प्रस्ताव श्री के. टी. शाह द्वारा संविधान सभा के समक्ष रखा गया था जिसका विरोध रोहिणी कुमार चौधरी द्वारा इस तर्क के साथ किया गया कि– "If there are direct elections that people with special knowledge might not get elected"[1]

(यदि निर्वाचन प्रत्यक्ष होंगे तो विशिष्ट ज्ञान वाले लोग निर्वाचित नहीं होंगे।)

वर्तमान परिस्थितियों में राज्य सभा सांसदों के प्रत्यक्ष निर्वाचन की स्थिति में राज्य राजनीति में सक्रिय क्षेत्रीय दलों को बेहतर प्रतिनिधित्व मिलने की सम्भावना है, क्योंकि ऐसी स्थिति में सांसदों का निर्वाचन तथाकथित बड़े दलों के संसाधनों व चुनाव कौशल पर निर्भर नहीं करेगा।

राज्य व्यवस्थापिकाओं द्वारा राज्य सभा सांसदों का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली द्वारा किया जाता है परन्तु यह व्यवस्था सदैव वास्तविक चुनावी समर्थन के अनुरूप सांसदों के चयन में समर्थ नहीं होती है। ऐसा इसलिये क्योंकि अनेकों बार दलों को प्राप्त वोट प्रतिशत, सीटों के रूप में अभिव्यक्त नहीं होता है। इस विरोधाभास को दूर करने के लिये निर्वाचन हेतु ऐसी प्रणाली का विकास करना होगा जिसमे प्रत्येक राजनीतिक दल को उसे प्राप्त जनसमर्थन के अनुपात में स्थान प्राप्त हो सके।

निर्वाचन के सम्बन्ध में एक अन्य संशोधन जिस पर बहस की आवश्यकता है वह है राज्य सभा में प्रत्येक राज्य को जनसंख्या के आधार पर आवंटित स्थान। संविधान सभा में वाद–विवाद के बीच लोकनाथ मिश्र ने पूर्णत: संघीय सिद्धान्त के आधार पर राज्यों के लिये, राज्य सभा में समान प्रतिनिधित्व का प्रस्ताव रखा तथा प्रत्येक राज्य के लिये कम से कम तीन स्थानों की सिफारिश की।

"चूंकि राज्य सभा राज्यों का प्रतिनिधित्व करेगी। अत: यह राज्यों के प्रति न्यायपूर्ण होगा कि इकाईयों को इकाईयों की तरह लिया जाये और प्रत्येक इकाई समान रूप से प्रतिनिधित्व करे अन्यथा यह कहना निरर्थक है कि राज्य सभा में राज्य समान रूप से प्रतिनिधित्व करेंगे।"

1. CAD Vol. VII PP 1195-1213

"Since the council of states is going to represent the states. It is but fair in the states that these units should be dealt with as units and every unit is equally represented, otherwise there is not sense in saying that the states shall be represented in council of states"[1]

के.टी. शाह ने भी उक्त प्रस्ताव का समर्थन करते हुये प्रत्येक राज्य के लिये कम से कम पांच स्थानों को उचित माना

परन्तु अंततः राज्यों के विविधतापूर्ण चरित्र, भौगोलिक विलक्षणतायें आदि के कारण संविधान सभा द्वारा राज्यों को समान प्रतिनिधित्व का विचार त्याग दिया गया।

वर्तमान में भारतीय दलीय व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन आ चुका है। अतः राज्य सभा में राज्यों को प्रदत्त प्रतिनिधित्व पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। समान या असमान प्रतिनिधित्व के स्थान पर राज्यों को निश्चित मानकों के आधार पर श्रेणियों में बांटा जा सकता है तथा प्रत्येक श्रेणी हेतु आनुपातिक दृष्टिकोण से सदस्य संख्या का निर्धारण किया जा सकता है।

राज्य सभा रूपी संरचना में उत्पन्न विकार्यों (आमण्ड पावेल के संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम के अनुरूप) के कारण न सिर्फ राज्य सभा का विकास बाधित हुआ है बल्कि अन्य संरचनाओं से उसके अन्तर्सम्बन्ध (उदाहरणतः लोक सभा) भी प्रभावित हुये है। पर्यावरण संरचना के विकास हेतु यह आवश्यक है कि संरचना में सम्मिलित तत्वों द्वारा प्रकार्यों के निष्पादन में सहयोग दिया जाये। राज्य सभा का संघीय सदन के रूप में विकास न सिर्फ भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को लाभान्वित करेगा, बल्कि स्वयं क्षेत्रीय दलों को संघीय हितों की अभिव्यक्ति हेतु सक्षम मंच प्रदान करेगा।

≈≈≈≈

---

1. CAD. Vol VII Pg. 1195-1213

समकालीन राजनीतिक व्यवस्था परिवर्तन की एक व्यापक प्रक्रिया से गुजर रही है, जिसमे राज्य सभा पूर्व के विपरीत संसद की विधायी प्रक्रियाओं में अधिक निर्णायक भूमिका में दिखाई दे रही है। राज्य सभा चुनावों हेतु राजनीतिक दलों की अतिसक्रियता इस तथ्य पर बल देती है कि राज्य सभा के दलीय समीकरण सत्ता पक्ष तथा विपक्ष हेतु समान रूप से महत्वपूर्ण हो गये हैं। राज्य सभा व लोक सभा के मध्य निरन्तर व्याप्त गतिरोध व राज्य सभा की विधायी प्रक्रियाओं में परिलक्षित नूतन प्रवृत्तियाँ निरन्तर राज्य सभा के परिवर्तित स्वरूप की ओर इंगित कर रही हैं। उक्त तथ्यों के आलोक में प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत राज्य सभा व क्षेत्रीय दलों के अन्तर्सम्बन्धों व क्षेत्रीय दलों के प्रभाव स्वरूप राज्य सभा में दृष्टिगोचर परिवर्तनों का मूल्यांकन भारतीय संघात्मक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। अध्ययन के अन्त में चयनित विषय को समकालीन सन्दर्भों में देखना उचित होगा।

राज्य सभा भारतीय संसद का द्वित्तीय व उच्च सदन है, परन्तु राज्यों के प्रतिनिधि सदन के रूप में राज्य सभा की भूमिका के आकलन का प्रयास शोध कार्य के रूप में बिरले ही किया गया है। पूर्व में किये गये राज्य सभा केन्द्रित अध्ययन मूलत: सैद्धान्तिक अथवा संरचनात्मक ही हैं तथा इस प्रकार के शोध राज्य सभा की संरचना, संगठन, कार्य व लोक सभा से अन्तर्सम्बन्ध तक सीमित है। राज्यों का सदन होने के बाद भी राज्य राजनीति के परिवृत्यों के राज्य सभा पर पड़ने वाले प्रभाव के दृष्टिकोण से अध्ययन का प्रयास कम ही किया गया है।

अध्ययन के प्राथमिक चरण अर्थात आंकड़ों के संकलन की प्रक्रिया के अन्तर्गत यह पाया गया कि चयनित विषय के सम्बन्ध में आधिकारिक अध्ययन सामग्री का पूर्णत: अभाव है। उपलब्ध अध्ययन सामग्री मूलत: समाचार पत्रों व पत्रिकाओं के आलेखों अथवा संगोष्ठियों के प्रपत्रों के संकलन के रूप में उपलब्ध है। इस सम्बन्ध में राज्य सभा के 25 वर्ष व 50 वर्ष समाप्त होने के अवसर पर प्रस्तुत प्रपत्रों के संकलन उल्लेखनीय है।

वे अनछुये विषय जिन पर प्रस्तुत अध्ययन में प्रकाश डाला गया है, वे निम्न हैं–

- राज्य सभा के संगठन में क्षेत्रीय दलों की निरन्तर बढ़ती सहभागिता
- राज्यों के प्रतिनिधियों द्वारा राज्य सभा में दोहरी भूमिका का निर्वहन
- विशिष्ट निर्वाचन प्रक्रिया की प्रासंगिकता
- दलगत व्यवस्था में दृष्टिगोचर नूतन प्रवृत्तियों का राज्य सभा पर पड़ने वाला प्रभाव
- राज्य सभा की विधायी प्रक्रियाओं में दलीय सक्रियता व सहभागिता

प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति मूलत: विश्लेषणात्मक है। एकत्रित आंकड़ों का विश्लेषण निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया गया है–

- राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों का विकास क्रम
- राज्य सभा के संगठन में क्षेत्रीय दलों की सहभागिता
- राज्य सभा की विधायी प्रक्रियाओं में क्षेत्रीय दलों की भूमिका
- विधायी प्रक्रियाओं में सहभागिता के आधार पर क्षेत्रीय दलों की प्रकृति (राष्ट्रीय/क्षेत्रीय) का आकलन
- भारतीय संघात्मक व्यवस्था के सन्दर्भों में समग्र मूल्यांकन

सांख्यिकीय आधार पर आंकड़ों के तुलनात्मक अध्ययन हेतु ग्राफ का प्रयोग भी किया गया है।

उक्त बिन्दुओं के आधार पर अध्ययन से प्राप्त प्रमुख निष्कर्ष निम्न हैं–

7.1 संगठन सम्बन्धी निष्कर्ष

क्षेत्रीय दलों के राज्य सभा में प्रवेश का मूल रूप से राज्य सभा के संगठन पर क्या प्रभाव पड़ा है, यह प्रश्न राज्य सभा के संघीय स्वरूप के मूल्यांकन हेतु महत्वपूर्ण है। विविध क्षेत्रीय हितों के प्रतिनिधि के रूप में राज्य सभा में अधिकाधिक क्षेत्रीय दलों का प्रवेश सदन के संघीय स्वरूप को अधिक सम्पन्न बनाता है। किसी संस्था का स्वरूप सर्वप्रथम उसके संगठन के माध्यम से ही परिभाषित होता है। अत: राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों के प्रभाव स्वरूप दृष्टिगत परिवर्तनों को समझने के लिये सर्वप्रथम राज्य सभा के संगठन में आये नवाचारों को समझना वांछनीय होगा, जो कि निम्नवत हैं–

(1) क्षेत्रीय दलों की राज्य सभा के संगठन में भागीदारी के अध्ययन से स्पष्ट है कि प्रथम आम निर्वाचन (1952) से 16वीं लोक सभा के निर्वाचन तक क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की सहभागिता में उतरोत्तर वृद्धि हुई है। उक्त काल में राष्ट्रीय दलों की संख्या 14 से घटकर 6 पर आ गई, जबकि राज्य स्तरीय दल 24 से बढ़कर 39 हो गये व क्षेत्रीय दलों की संख्या 15 से 419 पर आ गई।

तालिका संख्या – 44

1952 व 2014 के लोक सभा निर्वाचन में राजनीतिक दलों की सहभागिता–

	प्रथम आम चुनाव	**16 वां आम चुनाव**
राष्ट्रीय दल	418	342
राज्य स्तरीय दल	34	176
क्षेत्रीय दल	0	98

(2) जिस अनुपात में क्षेत्रीय दलों की सहभागिता में वृद्धि हुई उसी अनुपात में दलों को प्राप्त सीटों की संख्या में बढ़ोतरी नहीं हुई

(3) राज्य सभा व लोक सभा के सांगठनिक ढांचे में समग्र रूप से क्षेत्रीय दलों का प्रतिशत लगभग समान होता गया है। अध्ययन काल में राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों का औसत प्रतिशत 31.86% रहा जबकि समकालीन लोक सभा हेतु यह आंकड़ा 31% था।

(4) संघीय सदन राज्य सभा में भारत के 28 राज्यों में से कुल 17 राज्य ऐसे है, जहां से क्षेत्रीय दल राज्य सभा में उपस्थित हैं।

(5) समग्र रूप से क्षेत्रीय व राष्ट्रीय दलों का अनुपात राज्य सभा व लोक सभा में लगभग समान है परन्तु दलीय प्रतिनिधित्व के दृष्टिकोण से दोनो सदन निरन्तर विषमरूपी होने की दिशा में अग्रसर हैं।

(6) राज्य सभा में जिन राज्यों से क्षेत्रीय दल सम्बद्ध राज्य को प्रतिनिधित्व प्रदान कर रहे हैं, उनमें से उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल व बिहार में एक से अधिक क्षेत्रीय दल राजनीति में सक्रिय हैं तथा परिणामस्वरूप राज्य सभा में उपस्थित हैं।

(7) जनसंख्या के अनुसार व राज्य सभा में सीटों के आवंटन के आधार पर 28 राज्यों में से 11 राज्यों को बड़े राज्यों की श्रेणी में रखा जा सकता हैं। इनमे से मध्य प्रदेश, गुजरात व राजस्थान वे राज्य है जिनमे क्षेत्रीय दल सक्रिय नहीं हैं।

(8) अधिकांश बड़े राज्यों में क्षेत्रीय दलों की सक्रियता इस तथ्य को पुष्ट करती है कि अधिक जनसंख्या विविधताओं को जन्म देती है, तथा इन्हीं विविधताओं को स्वर देने के लिये राज्य सभा में जनसंख्या के आधार पर सीटों का आवंटन किया गया है। इस प्रकार राज्य सभा में राज्यों को असमान स्थानों का आवंटन व विशिष्ट निर्वाचन प्रणाली अंततः राज्य सभा के संघीय स्वरूप को सवंर्द्धित करती है।

(9) नागालैण्ड, सिक्किम व मिजोरम जटिल भौगोलिक परिस्थितियों वाले राज्य हैं, जहां क्षेत्रीयता का प्रसार सन् 2000 के लगभग प्रारम्भ हुआ। इन राज्यों को राज्य सभा में एक–एक स्थान आवंटित है, जिस पर क्षेत्रीय दलों के प्रतिनिधि ही उपस्थित हैं तथा राज्य स्तरीय हितों को राज्य सभा में स्वर प्रदान करके अपनी उपस्थिति का औचित्य सिद्ध कर रहे हैं।

इसी प्रकार विशेष राज्य का दर्जा प्राप्त जम्मू–कश्मीर राज्य को आवंटित चार स्थानों पर क्षेत्रीय दल ही राज्य को प्रतिनिधित्व प्रदान कर रहे हैं। भाषायी आधार पर अपने पृथक अस्तित्व को लेकर अति सजग राज्य तमिलनाडु के क्षेत्रीय दल राज्य सभा में अग्रणी हैं अर्थात किसी प्रकार की विशिष्टता से युक्त संघीय इकाइयों में राज्य स्तर व राष्ट्रीय स्तर पर क्षेत्रीय दल स्पष्ट रूप से अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रहे हैं। राज्य सभा के संगठन में क्षेत्रीय दलों की निरन्तर अभिवृद्ध सहभागिता न सिर्फ संघात्मकता के सुदृढ़िकरण की परिचायक है बल्कि राज्य सभा की निर्वाचन प्रक्रिया को भी वैधता प्रदान करती है।

7.2 विधायी प्रक्रियाओं में सहभागिता सम्बन्धी निष्कर्ष

क्षेत्रीय दलों के वास्तविक चरित्र को समझने के लिये तथा राज्य सभा के विकास में इन दलों के योगदान के आकलन हेतु विधायी प्रक्रिया में सहभागिता को समझना वांछनीय है।

यह सहभागिता दो सन्दर्भों में आंकी जाती है–

(1) मात्रात्मक सहभागिता

(2) गुणात्मक सहभागिता

7.2.1 मात्रात्मक सहभागिता

मात्रात्मक सहभागिता का अर्थ है राज्य सभा की विधायी प्रक्रिया में क्षेत्रीय दलों के सक्रिय सदस्यों की संख्या। तालिका 45 के अन्तर्गत अध्ययन काल में प्रत्येक क्षेत्रीय दल के निष्क्रिय सदस्यों की संख्या को दर्शाया गया है।

तालिका संख्या – 45

अध्ययन काल में दलवार निष्क्रिय सदस्य

दल का नाम	कुल सदस्य	निष्क्रिय सदस्य
BPF	1	1
MNF	2	1
PMK	1	1
HVP	1	1
LJP	2	1
JMM	4	4
JD(S)	2	1
SDF	2	1
SAMATA	2	1
ML	2	1
J&KNC	4	3
AITC	4	4
SAD	8	1
INLD	7	6
SS	10	2
BJD	12	4
JD(U)	12	7

RJD	16	9
DMK	16	7
AIADMK	18	3
SP	28	8
BSP	28	15
TDP	13	0
ABLC	1	0
RPI	1	0
PDP	1	0
RSP	4	1
NPF	3	1
SBP	1	0
RLD	1	0
AGP	2	0
AIFB	4	2

उक्त तालिका से स्पष्ट है कि अध्ययन काल में राज्य सभा में उपस्थित क्षेत्रीय दलों के कुल 182 सदस्यों में से 82 (45%) पूर्णतः निष्क्रिय रहे है।

- बोडोलैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट, पटली मक्कल काची, हरियाणा विकास पार्टी, लोक जन शक्ति पार्टी झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस वे दल हैं जिनके सभी सदस्यों ने अध्ययन काल में विधायी प्रक्रिया में किसी प्रकार की रचनात्मक सहभागिता व सक्रियता का प्रदर्शन नहीं किया है।

- वहीं तथाकथित बड़े क्षेत्रीय दलों की बात करे तो बहुजन समाज पार्टी (उत्तर प्रदेश) के 28 में से 15 सदस्य निष्क्रिय सदस्यों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। राष्ट्रीय जनता दल (बिहार) के 16 में से 9 सदस्य तथा जनता दल (युनाईटेड)के 12 में से 7 सदस्य विधायी प्रक्रिया में किसी प्रकार का योगदान देने में असमर्थ रहे हैं।

राज्य सभा संघीय सदन है जहां राज्यों के प्रतिनिधि दोहरे दायित्व के साथ प्रवेश करते हैं। क्षेत्रीय दलों के सांसदों की राज्य सभा में उपस्थिति एक सामान्य प्रक्रिया मात्र नहीं है। यह न सिर्फ भारतीय संघात्मक व्यवस्था के सफल क्रियान्वयन की परिणिति है, बल्कि गठबन्धन संस्कृति पर आधारित भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर इसके दूरगामी परिणाम स्पष्ट देखे जा सकते हैं। अत: 82 सांसदों का पूर्णत: निष्क्रिय होना इस तथ्य की ओर स्पष्ट इंगित करता है कि राज्य सभा का विकास संविधान में उल्लिखित संकल्पना के अनुरूप हो, इसके लिये वांछनीय है कि राज्य सभा सांसदों की जवाबदेही सुनिश्चित की जाये। 1916 में अमरीकी सीनेट में 17वें संवैधानिक संशोधन के माध्यम से सीनेटरों के प्रत्यक्ष निर्वाचन की व्यवस्था करके इसी प्रकार का प्रयास किया गया था।

विधायी प्रक्रियाओं में सहभागिता –प्रस्तुत अध्ययन में क्षेत्रीय दलों के कार्यव्यवहार के आकलन हेतु निम्न विधायी प्रक्रियाओं को शामिल किया गया है।

(1) विधेयक प्रस्तुतिकरण

(2) प्रश्न पूछने की प्रक्रिया

(3) विशेष उल्लेख

(4) ध्यानाकर्षण प्रस्ताव

(5) विशेष अनुमति से उठाये गये विषय

विधेयक प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया उक्त में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि अन्तत: नीति निर्धारण इसी के माध्यम से सम्भव है।

- अध्ययन काल में राज्य सभा में उपस्थित 32 क्षेत्रीय दलों में से 16 क्षेत्रीय दलों ने कुल 97 विधेयक प्रस्तुत किये। इन 97 विधेयकों में से मात्र 8 विधेयक राज्य स्तरीय विषयों से सम्बन्धित हैं।
- राज्य स्तरीय विषयों के सम्बन्ध में विधेयक द्रमुक, अन्नाद्रमुक, बीजू जनता दल, नागालैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट व सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट द्वारा प्रस्तुत किये गये।

♦ राष्ट्र स्तरीय अथवा सामाजिक विषयों पर सर्वाधिक विधेयक प्रस्तुत करने वाले तीन दल है–

रेखाचित्र संख्या – 23

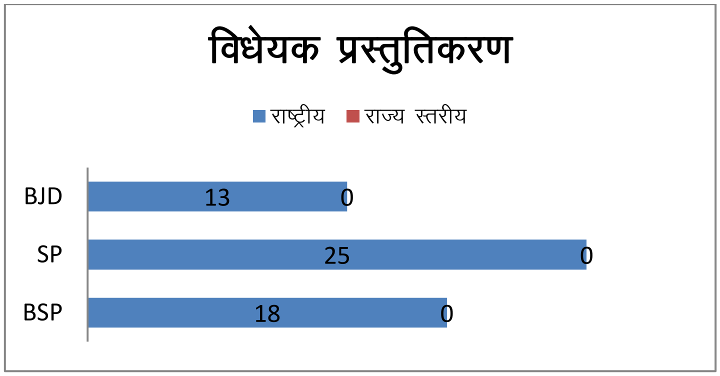

- राष्ट्र स्तरीय अथवा सामाजिक विषयों के सन्दर्भ में जिन विषयों को सर्वाधिक महत्व दिया गया वे इस प्रकार हैं–

(1) सामाजिक न्याय व सशक्तिकरण

(2) स्वास्थ्य व परिवार कल्याण

(3) कानून व न्याय

- कृषि से सम्बन्धित समस्याऐं, भ्रष्टाचार, उच्च शिक्षा, आर्थिक सुधार आदि वे विषय हैं, जिन पर विधेयक प्रस्तुत करने हेतु क्षेत्रीय दलों द्वारा कोई विशेष पहल नहीं की गई।

*यहां रेखांकित करने योग्य तथ्य यह भी है कि समाजवादी पार्टी द्वारा प्रस्तुत 25 विधेयकों में से 22 विधेयक मात्र एक सांसद श्री महेन्द्र मोहन द्वारा प्रस्तुत किये गये। वहीं बहुजन समाज पार्टी के 18 विधेयकों में से 8 विधेयक श्री अखिलेश दास गुप्ता द्वारा तथा 6 विधेयक श्री मोहन सिंह द्वारा सदन में रखे गये। बीजू जनता दल के विधेयक प्रस्तुतिकरण सम्बन्धी आंकड़ें भी इसी प्रकार के हैं जहां कुल 13 विधेयकों में से 10 विधेयक श्री बैजयन्ती जे. पाण्डा द्वारा, 3 विधेयक प्रमिला बोहिदार द्वारा सदन के संज्ञान में लाये गये।

आंकड़ों से स्पष्ट है कि विधेयक प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में क्षेत्रीय दलों के सांसदों का योगदान उत्साहवर्द्धक नहीं रहा है। परन्तु इसके लिये कुछ प्रक्रियागत तत्व भी उत्तरदायी है, जो कि इस प्रकार हैं–

- सदन में व्यक्तिगत सदस्यों को माह में कुल पांच घण्टे (प्रत्येक दूसरे शुक्रवार को ढाई घण्टे) का समय विधेयक प्रस्तुतिकरण हेतु दिया जाता है, जो कि सदस्य संख्या के अनुपात में बेहद कम है।
- सदस्यों द्वारा विधेयक प्रस्तुतिकरण हेतु दिये गये प्रस्तावों में से कार्यसूची में शामिल विधेयक प्रस्तावों का चयन यादृच्छिक चयन प्रक्रिया के माध्यम से किया जाता है जो पूर्णत: सभापति पर निर्भर है।
- संसद में व्यक्तिगत सदस्यों द्वारा प्रस्तुत विधेयकों का बेहद कम संख्या में पारित होना भी सम्भवत: क्षेत्रीय दलों के सांसदों को हतोत्साहित करता है। [सत्र 1 से 221 तक राज्य सभा में मात्र 15 व्यक्तिगत सदस्य विधेयक पारित किये गये जिनमें से 9 विधेयक लोक सभा में प्रस्तुत किये गये थे तथा राज्य सभा में प्रस्तुत विधेयकों में से एक भी विधेयक क्षेत्रीय दलों के सांसदों द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया।]

निष्कर्षत: विधेयक प्रस्तुतिकरण की प्रक्रिया में क्षेत्रीय दलों के सांसदों का प्रदर्शन निराशाजनक रहा।

विशेष उल्लेख– विशेष उल्लेख की प्रक्रिया को 1 जुलाई 2000 को राज्य सभा की विधायी प्रक्रियाओं में शामिल किया गया। इसके माध्यम से सांसद सार्वजनिक महत्व के विषयों को सदन के संज्ञान में ला सकते हैं। इस प्रक्रिया में क्षेत्रीय दलों के सांसदों की सहभागिता संतोषजनक रही।

- वर्ष 2004 में सर्वाधिक 40.50% विशेष उल्लेख तथा वर्ष 2009 में न्यूनतम 25.37% विशेष उल्लेख क्षेत्रीय दलों के सांसदों द्वारा राज्य सभा के समक्ष लाये गये।
- राज्य सभा में अध्ययन काल में सर्वाधिक विशेष उल्लेख प्रस्तुत करने वाले तीन क्षेत्रीय दल निम्न ग्राफ में दशाये गये हैं–

रेखाचित्र संख्या – 24

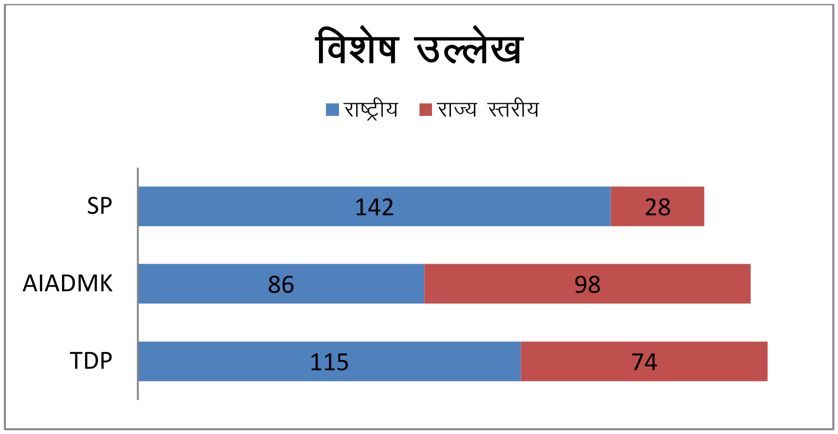

- शेष दलों में से बिहार के राष्ट्रीय जनता दल द्वारा 57 तथा बीजू जनता दल द्वारा 39 विशेष उल्लेख प्रस्तुत किये गये। शेष क्षेत्रीय दलों द्वारा इस प्रक्रिया में सहयोग नगण्य रहा।

प्रश्न पूछने की प्रक्रिया – लोकतंत्र में सत्तापक्ष की जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिये प्रश्न पूछना सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। प्रमुख क्षेत्रीय दलों द्वारा इस माध्यम का समुचित प्रयोग भी किया गया है, इस परिप्रेक्ष्य में उल्लेखनीय प्रदर्शन करने वाले क्षेत्रीय दल इस प्रकार हैं–

रेखाचित्र संख्या – 25

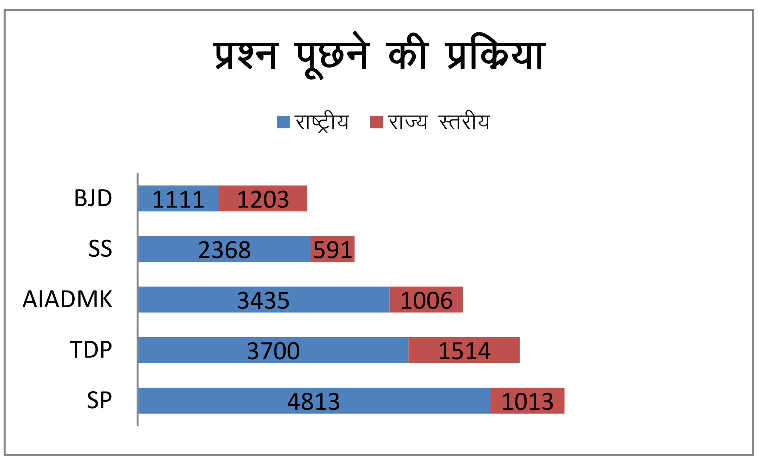

स्पष्टतः सर्वाधिक प्रश्न–उत्तर प्रदेश की समाजवादी पार्टी द्वारा पूछे गये, जबकि राज्य स्तरीय सहभागिता की दृष्टि से बीजू जनता दल का प्रदर्शन उत्कृष्ट रहा। बीजू जनता दल द्वारा राज्य स्तरीय व राष्ट्र स्तरीय विषयों के सन्दर्भ में बेहतर समन्वय का प्रदर्शन किया गया।

ध्यानाकर्षण प्रस्ताव

ऐसे विषय जिन पर तुरन्त ध्यान दिया जाना अपरिहार्य हो जाता है वे ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के माध्यम से सदन के समक्ष लाये जाते हैं। पूर्वोक्त विधायी प्रक्रियाओं के विपरीत इनका प्रयोग सीमित रूप से ही किया जाता है तथा राज्य स्तरीय विषयों की तुलना में राष्ट्र स्तरीय विषयों के सम्बन्ध में इनका प्रयोग अधिक किया गया।

रेखाचित्र संख्या – 26

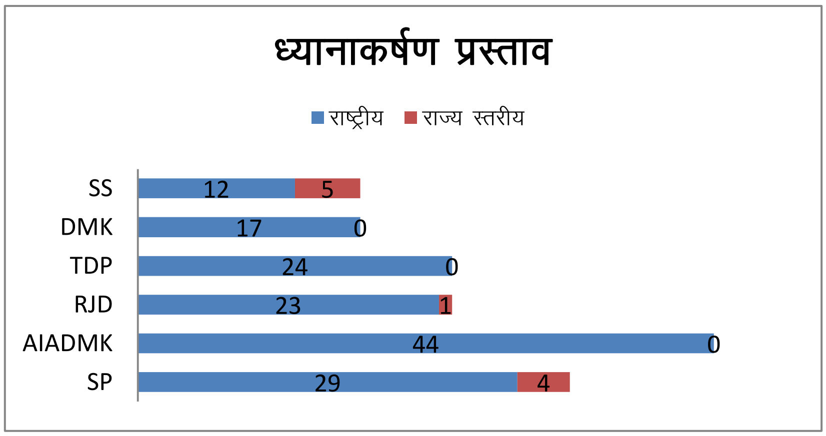

अल्पकालीन चर्चा तथा विशेष अनुमति से उठाये गये विषय

उक्त दोनो विधायी प्रक्रियाओं में समाजवादी पार्टी, अन्नाद्रमुक, राष्ट्रीय जनता दल व तेलगूदेशम पार्टी का प्रदर्शन उत्कृष्ट रहा। अल्पकालीन चर्चा के सम्बन्ध में रेखांकित करने योग्य तथ्य यह है कि इसका प्रयोग राष्ट्रीय अथवा सामाजिक विषयों के लिये ही किया गया, राज्य स्तरीय विषयों के लिये नहीं।

रेखाचित्र संख्या – 27

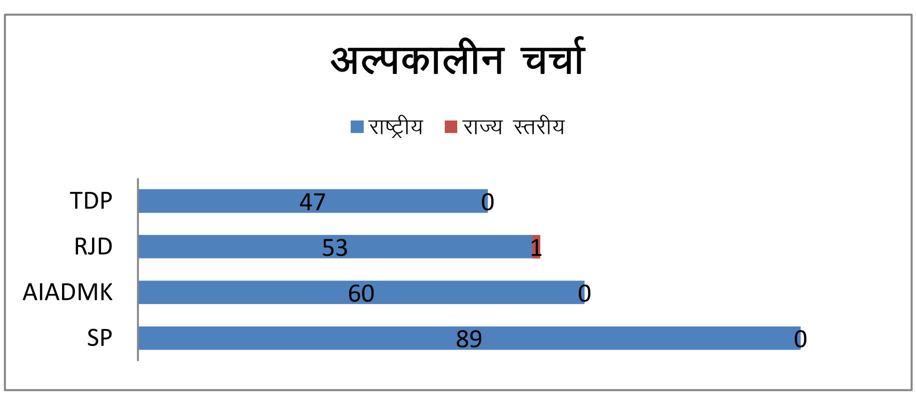

रेखाचित्र संख्या – 28

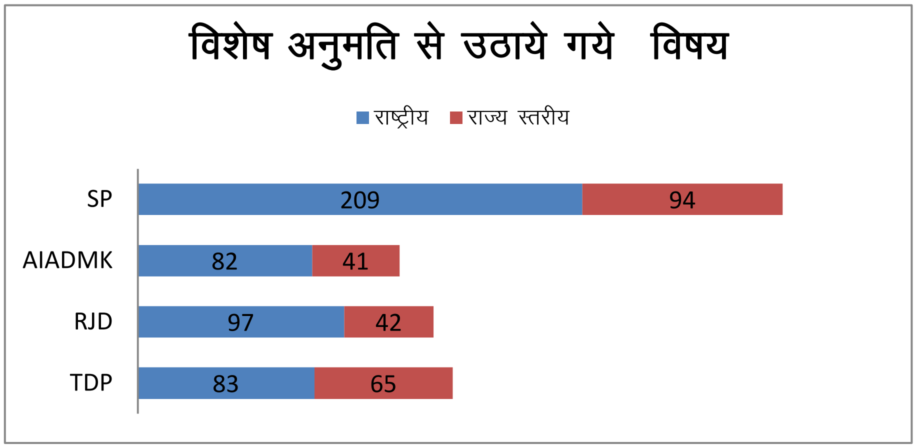

उक्त आंकड़ों से स्पष्ट है आन्ध्र प्रदेश की तेलगूदेशम पार्टी, तमिलनाडु की अन्नाद्रमुक, उत्तर प्रदेश की समाजवादी पार्टी व बिहार के राष्ट्रीय जनता दल राज्य सभा में सर्वाधिक सक्रिय क्षेत्रीय दल हैं। इन दलों में से तेलगूदेशम एक मात्र क्षेत्रीय दल है, जिसके सभी सदस्य अध्ययन काल में सक्रिय रहे हैं।

तेलगूदेशम व अन्नाद्रमुक वे दल हैं जिन्होंने राज्य स्तरीय व राष्ट्र स्तरीय विषयों में सन्तुलन साधने का प्रयास किया, जबकि राष्ट्रीय जनता दल व समाजवादी पार्टी का झुकाव राष्ट्र स्तरीय व सामाजिक विषयों की तरफ रहा।

क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य सभा में विभिन्न विधायी प्रक्रियाओं के माध्यम से जिन विषयों को उठाया गया, उनके समुचित आकलन हेतु क्षेत्रीय दलों को सम्बद्ध राज्यों की चारित्रिक विशेषताओं के आधार पर समूहीकृत किया गया। इन समूहों के विषयवार आकलन से प्राप्त प्रमुख निष्कर्ष निम्न हैं–

7.2.2 क्षेत्रीय दलों की गुणात्मक सहभागिता सम्बन्धी निष्कर्ष

कुछ विषय ऐसे हैं जिन्हें लगभग सभी क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य स्तरीय व राष्ट्र स्तरीय दोनो ही सन्दर्भों में समान रूप से स्थान दिया गया। उदाहरणत:

- आवागमन व संचार साधनों का विकास
- ग्रामीण विद्युतीकरण
- रेल्वे सुविधाओं में सुधार की आवश्यकता व सुरक्षा का प्रश्न
- घरेलू गैस वितरण प्रणाली में खामियां

- मिड डे मील योजना व नरेगा के समुचित क्रियान्वयन की आवश्यकता
- केन्द्रीय विद्यालयों की स्थापना

*राष्ट्र स्तरीय व सामाजिक विषयों में भी कुछ विषय लगभग सभी दलों द्वारा राज्य सभा के संज्ञान में लाये गये–

- पेट्रोल की कीमतें
- नदियों को जोड़ने की योजना
- सेतुसमुद्रम परियोजना
- भारत–अमरीका परमाणु समझौता
- ईरान से गैस पाइपलाइन
- स्वर्णिम चतुर्भुज योजना
- नक्सलवाद
- मुम्बई में बम ब्लास्ट तथा आतंकवाद
- सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता
- विदेश नीति के सम्बन्ध में पाक के साथ सम्बन्धों पर चर्चा
- पाक के अतिरिक्त पूर्वोत्तर क्षेत्र के पड़ोसी देशों से व्यापारिक सम्बन्ध, अतिक्रमण आदि समस्याओं को भी क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रमुखता से उठाया गया।
- मात्र तीन दल अन्नाद्रमुक (तमिलनाडु) , समाजवादी पार्टी (उत्तर प्रदेश) व शिरोमणि अकाली दल (पंजाब) पंचायती राज सुदृढ़ीकरण के प्रति गंभीर रहे।
- कुछ विषय पूरी तरह से उपेक्षित रहे–
  - निर्वाचन आयोग व चुनाव सुधार
  - भ्रष्टाचार (मात्र समाजवादी पार्टी द्वारा इस विषय को उद्घाटित करने का गंभीर प्रयास किया गया)
- उत्तर प्रदेश व बिहार के क्षेत्रीय दलों में मुस्लिम तुष्टीकरण की प्रवृत्ति, विधायी प्रक्रिया में उनके द्वारा उठाये गये विषयों के माध्यम से स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।
- अति पिछड़ा वर्ग हेतु आरक्षण के लिये बहुजन समाज पार्टी द्वारा विशेष प्रयास किये गये (पूरे देश में 27%)

- न्यायिक व्यवस्था में सुधार हेतु द्रमुक व शिवसेना द्वारा महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये।
- बीजू जनता दल, अन्नाद्रमुक, शिरोमणि अकाली दल द्वारा राज्यों पर ऋणभार कम करने हेतु सुझाव
- अन्नाद्रमुक द्वारा संविधान के पुनर्लेखन का प्रस्ताव भी लाया गया।
- दक्षिण के दलों द्वारा राष्ट्र स्तरीय व राज्य स्तरीय हितों के बीच सन्तुलन साधने का प्रयास किया गया।

7.3 क्षेत्रीय दलों का सामान्य विश्लेषण

आकलन की दृष्टि से क्षेत्रीय दलों को समूहों में बांटा गया है विधायी प्रक्रियाओं के अन्तर्गत विषय प्रस्तुतिकरण के आधार पर इन समूहों से सम्बन्धित सामान्य निष्कर्ष इस प्रकार हैं–

(1) पूर्वोत्तर राज्यों के क्षेत्रीय दल

- भौगोलिक दृष्टि से कठिन इन राज्यों में निम्न पांच क्षेत्रीय दल सक्रिय हैं–

  1. नागालैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट 2. मिजो नेशनल फ्रण्ट
  3. सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट 4. असम गण परिषद
  5. बोडोलैण्ड पिपुल्स फ्रण्ट

इन दलों का राज्य स्तरीय हितों की तरफ झुकाव स्पष्ट है।

- राज्य में आवागमन, संचार साधनों का विकास, पर्यटन हेतु ढांचागत सुधार इनके प्रमुख विषय रहे।
- मिजो नेशनल फ्रण्ट द्वारा रोजमर्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास किये गये वहीं सिक्किम डेमोक्रेटिक फ्रण्ट व असम गण परिषद द्वारा वैज्ञानिक व विकासवादी सोच का परिचय दिया गया।
- राष्ट्र स्तरीय व सामाजिक विषयों के सन्दर्भ में सामाजिक सरोकारों से जुड़े मुद्दों को महत्व दिया परन्तु रक्षा, वैदेशिक, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे विषय अछूते ही रहे।

(2) जम्मू–कश्मीर के क्षेत्रीय दल

- जम्मू–कश्मीर के दो प्रमुख क्षेत्रीय दल पिपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी व जम्मू कश्मीर नेशनल कान्फ्रेंस हैं।
- पिपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी विधायी प्रक्रियाओं में अधिक सक्रिय रहा।
- पी. डी.पी. द्वारा जिन राज्य स्तरीय विषयों को महत्वपूर्ण माना गया वे राज्य की भौगोलिक के साथ–साथ सामरिक परिस्थितियों से भी स्पष्टत: प्रभावित थे। पर्यटन सम्बन्धी सुविधाओं का विस्तार, आवागमन व संचार साधनों के विकास के साथ शिक्षा व रोजगार के माध्यम से राज्य के युवा को मुख्य धारा में लाने का प्रयास पी. डी.पी. की विचारधारा का प्रमुख अंग हैं।
- राष्ट्रीय व सामाजिक विषयों के अन्तर्गत अन्य सामान्य विषयों के अतिरिक्त चुनाव सुधार व राष्ट्रीय जनसंख्या नीति जैसे महत्वपूर्ण विषय भी पी. डी.पी. द्वारा राज्य सभा के समक्ष रखे गये।

(3) महाराष्ट्र के क्षेत्रीय दल

- महाराष्ट्र को विकसित राज्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है जहां तीन क्षेत्रीय दल रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया, शिवसेना, SBP सक्रिय हैं। इन दलों में से राज्य सभा में मात्र शिवसेना का प्रदर्शन संतोषजनक रहा।
- राज्य स्तर पर हॉर्टीकल्चर का विकास, शहरों में ढांचागत सुधार, विदर्भ के किसानों की समस्याओं को प्रमुखता से सदन के संज्ञान में लाया गया।
- राष्ट्र स्तरीय व सामाजिक विषयों में शिवसेना की सक्रियता उल्लेखनीय रही। सुरक्षा परिषद में भारत की स्थायी सदस्यता के अतिरिक्त पाक के साथ भारत के सम्बन्धों पर शिवसेना ने विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया।
- देश की आर्थिक राजनीति की छवि के अनुरूप राष्ट्र की अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सुझाव शिवसेना द्वारा लाये गये।
- शिवसेना द्वारा न्यायिक व्यवस्था में वांछनीय सुधारों पर भी प्रकाश डाला गया।

(4) तमिलनाडु के क्षेत्रीय दल

- क्षेत्रीय दलों के विकास के दृष्टिकोण से तमिलनाडु को एक परिपक्व राज्य माना जा सकता है। जहां के दो प्रमुख क्षेत्रीय दल अन्नाद्रमुक व द्रमुक हैं।
- राज्यों को अधिक स्वायत्तता व भाषा आधारित प्रश्न उक्त दलों की विचारधारा का प्रमुख अंग हैं।
- राज्य के विकास के सम्बन्ध में व्यवहारिक व परिपक्व सोच का परिचय देते हुये शिक्षा, महिला एवं बाल विकास जैसे विषयों को विविध विधायी प्रक्रियाओं के माध्यम से सदन के संज्ञान में लाया गया।
- राष्ट्रीय स्तर के विषयों में भी संस्थागत सुधारों पर विशेष बल दिया गया। द्रमुक द्वारा न्यायिक सुधारों के विषय में महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये।

*अन्नाद्रमुक द्वारा प्रस्तावित तीन प्रमुख सुझाव इस प्रकार है–

- राज्यों में बाल आयोग की स्थापना
- श्रम को संघ सूची से हटाकर राज्य सूची में डाला जाना
- संविधान का पुनर्लेखन

- किसानों हेतु दोनो दलों द्वारा विशेष संवेदनशीलता का परिचय दिया गया तथा अन्नाद्रमुक द्वारा कृषि को ज्ञान आधारित उद्योग का दर्जा देने का महत्वपूर्ण प्रस्ताव भी राज्य सभा के समक्ष रखा गया।

(5) आन्ध्र प्रदेश का क्षेत्रीय दल

- आन्ध्र प्रदेश का क्षेत्रीय दल तेलगूदेशम राज्य सभा में सक्रियता व सहभागिता की दृष्टि से अध्ययनकाल में सर्वश्रेष्ठ क्षेत्रीय दल रहा।
- राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय दोनो ही प्रकार के विषयों में परिपक्व, अतिव्यापक तथा समन्वयकारी सोच का परिचय तेलगूदेशम पार्टी द्वारा दिया गया।
- आन्ध्र प्रदेश के विकास के लिये आवश्यक प्रावधानों के अतिरिक्त नक्सलवाद की समस्या से निबटने के लिये आधारभूत ढांचे के निर्माण की आवश्यकता पर बल दिया गया।
- शिक्षा के क्षेत्र में तेलगूदेशम द्वारा राज्य स्तर पर कोई विशेष योजना प्रस्तुत नहीं की गई परन्तु सामाजिक विषयों के अन्तर्गत शिक्षा के सम्बन्ध में तेलगूदेशम द्वारा विकासवादी दृष्टिकोण का प्रदर्शन किया गया।

- तेलगू भाषा की अस्मिता से सम्बन्धित प्रश्न भी तेलगूदेशम की विचारधारा का अभिन्न अंग रहे।
- हैदराबाद के विकास हेतु उक्त दल द्वारा विशेष प्रयास किये गये।
- राष्ट्रीय विषयों के सम्बन्ध में तेलगूदेशम का विशेष योगदान निम्न रहा
    - राष्ट्रीय न्यायिक आयोग की स्थापना
    - परिणाम आधारित न्यायिक व्यवस्था का सिद्धान्त
    - स्वास्थ्य सेवाओं को मौलिक अधिकारों की श्रेणी में रखना
    - नदी पानी को राष्ट्रीय धरोहर घोषित करना

(6) उड़ीसा का क्षेत्रीय दल

- उड़ीसा भारत का गरीब व पिछड़ा राज्य है, जिसका प्रतिनिधि क्षेत्रीय दल बीजू जनता दल है।
- राज्य की परिस्थितियों के अनुरूप बीजू जनता दल का पूरा प्रयास वर्ल्ड बैंक व केन्द्र सरकार से राज्य के विकास हेतु अधिकाधिक ऋण व अनुदान प्राप्त करने का रहा।
- राजधानी भुवनेश्वर के विकास (धरोहर शहर घोषित करना), तथा नक्सलवाद से संघर्ष के लिये आधुनिक तकनीक की आवश्यकता पर बल देने के अतिरिक्त उड़ीसा राज्य को विशेष राज्य का दर्जा दिलवाने व राज्यों के ऋण माफ करवाने की दिशा में भी बीजू जनता दल द्वारा विशेष प्रयास किये गये।
- बीजू जनता दल के सांसद बी.जे.पाण्डा द्वारा शेष सदस्यों की तुलना में वैज्ञानिक व विकासवादी दृष्टिकोण का प्रदर्शन करते हुये विधायी प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान दिया गया।

(7) पंजाब व हरियाणा के क्षेत्रीय दल

- उक्त राज्यों में सक्रिय प्रमुख क्षेत्रीय दल इण्डियन नेशनल लोक दल व शिरोमणि अकाली दल है।
- शिरोमणि अकाली दल सबसे पुराना क्षेत्रीय दल है तथा राज्य सभा के प्रथम सत्र से राज्य सभा में उपस्थित है।
- पंजाब व हरियाणा दोनो ही कृषि आधारित राज्य है, यह इन दलों द्वारा राज्य सभा में प्रस्तुत विषयों से स्पष्ट होता है।

- किसानों (विशेषकर गन्ना किसानों)की समस्याऐं, अनाज भण्डारण, खाद्य सुरक्षा, न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाया जाना जैसे विषय महत्वपूर्ण रहे।
- वैदेशिक सम्बन्धों के केन्द्र में भारत–पाकिस्तान के सम्बन्ध रहे।
- वर्तमान राशन प्रणाली पर शिरोमणि अकाली दल द्वारा स्पष्ट असंतोष का प्रदर्शन किया गया।
- अन्नाद्रमुक के समान शिरोमणि अकाली दल भी राज्य स्वायत्तता का प्रबल समर्थक रहा है। यह विचारधारा इस दल के जन्म का आधार भी रही है।
- शिरोमणि अकाली दल का विशिष्ट योगदान निम्न माना जा सकता है–
  - अन्तर्राज्यीय नदी–पानी को समवर्ती सूची में शामिल करना
  - ग्राम पंचायतों का सशक्तीकरण
  - राज्यों का ऋणभार कम किये जाने की आवश्यकता

(8) पश्चिम बंगाल के क्षेत्रीय दल

- ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस व ऑल इण्डिया फारवर्ड ब्लॉक पश्चिम बंगाल के दो प्रमुख क्षेत्रीय दल हैं।
- दोनो ही दलों का राज्य सभा की विधायी प्रक्रिया में सीमित योगदान रहा।
- जिन विषयों को इन दलों द्वारा राज्य सभा में उठाया गया उनमे संगठित सोच का अभाव था।
- राज्य के विकास से सम्बन्धित बेहद सामान्य विषयों को उठाया गया।
- नेताजी सुभाष चन्द्र बोस से सम्बन्धित दस्तावेजों को सार्वजनिक करवाना ऑल इण्डिया फारवर्ड ब्लॉक की वरीयता सूची में है।
- राष्ट्र स्तरीय विषयों के सम्बन्ध में भी उक्त दलों द्वारा कोई विशेष योगदान नहीं दिया गया।

(9) उत्तर प्रदेश व बिहार के क्षेत्रीय दल

- इन दो राज्यों से सर्वाधिक क्षेत्रीय दल राज्य सभा में उपस्थित रहे।
- उत्तर प्रदेश से समाजवादी पार्टी व बिहार से राष्ट्रीय जनता दल सर्वाधिक सक्रिय क्षेत्रीय दलों में शामिल है। उक्त दलों की सहभागिता गुणात्मक की अपेक्षा मात्रात्मक अधिक है

अर्थात जो विषय इन दलों द्वारा राज्य सभा के समक्ष लाये गये उनमे किसी प्रकार की विशेष सोच का अभाव था।

- राज्य स्तरीय विषयों में मूल रूप से गंगा–यमुना की सफाई, बेरोजगारी, शिक्षा सम्बन्धी सुधार आदि पर ध्यान केन्द्रित किया गया।
- राष्ट्र स्तरीय व सामाजिक स्तर पर सभी प्रकार के विषयों को स्थान दिया गया परन्तु कोई नई नीति या समाधान सम्बन्धी सुझाव उत्तर प्रदेश व बिहार के क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया।
- समाजवादी पार्टी की सांसद श्रीमती जया बच्चन ने सक्रियता से तथा तार्किक आधार पर दोनों ही स्तरों से सम्बन्धित विषयों को विधायी प्रक्रियाओं के माध्यम से उजागर किया।

(10) कर्नाटक का क्षेत्रीय दल–

- जनता दल (सेक्यूलर) कर्नाटक का प्रमुख क्षेत्रीय दल है।
- जनता दल (सेक्यूलर) का झुकाव राष्ट्र स्तरीय व सामाजिक विषयों की ओर अधिक रहा।
- राज्य स्तरीय विषयों में मूलत: बैंगलोर शहर का विकास व सुनामी के कारण उत्पन्न समस्याऐं प्रमुख रहे।
- राष्ट्र स्तरीय विषयों में जनता दल (सेक्यूलर) द्वारा निम्न रेखांकित करने योग्य विषय रहे–
  - पाठ्यक्रम निर्धारण हेतु राष्ट्रीय समिति की स्थापना
  - राष्ट्रीय सांस्कृतिक बोर्ड की स्थापना
- जनता दल (सेक्यूलर) द्वारा मूलत: आधुनिकीकरण पर बल दिया गया।

7.4 पूर्व सामान्यीकरणों का परीक्षण व नवीन सामान्यीकरणों की रचना–

प्रस्तुत अध्ययन के विषय से सम्बन्धित पूर्व प्रचलित सामान्यीकरण निम्न है–

(1) राज्य सभा द्वित्तीय महत्व का सदन है

संवैधानिक प्रावधानों, एकात्मक संघवाद तथा प्रारम्भिक वर्षों में एकदलीय प्रभुत्व के कारण राज्य सभा का अस्तित्व दोहराने वाले सदन के रूप में ही रहा जो सामान्यत: लोक सभा के अनुगामी के रूप में कार्यरत रहा।

समकालीन परिस्थितियों में राज्य सभा का स्वरूप उक्त सामान्यीकरण के अनुरूप प्रतीत नहीं होता है। प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष भी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। राज्य सभा निर्वाचन में राजनीतिक दलों की सर्वथा नवीन भूमिका, महत्वपूर्ण विधेयकों के संसद में पारित होने की प्रक्रिया में राज्य सभा की सहभागिता का नया प्रारूप इस सामान्यीकरण को नकारता है कि

राज्य सभा द्वित्तीय महत्व का सदन है तथा इस नवीन सामान्यीकरण की ओर इंगित करता है कि राज्य सभा भारतीय संसद का द्वित्तीय सदन है परन्तु द्वित्तीय महत्व का सदन नहीं है।

(2) पृथक निर्वाचन प्रणाली तथा विशिष्ट सांगठनिक आधारों के पश्चात् समान विधायी व्यवहार के कारण लोक सभा तथा राज्य सभा समरूपी प्रतीत होने लगे हैं–

संविधान निर्माताओं द्वारा लोक सभा की स्थापना प्रतिनिधि सदन के रूप में (प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा) तथा राज्य सभा की स्थापना संघीय सदन के रूप में (अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा) की गई थी। यद्यपि दलगत बाध्यताओं के कारण दोनो सदनों का विधायी व्यवहार प्रथम दृष्टया एक समान प्रतीत होता है। तथापि सांगठनिक दृष्टि से विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि क्षेत्रीय दलों की अभिवृद्ध सहभागिता तथा दोनो सदनों में क्षेत्रीय दलों की अलग अनुपात में उपस्थिति वास्तव में दोनो सदनों को विषमरूपी बनाने की दिशा में अग्रसर है तथा इससे प्राप्त नवीन सामान्यीकरण अग्रलिखित हैं–

"भारतीय संसद के दोनो सदनों में क्षेत्रीय दलों की अभिवृद्ध सहभागिता वास्तव में दोनो सदनों को विषमरूपी स्वरूप प्रदान कर रही है।"

प्रस्तुत अध्ययन के सन्दर्भों में उक्त सामान्यीकरण अत्याधिक विशिष्ट है ऐसा इसलिये क्योंकि–

- दोनो सदनों में व्याप्त विषमरूपता का प्रमुख कारण क्षेत्रीय दल है।
- राजनीतिक कारणों, दलगत बाध्यताओं तथा स्वहितपूर्ती के दृष्टिकोण से इन दलों द्वारा दोनों सदनों (विशेषकर राज्य सभा) के विधायी व्यवहार में आमूल–चूल परिवर्तन लाये गये हैं।
- इस प्रवृत्ति के कारण लोक सभा तथा राज्य सभा के अन्तर्सम्बन्ध भी एक प्रकार से पुनर्परिभाषित हो गये है।

(3) राज्य सभा संघीय सदन अथवा राज्यों का सदन है

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है राज्य सभा की संकल्पना राज्यों के सदन के रूप में की गई थी। 1989 तक राज्य व्यवस्थापिकाओं व केन्द्रीय स्तर पर कांग्रेस के प्रभुत्व के कारण राज्यों के प्रतिनिधिक मंच के रूप में राज्य सभा की कोई विशेष भूमिका दृष्टिगोचर नहीं हुई।

क्षेत्रीय दलों के उदय ने राज्यों को भारतीय राजनीति के उपरिकेन्द्र में परिवर्तित कर दिया तथा राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में राज्य सभा में पहुंचे क्षेत्रीय दलों ने न सिर्फ राज्य सभा के

संघीय स्वरूप को अभिवृद्ध किया है बल्कि राज्य सभा के विकास को राज्यों के बेहतर प्रतिनिधित्व की दृष्टि से अग्रसारित किया है।

अत: प्रस्तुत अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष उक्त सामान्यीकरण की पुष्टि करते है कि राज्य सभा संघीय सदन अथवा राज्यों का सदन है।

7.5 परिकल्पनाओं का परीक्षण

अध्ययन हेतु ली गई परिकल्पनायें निम्न हैं–

(a) संघीय इकाइयों के प्रतिनिधि सदन के रूप में राज्य सभा का विकास उत्तरोत्तर दलीय प्रतिमानों से प्रभावित हो रहा है।

विश्लेषण के अनुसार यह परिकल्पना सत्य पाई गई।

(b) क्षेत्रीयता राष्ट्रीय हित का विलोम है

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के अनुसार प्रमुख क्षेत्रीय दलों द्वारा क्षेत्रीय व राष्ट्रीय हितों के बीच समन्वय स्थापित करने के समुचित प्रयास किये गये है। अत: यह परिकल्पना पूरी तरह सत्य नहीं है।

(c) राज्य सभा संघात्मक व्यवस्था की प्रतीक है

संघीय इकाईयों के नवीन परिवृत्य क्षेत्रीय दलों के राज्य सभा में समायोजन के आधार पर यह परिकल्पना सर्वथा सत्य है।

7.6 संरचनात्मक– प्रकार्यात्मक उपागम के आधार पर निष्कर्षों का परीक्षण

प्रस्तुत अध्ययन में विश्लेषण हेतु आमण्ड पॉवेल के संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम का चयन किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार राज्य सभा राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत अवस्थित एक संरचना है। क्षेत्रीय दल इस संरचना में राजनीतिक सामाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से प्रवेश करते हैं। निम्न रेखाचित्र द्वारा प्रक्रिया के सैद्धान्तिक स्वरूप को प्रदर्शित किया गया है।

रेखाचित्र संख्या – 29

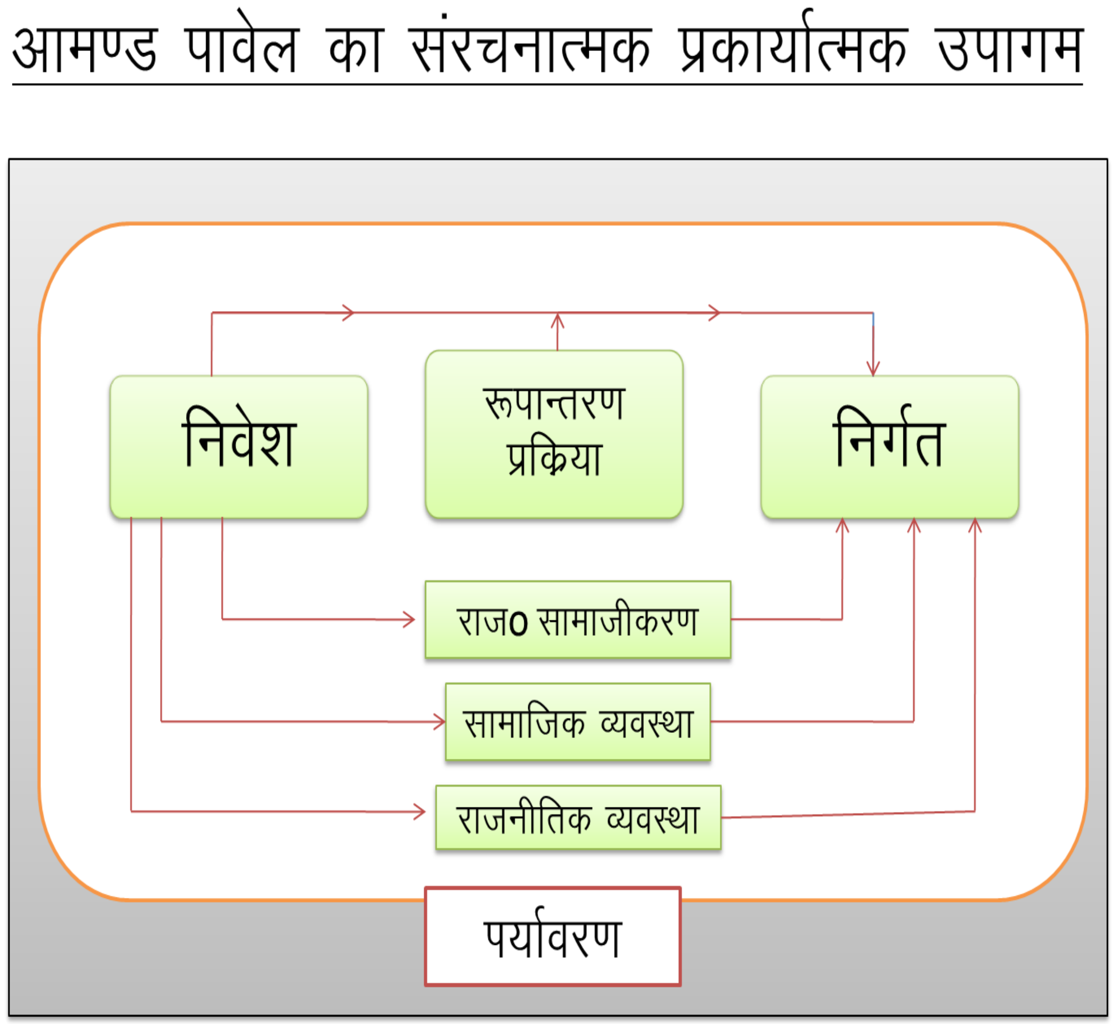

निवेश के रूप में संरचना में प्रवेश करने वाले क्षेत्रीय दल वे अभिकर्ता है जो विधायी प्रक्रियाओं के माध्यम से रूपान्तरण प्रक्रिया का अंग बनते हैं। राज्य सभा में आये परिवर्तन, नूतन प्रवृत्तियां और उनके परिणामस्वरूप राज्य सभा का विकास वस्तुत: उक्त कार्यविधि का निर्गत है तथा इस विकास का आकलन ही प्रस्तुत अध्ययन का केन्द्र है।

उपरोक्त सम्पूर्ण व्यवस्था के पर्यावरण में भारतीय संघात्मक व्यवस्था है, जो क्षेत्रीय दलों के विकास को पल्लवित व पोषित करती है तथा क्षेत्रीय दल विशिष्ट निर्वाचन प्रणाली के माध्यम से संघीय सदन अर्थात राज्य सभा तक पहुंच पाते हैं। राज्य सभा में इनकी उपस्थिति राज्य सभा के विकास में अनेक प्रकार से अपना योगदान देती है। सर्वप्रथम राज्य सभा संगठन में इनकी सुदृढ़ सहभागिता तथा विधायी प्रक्रियाओं के माध्यम से राज्य सम्बन्धी हितों का पोषण राज्य सभा के

संघीय स्वरूप को समृद्ध बनाता है। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि अधिकांश क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य स्तरीय व क्षेत्रीय हितों को सदन में स्वर प्रदान किया गया।

द्वित्तीयत: राष्ट्र स्तरीय व सामाजिक विषयों पर सजग व सक्रिय भूमिका के निर्वहन द्वारा क्षेत्रीय दल राज्य सभा को आवंटित कार्यों को पूरा करने की दिशा में सहयोग करके राज्य सभा के विकास को संविधान निर्माताओं द्वारा निर्देशित दिशा में गतिमान रखते हैं।

यद्यपि अध्ययन से स्पष्ट है कि कुछ क्षेत्रीय दल (पूर्व उल्लिखित) राज्य सभा में पूर्णत: निष्क्रिय रहे, यह प्रवृत्ति राज्य सभा सांसदों व राजनीतिक दलों की जवाबदेही सुनिश्चित किये जाने की आवश्यकता को इंगित करती है।

राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्था से निरन्तर प्राप्त प्रतिसंभरण के परिणामस्वरूप अध्ययन काल में तथा उसके बाद भी राज्य सभा में अनेक नूतन प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर हुई, जिन्होंने प्रकार्यों की अपेक्षा विकार्यों को प्रोत्साहित किया। परन्तु इसका अर्थ कदापि यह नहीं माना जा सकता है कि क्षेत्रीय दल राज्य सभा के विकास को बाधित कर रहे हैं। यह वास्तव में राज्य सभा के दलगत स्वरूप का परिणाम है जिसका समाधान राजनीतिक सुधारों में निहित है।

निष्कर्षत: संघीय इकाइयों का समुचित समावेशन तथा अनुकूलन ही राज्य सभा के विकास का समुचित मापदण्ड है तथा अध्ययन से प्राप्त परिणाम व तथ्य दर्शाते हैं कि राज्य सभा का विकास, क्षेत्रीय दलों के प्रभावस्वरूप भारतीय संघात्मक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में सकारात्मक दिशा में हो रहा है।

≈≈≈≈

शोध–सारांश

विषय के विभिन्न आयामों के परिचय व विवेचन हेतु शोध प्रबन्धों को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है–

<u>प्रथम अध्याय</u> विषय के सैद्धान्तिक पक्ष से सम्बन्धित है जिसे <u>आठ विभागों</u> में विभाजित किया गया है। <u>प्रथम भाग</u> भारतीय संघात्मक व्यवस्था तथा द्विसदनात्मकता की वांछनीयता एवं विकास पर प्रभाव डालता है साथ ही लोक सभा निर्वाचनों में क्षेत्रीय दलों के उत्तरोत्तर बढ़ते प्रतिशत के माध्यम से भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के इस नवीन परिवृत्य से परिचित करवाता है।

<u>द्वितीय भाग</u> में शोध के उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है। प्रस्तुत शोध कार्य का केन्द्रीय प्रश्न यह है कि क्षेत्रीय दल किस प्रकार राज्य सभा के कार्यकरण, एवं राज्यों के प्रतिनिधि सदन के रूप में राज्य सभा की भूमिका को प्रभावित कर रहे हैं। अध्ययन काल में राज्य सभा के संगठन तथा विधायी प्रक्रियाओं के विश्लेषण द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया है कि क्षेत्रीय दल किस प्रकार भारतीय संघात्मक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में राज्य सभा के विकास को प्रभावित कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत शोध–कार्य का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह भी है कि अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के द्वारा राज्य सभा तथा क्षेत्रीय दलों के अन्तर्सम्बन्धों के विषय में पूर्व सामान्यीकरणों का परीक्षण तथा नवीन सामान्यीकरणों की रचना की जा सके। इसलियें इस अध्ययन की विषय वस्तु के अन्तर्गत सामान्य रूपरेखा के साथ सामान्य उद्देश्य की योजना रखी गई है ताकि सामान्य परिकल्पनाओं तक पहुंचा जा सके।

अध्याय के **<u>तृतीय भाग</u>** में अध्ययन हेतु चयनित काल का विवरण है। प्रस्तुत शोध कार्य हेतु 2004 से 2010 का काल लिया गया है। इस काल में दो लोक सभा निर्वाचन सम्पन्न हुये। गठबन्धन संस्कृति तथा बहुदलीय व्यवस्था के अनेक नवीन आयाम 2004–2010 के मध्य उद्घाटित हुये जिन्होंने न सिर्फ स्थापित मान्यताओं को नवीन

स्वरूप प्रदान किया बल्कि संस्थाओं के कार्यकरण में भी परिवर्तन किया। अतः यही कारण है कि उक्त काल का चयन अध्ययन हेतु किया गया।

<u>चतुर्थ भाग</u> में अध्ययन की कार्यविधि समाविष्ट है। प्रस्तुत अध्ययन राजनीतिक समाजशास्त्र के क्षेत्र में आता है, तथा मूलतः द्वितीयक आंकड़ों पर आधारित है। ये आंकड़ें अध्ययन काल में राज्य सभा कार्यवाही के वाद–विवाद पर आधारित विश्लेषण द्वारा एकत्रित किये गये। अध्ययन हेतु वांछनीय निष्कर्ष प्राप्त करने के लिये आमण्ड–पावेल के संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम का प्रयोग किया गया है। साथ ही इस भाग में अध्ययन हेतु ली गई परिकल्पनायें व अवधारणायें भी शामिल की गई है। संघवाद तथा क्षेत्रीयतावाद वे प्रमुख अवधारणायें हैं जिनसे प्रस्तुत अध्ययन प्रेरित है।

अध्याय के **<u>पांचवे भाग</u>** में संघवाद की अवधारणा का सैद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत है। कार्ल जे. फ्रेडरिक के अनुसार संघवाद राजनीतिक समुदाय के संघीकरण की एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा अनेक राजनीतिक समुदाय समाधान हेतु प्रबन्धनों में प्रवेश करते हैं। साथ ही इस व्यवस्था के अन्तर्गत क्षेत्रीय हितों के संरक्षण हेतु समुचित प्रावधान उपस्थित है। प्रस्तुत अध्ययन में राज्य सभा के विकास का विश्लेषण संघात्मक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में किया गया है, जिसमें क्षेत्रीय दल राज्य–राजनीति के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित होते हैं।

<u>छठवां भाग</u> क्षेत्रीयतावाद की अवधारणा को स्पष्ट करता है। एक औपचारिक संस्था के रूप में क्षेत्रीयतावाद का उदय द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् हुआ। यह अवधारणा किसी क्षेत्र विशेष के लोगों की भावनाओं को स्वर देती है जो अपने पृथक अस्तित्व के लिये जागरूक हैं। भारतीय सन्दर्भों में क्षेत्रवाद के उभार के अनेक कारण हैं उदाहरणतः जातिगत, भाषागत, भौगोलिक, सांस्कृतिक आदि। इनके अतिरिक्त कुछ परिस्थितिजन्य कारण भी क्षेत्रीयता की भावना को प्रश्रय देते हैं जिसमे सर्वप्रमुख हैं क्षेत्रों के बीच आर्थिक असन्तुलन। महाराष्ट्र में विदर्भ, उत्तर प्रदेश में पूर्वांचल, बुन्देलखण्ड क्षेत्र इसके सर्वप्रमुख उदाहरण हैं। विभिन्न विचारधाराओं पर आधारित क्षेत्रीय दलों का उदय व्यवहार में क्षेत्रीयतावाद का ही विस्तार है।

प्रथम अध्याय का **<u>सातवां भाग</u>** आमण्ड पावेल के संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम की सैद्धान्तिक अवधारणा प्रस्तुत करता है। इस उपागम का प्रयोग प्रस्तुत अध्ययन में विश्लेषण हेतु किया गया है। जिसके अनुसार राज्य सभा अध्ययन की केन्द्रीय संरचना है, जिसके पर्यावरण का सबसे महत्वपूर्ण तत्व भारतीय संघात्मक व्यवस्था है। क्षेत्रीय दल निवेश के रूप में उक्त संरचना में प्रवेश करते है तथा विधायी प्रक्रियाओं के माध्यम से रूपान्तरण में शामिल होते हैं। राज्य सभा के कार्यकरण व स्वरूप में परिवर्तन उक्त कार्यविधि का निर्गत है।

प्रथम अध्याय का अंतिम तथा **<u>आठवां भाग</u>** उपलब्ध साहित्य की विवेचना से सम्बन्धित है। प्रस्तुत शोध कार्य के केन्द्रीय तत्व राज्य सभा, संघात्मक व्यवस्था तथा क्षेत्रीय दल हैं। राज्य सभा के सम्बन्ध में अधिकांश अध्ययन राज्य सभा के संगठन अथवा राज्य सभा व लोक सभा के अन्तर्सम्बन्धों पर केन्द्रित है तथा समकालीन राजनीतिक परिवृत्यों के परिप्रेक्ष्य में राज्य सभा के अध्ययन के विषय में विशेष प्रयास नहीं किये गये हैं। अतः संघात्मक राष्ट्र में राज्य सभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव का परीक्षण तथा विश्लेषण करना निश्चित ही एक नये आयाम को उजागर करता है।

अध्ययन का **<u>द्वितीय अध्याय</u>** संघात्मक व्यवस्था तथा द्वितीय सदनों के विवेचन पर आधारित है। यह अध्याय तीन भागों में विभाजित है। <u>प्रथम भाग</u> विश्व के प्रमुख संघो का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करता है। यह विवेचन संघात्मक व्यवस्था के सामान्य लक्षणों के आधार पर किया गया है। जैसे कि उद्देश्य की दृष्टि से, संघ निर्माण की दृष्टि से, अधिकार विभाजन की दृष्टि से, एककों की समानता, संविधान की सर्वोच्चता एवं दुष्परिवर्तनशीलता, स्वतन्त्र व सर्वोच्च न्यायपालिका, द्वैध शासन व्यवस्था आदि।

अध्याय का <u>द्वितीय भाग</u> भारतीय संघात्मक व्यवस्था के विकास और राज्य सभा पर केन्द्रित है। भारतीय संघ के निर्माण में सम्मिलन तथा पृथक्करण दोनों पद्धतियों को अपनाया गया है तथा यह व्यवस्था ऐतिहासिक अनुभवों व समकालीन परिस्थितियों का

मिश्रित परिणाम है। 1919 व 1935 के भारत शासन अधिनियम ने भारतीय संघात्मक व्यवस्था के आधार का निर्माण किया। सैद्धान्तिक तौर पर भारत के लिये एक ऐसी शक्तिशाली केन्द्र सहित संघात्मक व्यवस्था की रचना की गई, जिससे अखण्ड भारत का निर्माण किया जा सके परन्तु साथ ही प्रान्तों को भी समुचित स्वायत्ता दी जा सके।

अध्याय–2 का तृतीय भाग प्रमुख संघीय शासन प्रणालियों में द्विसदनात्मकता का परीक्षण प्रस्तुत करता है। द्विसदनीय पद्धति प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों के अनुकूल है तथा इसके माध्यम से व्यवस्थापिका शक्ति का विकेन्द्रीकरण सम्भव होता है। संघात्मक व्यवस्थाओं के अन्तर्गत संघीभूत इकाइयों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने हेतु द्वित्तीय सदन की स्थापना की जाती है। अलग–अलग व्यवस्थाओं में उपस्थित द्वित्तीय सदनों का संगठन, प्रतिनिधित्व के आधार पृथक–पृथक होते हैं, साथ ही प्रथम सदन के साथ उनके सम्बन्ध राष्ट्र विशेष की राजनीतिक प्रणाली पर निर्भर करते हैं। द्विसदनात्मक विधायिकाओं की समस्याऐं भी हैं जैसे विधायन कार्य में अवरोध, दोहराव, विलम्ब, अपव्यय, उत्तरदायित्व का विभाजन आदि।

अध्ययन के **तृतीय अध्याय** का शीर्षक है– भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य सभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों का प्रभाव – राज्यों के प्रतिनिधित्व के दृष्टिकोण से। इस अध्याय के अन्तर्गत राज्य सभा के संगठन पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। अध्याय तीन भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में संरचना के आधार पर विश्लेषण किया गया है। इसके अनुसार अध्ययन काल में राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों का औसत प्रतिशत 31% रहा। जो कि समकालीन लोक सभा के समकक्ष था।

द्वितीय भाग में दलीय प्रतिनिधित्व के आधार पर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन काल में कुल 32 क्षेत्रीय दल राज्य सभा में सक्रिय रहे। लोक सभा चुनाव 2009 में क्षेत्रीय दलों की सक्रियता के आधार पर राज्यों को चार श्रेणियों में बांटा गया है। प्रथम श्रेणी में वे राज्य है जहां क्षेत्रीय दल अतिसक्रिय हैं। द्वितीय श्रेणी के राज्यों

में लोक सभा सीटों में क्षेत्रीय दलों ने 49.9% तक स्थान प्राप्त किये। इस श्रेणी के राज्यों में क्षेत्रीय दलों की संख्या सर्वाधिक है। तृतीय श्रेणी के राज्यों में लोक सभा चुनावों में क्षेत्रीय दलों की सहभागिता 10% से 25% है जबकि न्यूनतम सहभागिता के राज्य चतुर्थ श्रेणी के अन्तर्गत रखे गये हैं। इस प्रकार भारत के 28 राज्यों में से 17 राज्य ऐसे हैं जहां क्षेत्रीय दल सक्रिय हैं।

अध्याय के तृतीय भाग में इकाइयों के आकार के आधार पर विश्लेषण किया गया है। इकाइयों का आकार संगठन के अध्ययन के विषय में इसलिये महत्वपूर्ण है क्योंकि भारतीय संविधान राज्य सभा में राज्य इकाइयों को जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व प्रदान करता है जो कि विश्व में उपस्थित अन्य संघीय व द्विसदनात्मक व्यवस्थाओं के विपरीत है। विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्षों के अनुसार बड़े आकार के राज्यों (जिन्हें राज्य सभा में 10 या अधिक सीटें आवंटित है) में से 72.7% (11 में से 8) राज्य ऐसे है जो राज्य सभा में राज्य को प्रतिनिधित्व प्रदान कर रहे हैं तथा इनमे से अधिकांश में एक से अधिक क्षेत्रीय दल सक्रिय है जो कि न सिर्फ इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि अधिक जनसंख्या विविधता को जन्म देती है बल्कि इस विविधता को राज्य सभा में प्रतिबिम्बित करने हेतु चयनित आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली को भी औचित्य प्रदान करती है।

अध्ययन के **चतुर्थ अध्याय** का शीर्षक है भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य सभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों का प्रभाव – राज्यों के हितों की दृष्टि से। इस अध्याय के अन्तर्गत राज्यों के हित संरक्षण के दृष्टिकोण से क्षेत्रीय दलों की सक्रियता का आकलन किया गया है। यह अध्याय छः भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में विधेयक प्रस्तुतिकरण में क्षेत्रीय दलों की सहभागिता के आधार पर विधि निर्माण में उनकी भागीदारी का विश्लेषण किया गया है। इस प्रक्रिया में क्षेत्रीय दलों की सहभागिता निराशाजनक रही है विशेष रूप से राज्य स्तरीय विधेयकों के सम्बन्ध में क्षेत्रीय दल चयनित अध्ययन काल में लगभग निष्क्रिय रहे हैं।

द्वितीय भाग विशेष उल्लेख की विधायी प्रक्रिया से सम्बन्धित है। विधेयक प्रस्तुतिकरण की तुलना में विशेष उल्लेख का प्रयोग क्षेत्रीय दलों द्वारा बेहतर तरीके से किया गया है तथा अध्ययन काल में प्रस्तुत कुल विशेष उल्लेख का 81% क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत किया गया। अध्याय का तृतीय भाग संसद में प्रश्न पूछने की प्रक्रिया सम्बन्धी विश्लेषण प्रस्तुत करता है। तेलगूदेशम, अन्नाद्रमुक, द्रमुक, बीजू जनता दल, समाजवादी पार्टी व बहुजन समाज पार्टी व राष्ट्रीय जनता दल द्वारा प्रश्नों के माध्यम से राज्य हितों के संरक्षण का समुचित प्रयास किया गया है। अध्याय के चतुर्थ व पंचम भाग में ध्यानाकर्षण प्रस्ताव तथा अल्पकालीन चर्चा में क्षेत्रीय दलों की राज्य स्तरीय हितों के दृष्टिकोण से सक्रियता का विश्लेषण किया गया है।

अध्याय के आखिरी तथा छठवें भाग में विषय प्रस्तुतिकरण के आधार पर क्षेत्रीय दलों का परीक्षण किया गया है। राज्यों को उनकी विशिष्टताओं के आधार पर समूहीकृत करके, विभिन्न विधायी प्रक्रियाओं के माध्यम से राज्य सभा के संज्ञान में लाये गये विषयों का अध्ययन किया गया है तथा इसके माध्यम से राज्य स्तरीय हितों के संरक्षण के सन्दर्भ में क्षेत्रीय दलों की सक्रियता का विश्लेषण किया गया है। अध्याय से प्राप्त निष्कर्ष मूलत: दो प्रकार के है। प्रथमत: वे निष्कर्ष जो विभिन्न क्षेत्रीय दलों के सम्बन्ध में है द्वितीयत: उन विषयों के सम्बन्ध में जो क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य सभा के समक्ष प्रस्तुत किये गये।

अध्याय पंचम राज्य सभा के कार्यकरण में क्षेत्रीय दलों की सहभागिता का अध्ययन राष्ट्र स्तरीय हितों के संरक्षण के दृष्टिकोण से करता है। अध्याय का शीर्षक है भारतीय संघात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य सभा के विकास पर क्षेत्रीय दलों का प्रभाव–संघीय अखण्डता व राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से।

इस अध्याय में विश्लेषण के माध्यम से क्षेत्रीय दलों की राज्य सभा के राष्ट्रीय चरित्र के साथ समन्वय की क्षमता का आकलन किया गया है। क्षेत्रीय दल मूलत: सीमित विचारधारा पर आधारित होते हैं अत: राष्ट्र स्तरीय महत्व के विषयों के प्रति उनका दृष्टिकोण जानना अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों

के अनुसार आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु के क्षेत्रीय दलों द्वारा राज्य स्तरीय व राष्ट्रीय विषयों में सन्तुलन बनाये रखा गया है। जबकि आश्चर्यजनक रूप से उत्तर प्रदेश व बिहार के क्षेत्रीय दलों का झुकाव राष्ट्रीय स्तर के सामाजिक विषयों की ओर अधिक रहा।

छठवां अध्याय राज्य सभा के विकास के सम्बन्ध में नवीन प्रवृत्तियों के विश्लेषणात्मक अध्ययन पर आधारित है। अध्याय को छः भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग जनप्रतिनिधित्व कानून (1951) में संशोधन के दुरूपयोग पर प्रकाश डालता है। मूल कानून में राज्य सभा सांसद का उस राज्य का निवासी होना अनिवार्य था जिस राज्य का वे प्रतिनिधित्व कर रहे हों। 2003 में इस अनिवार्यता को समाप्त कर दिये जाने के कारण राज्य सभा का प्रयोग राजनीतिक शरणस्थली के रूप में किया जाना सरल हो गया।

द्वितीय भाग समकालीन परिस्थितियों में लोक सभा व राज्य सभा में व्याप्त दलगत विषमरूपता पर आधारित है, जिसमे क्षेत्रीय दलों का विशिष्ट योगदान है। यह विषमरूपता न सिर्फ राज्य सभा के विधायी व्यवहार को परिवर्तित कर रही है बल्कि लोक सभा तथा राज्य सभा के विधायी सम्बन्धों को भी पुनर्परिभाषित करने में सफल हो रही है। राज्य सभा व लोक सभा के दलीय समीकरण विषमरूपी होने की स्थिति में सत्तापक्ष द्वारा विधायी कार्यों के सुचारू संचालन की दृष्टि से राज्य सभा में बहुमत प्राप्त करना अपरिहार्य हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप राज्य सभा निर्वाचन राजनीतिक दलों हेतु शक्ति प्रदर्शन का मंच बन गये हैं, जिससे उत्पन्न नूतन प्रवृत्ति है राज्य सभा निर्वाचन में भ्रष्टाचार जिसका विवेचन अध्याय के तीसरे भाग में किया गया है। प्रस्तुत अध्याय के चौथे भाग में राज्य सभा में व्याप्त प्रक्रियागत नूतन प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया गया है, इस विश्लेषण से स्पष्ट हैं कि राज्य सभा में विभिन्न विधायी प्रक्रियाओं को वर्षभर में दिये जाने वाले समय में निरन्तर कमी आ रही है जिसका अनिवार्य परिणाम राज्य सभा की उत्पादकता में आई गिरावट के रूप में देखने में आया परन्तु साथ ही यह तथ्य भी दृष्टिगोचर हुआ कि संघीय हितों हेतु संघर्ष करने की प्रवृत्ति का अभी क्षरण नहीं हुआ है।

अध्याय के पांचवें भाग में राज्य सभा के कार्य व्यवहार व संगठन पर क्षेत्रीय दलों के प्रभाव के परिणामस्वरूप उपस्थित भविष्य हेतु संकेत विवेचित किये गये है उदाहरणत: विधायी प्रक्रियाओं में सत्तापक्ष की बढ़ती निर्भरता अथवा संसद के दोनो सदनों में क्षेत्रीय दलों की निरन्तर बढ़ती सहभागिता के कारण दोनो सदनों की चारित्रिक विलक्षणता विलुप्त होने की सम्भावना आदि।

अध्याय के छठवें भाग में राज्य सभा को अधिक अर्थपूर्ण बनाने के लिये सुधार हेतु सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं। जिनका मुख्य लक्ष्य है राज्य सभा तथा लोक सभा के विधायी सम्बन्धों में सुधार लाते हुये संसद की उत्पादकता में वृद्धि करना।

अध्ययन का अंतिम अध्याय **सप्तम अध्याय** है जिसमें अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है यह अध्याय छ: भागों में विभाजित है प्रथम भाग संगठन सम्बन्धी निष्कर्ष प्रस्तुत करता है जिसके अनुसार राज्य सभा में क्षेत्रीय दलों की सहभागिता निरन्तर अभिवृद्ध हो रही है, जो कि न केवल संघात्मकता के सुदृढ़िकरण की परिचायक है बल्कि राज्य सभा की विशिष्ट निर्वाचन प्रक्रिया को भी वैधता प्रदान करती है।

अध्याय के द्वितीय भाग में विधायी प्रक्रियाओं में क्षेत्रीय दलों के सहभागिता सम्बन्धी निष्कर्ष समाहित है। यह सहभागिता दो सन्दर्भों में विश्लेषित की गई है प्रथम मात्रात्मक सहभागिता अर्थात राज्य सभा की विधायी प्रकिया में क्षेत्रीय दलों के सक्रिय सदस्यों की संख्या एवं द्वितीयत: गुणात्मक सहभागिता अर्थात विधायी प्रक्रियाओं में क्षेत्रीय दलों द्वारा उठाये गये विषयों की प्रकृति।

अध्याय के तीसरे भाग में क्षेत्रीय दलों का विषयवार सहभागिता के आधार पर सामान्य विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। अध्याय के चौथे भाग के अन्तर्गत पूर्व सामान्यीकरणों का परीक्षण करते हुये नवीन सामान्यीकरणों की रचना की गई है जो कि इस प्रकार हैं–

(1) राज्य सभा भारतीय संसद का द्वितीय सदन है परन्तु द्वितीय महत्व का सदन नहीं है।

(2) भारतीय संसद के दोनों सदनों में क्षेत्रीय दलों की अभिवृद्ध सहभागिता वास्तव में दोनों सदनों को विषमरूपी स्वरूप प्रदान कर रही है।

(3) राज्य सभा संघीय सदन अथवा राज्यों का सदन है।

अध्याय के पांचवें भाग में अध्ययन हेतु ली गई परिकल्पनाओं का परीक्षण प्रस्तुत किया गया है।

अध्याय के छठवें एवं अंतिम भाग में संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक उपागम के आधार पर निष्कर्षों का परीक्षण किया गया है। राज्य सभा संगठन में क्षेत्रीय दलों की सुदृढ़ सहभागिता तथा विधायी प्रक्रियाओं में सक्रियता राज्य सभा को आवंटित कार्यों को पूरा करने की दिशा में सहयोग करने के साथ राज्य सभा के विकास को संविधान निर्माताओं द्वारा निर्देशित दिशा में गतिमान बना रही है।

निष्कर्षत: संघीय इकाइयों का समुचित समावेशन तथा अनुकूलन ही राज्य सभा के विकास का समुचित मापदण्ड है तथा अध्ययन से प्राप्त परिणाम व तथ्य दर्शाते है कि राज्य सभा का विकास, क्षेत्रीय दलों के प्रभावस्वरूप भारतीय संघात्मक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में सकारात्मक दिशा में हो रहा है।

≈≈≈≈

क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत कुल प्रश्नों की तालिका

दल का नाम	कुल प्रश्न	राष्ट्र स्तरीय प्रश्न	राज्य स्तरीय प्रश्न
BPF	16	2	14
ABLC	410	401	9
MNF	37	8	29
PDP	191	56	135
RLD	115	80	35
RPI	166	109	57
SBP	104	66	38
PMK	0	0	0
HVP	0	0	0
LJP	268	141	127
AGP	551	186	365
JMM	0	0	0
JD(S)	571	445	126
SDF	362	194	168
SAMATA	103	65	38
NPF	179	66	113
AIFB	28	25	3
ML	129	68	61
J&KNC	48	6	42
RSP	634	480	154
AITC	8	8	0
SAD	1816	1166	650
INLD	166	105	61
SS	2959	2368	591
BJD	2314	1111	1203
JD(U)	1138	1060	78
TDP	5214	3700	1514
RJD	1317	846	471
DMK	503	351	152
AIADMK	4441	3435	1006
SP	5826	4813	1013
BSP	583	413	170

क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत कुल विशेष उल्लेखों की तालिका

दल का नाम	कुल विशेष उल्लेख	राष्ट्र स्तरीय विशेष उल्लेख	राज्य स्तरीय विशेष उल्लेख
BPF	0	0	0
ABLC	6	6	0
MNF	3	0	3
PDP	18	1	17
RLD	0	0	0
RPI	14	8	6
SBP	15	9	6
PMK	0	0	0
HVP	0	0	0
LJP	5	4	1
AGP	13	5	8
JMM	0	0	0
JD(S)	4	4	0
SDF	17	3	14
SAMATA	0	0	0
NPF	3	0	3
AIFB	10	5	5
ML	7	5	2
J&KNC	1	0	1
RSP	20	12	8
AITC	2	0	2
SAD	13	6	7
INLD	14	6	8
SS	30	21	9
BJD	39	23	16
JD(U)	33	24	9
TDP	189	115	74
RJD	57	30	27
DMK	16	8	8
AIADMK	184	86	98
SP	170	142	28
BSP	39	25	14

क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत कुल विधेयकों की तालिका

दल का नाम	कुल विधेयक	राष्ट्र स्तरीय विधेयक	राज्य स्तरीय विधेयक
BPF	0	0	0
ABLC	0	0	0
MNF	1	1	0
PDP	0	0	0
RLD	0	0	0
RPI	1	1	0
SBP	1	1	0
PMK	0	0	0
HVP	0	0	0
LJP	0	0	0
AGP	1	1	0
JMM	0	0	0
JD(S)	0	0	0
SDF	5	4	1
SAMATA	0	0	0
NPF	2	0	2
AIFB	0	0	0
ML	0	0	0
J&KNC	0	0	0
RSP	4	4	0
AITC	0	0	0
SAD	0	0	0
INLD	0	0	0
SS	7	7	0
BJD	13	13	0
JD(U)	4	4	0
TDP	6	6	0
RJD	1	1	0
DMK	2	1	1
AIADMK	6	4	2
SP	25	25	0
BSP	18	18	0

क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत कुल अल्पकालीन चर्चा की तालिका

दल का नाम	कुल अल्पकालीन चर्चा	राष्ट्र स्तरीय अल्पकालीन चर्चा	राज्य स्तरीय अल्पकालीन चर्चा
BPF	2	2	0
ABLC	16	16	0
MNF	0	0	0
PDP	1	1	0
RLD	2	2	0
RPI	4	3	1
SBP	8	8	0
PMK	0	0	0
HVP	0	0	0
LJP	2	2	0
AGP	4	4	0
JMM	0	0	0
JD(S)	0	0	0
SDF	0	0	0
SAMATA	8	8	0
NPF	0	0	0
AIFB	10	9	1
ML	8	6	2
J&KNC	9	9	0
RSP	19	17	2
AITC	6	6	0
SAD	3	3	0
INLD	2	2	0
SS	24	21	3
BJD	12	12	0
JD(U)	15	15	0
TDP	47	47	0
RJD	54	53	1
DMK	30	30	0
AIADMK	60	60	0
SP	89	89	0
BSP	11	11	0

क्षेत्रीय दलों द्वारा प्रस्तुत कुल ध्यानाकर्षण प्रस्तावों की तालिका

दल का नाम	कुल ध्यानाकर्षण प्रस्ताव	राष्ट्र स्तरीय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव	राज्य स्तरीय ध्यानाकर्षण प्रस्ताव
BPF	1	0	1
ABLC	9	8	1
MNF	0	0	0
PDP	0	0	0
RLD	0	0	0
RPI	7	3	4
SBP	5	3	2
PMK	0	0	0
HVP	0	0	0
LJP	1	1	0
AGP	5	3	2
JMM	0	0	0
JD(S)	0	0	0
SDF	4	4	0
SAMATA	0	0	0
NPF	1	0	1
AIFB	1	1	0
ML	3	2	1
J&KNC	1	1	0
RSP	13	13	0
AITC	2	2	0
SAD	7	7	0
INLD	0	0	0
SS	17	12	5
BJD	2	2	0
JD(U)	5	5	0
TDP	24	24	0
RJD	24	23	1
DMK	17	17	0
AIADMK	24	24	0
SP	33	29	4
BSP	6	6	0

क्षेत्रीय दलों द्वारा विशेष अनुमति से उठाये गये विषयों की तालिका

दल का नाम	कुल विषय	राष्ट्र स्तरीय विषय	राज्य स्तरीय विषय
BPF	5	1	4
ABLC	13	13	0
MNF	0	0	0
PDP	0	0	0
RLD	2	2	0
RPI	0	0	0
SBP	4	3	1
PMK	0	0	0
HVP	0	0	0
LJP	9	6	3
AGP	23	11	12
JMM	0	0	0
JD(S)	0	0	0
SDF	3	2	1
SAMATA	1	1	0
NPF	0	0	0
AIFB	6	4	2
ML	3	3	0
J&KNC	5	5	0
RSP	26	20	6
AITC	12	9	3
SAD	13	7	6
INLD	5	3	2
SS	50	29	21
BJD	23	14	9
JD(U)	73	53	20
TDP	148	83	65
RJD	139	97	42
DMK	53	37	16
AIADMK	123	82	41
SP	303	209	94
BSP	41	23	18

PRIVATE MEMBER'S BILLS PASSED BY PARLIAMENT SINCE 1952

S.No.	Title	MP's Name	House	Date of Assent
1	The Muslim Wakfs Bill, 1952	Syed Mohammed Ahmed Kasmi	Lok Sabha	21.05.1954
2	The Indian Registration (Amendment)Bill, 1955	S.C. Samanta	Lok Sabha	06.04.1956
3	The Parliamentary Proceedings (Protection of Publication)Bill, 1956	Feroze Gandhi	Lok Sabha	26.05.1956
4	The Code of Criminal Procedure (Amendment)Bill, 1953	Raghunath Singh	Lok Sabha	01.09.1956
5	The Women's and Children's Institutions (Licensing)Bill,1954	Kamledu Mati Shah	Lok Sabha	30.12.1956
6	The Code of Criminal Procedure (Amendment)Bill, 1957	Subhadra Joshi	Lok Sabha	26.12.1960
7	The Salary and Allowances of Members of Parliament (Amendment)Bill, 1964	Raghunath Singh	Lok Sabha	29.09.1964
8	The Hindu Marriage (Amendment)Bill, 1963	Diwan Chand Sharma	Lok Sabha	20.12.1964
9	The Supreme Court (Enlargement of Criminal Appellate Jurisdiction)Bill, 1968	Anand Narian Mullah	Lok Sabha	09.08.1970
10	The Ancient and Historical Monuments and Archeological Sites and Remains (Declaration of National Importance) Bill, 1954	Dr Raghubir Singh	Rajya Sabha	15.12.1956
11	The Hindu Marriage (Amendment)Bill, 1956	Dr Seeta Parmanand	Rajya Sabha	20.12.1956
12	The Orphanages and Other Charitable Homes (Supervision and Control)Bill, 1960	Kailash Bihari Lall	Rajya Sabha	09.04.1960
13	The Marine Insurance Bill, 1959	MP Bhargava	Rajya Sabha	18.04.1963
14	The Indian Penal Code (Amendment)Bill, 1963	Diwan Chaman Lal	Rajya Sabha	07.09.1969

Bibliography

1. A.V. Dicey : Introduction to the study of the law of constitution : 1959 :
2. Alonso, S., Cabeza, L., & Gomez, B., Parties' electoral strategies in a two dimensional political space, Party Politics, No. 21 (6), 2015:
3. Amal Ray : Inter Governmental Relations in India – A Study of Indian Federalism : Asia Publication House Bombay 1966
4. Arora, Balveer, "Federalisation of India's Party System", in Ajay K. Mehra, D. D. Khanna and Gert W. Kueck (ed.), Political Parties and Party Systems, New Delhi, Sage, 2003:
5. Arora, Balveer, "Negotiating Differences: Federal Coalitions and National Cohesion", in Francine R. Frankel, Zoya Hasan, Rajeev Bhargava and Balveer Arora, (ed.) Transforming India: Social and Political Dynamics of Democracy (New Delhi: Oxford), 2000:
6. Arora, Balveer, "Political Parties and the Party System: The Emergence of New Coalitions, "Zoya Hasan (ed.), Parties and Party Politics in India (New Delhi: Oxford University press), 2002:
7. Arora, Balver, Regional aspirations and national cohesion: Federal coalitions in the 1998 Lok Sabha elections. West Bengal Political Science Review, No. 1 (1-2), 1999:
8. Arora, Blveer, "Political Parties and the Party System: The Emergence of New coalitions", Subhash Kashyap, D. D Khanna, and Gert W. Kueck (ed.), Review the Constitution? (New Delhi: Shipra) 2000:
9. Axelrod, Robert, Conflict of Interest (Chicago: Markham), 1970.
10. B – Mohanan, The Politics of Reojionalism in South Asia - 1992 PP 152 HB 817/563244 Atalintic Publishers
11. B.L. Fadia, State politics in India Vol. I Radiant Publication New Delhi 1984
12. Basile, L., A dwarf among giants? Party competition between ethno-regionalist and state-wide parties on the territorial dimension: The case of Italy (1963-2013), Party Politics, No. 21 (6), 2015:

13. Binder, S. A., The dynamics of legislative gridlock, 1947-96. American Political Science Review, No. 93 (3), 1999:
14. Bogdanor, Vernon (ed.), Coalition Government in Western Europe (London: Heinemann), 1983.
15. Brass, Paul R., “Coalition Politics in North India”, American Political Science Review, No. 62 (4), 1968:
16. Browne, Eric C. & M., Franklin, Aspects of Coalition Payoffs in European Parliamentary Democracies, American Political Science Review, No. 67 (2), 1973:
17. Browne, Eric C., John P. Frendreis, & Dennis W. Gleiber, An “Events” Approach to the problem of Cabinet Stability. Comparative Political Studies, No. 17 (2), 1984:
18. Budge, Ian & Hans Keman; Parties and Democracy: Coalition Formation and Government Functioning in Twenty States (Oxford: Oxford University Press), 1990.
19. Budge, Ian & Michael Laver, “The Policy Basic of Government Coalitions: A Comparative Investigation, “British Journal of Political Science, No. 23 (4) 1993:
20. Budge, Ian & Michael Laver, Office Seeking and Policy Pursuit in Coalition Theory”, Legislative Studies Quarterly, No. 11 (4), 1986:
21. Budge, Ian, “Great Britain and Ireland: Variations on a Dominant Party Government,” in Josep M. Colomer (ed.), Political Institutions in Europe (London: Routledge), 1996:
22. C.F. Strong : Modern Political Constitution London, Sidwick & Jackson :
23. Carubba, Clifford J., & Craig Volden, Coalitional Politics and Logrolling in Legislative Institutions, American Journal of Political Science, No. 44 (2), 2000:
24. Chhibber, Pradeep K. and Irfan Nooruddin, Party Competition and Fragmentation in Indian National Elections: 1957-98”, Paul Wallace and Ramashrai Ray (ed.), Indian Politics and the 1998 Elections: Regionalism, Hindutva, and State Politics (New Delhi: Sage), 2000:
25. Cox, Gary W., Making Votes Count: Strategic Coordination in the World’s Electoral Systems (Cambridge: Cambridge University Press), 1997.
26. Crombez, Christophe, Minority Governments, Minimal Winning Coalitions and Surplus Majorities in Parliamentary Systems, European Journal of Political Research No. 29 (1), 1996:

27. De Swaan, Abram, Coalition Theories and Cabinet Formations (Amsterdam: Elsevier), 1973.
28. De. J.R. op. cit.(Deepshikha)
29. Detterbeck, K. & Hepburn, E., Party Politics in multi-level systems. In Swenden, W. (Ed.), New Directions in Federalism Studies, London: Routledge/ECPR, 2010:
30. Diermeier, Daniel, & Antonio Merlo, Government Turnover in Parliamentary Democracies, Journal of Economic Theory, No. 94 (1), 2000:
31. Diwan P., Amending Power and Constitutional Amendments – 1997 – Deep & Deep Publication Ltd.
32. Dodd, Lawrence C., "The Study of Cabinet Durability: Introduction and Commentary", Comparative Political Studies, No. 17 (2), 1984:
33. Dodd, Lawrence C., Coalitions in a Parliamentary System (Princeton, NJ: Princeton University Press), 1976.
34. Downs, William M., Coalition Government, Subnational Style: Multiparty Politics in Europe's Regional Parliaments (Columbus: Ohio State University Press), 1998.
35. Dr. B.R. Ambedkar : Constituent Assembly Debates Vol. III
36. Dr. Shri Ram Maheshwari : State Government In India :
37. Druckman, James N., & Thies, Michael F., The importance of concurrence: The impact of bicameralism on government formation and duration, American Journal of Political Science, No. 46 (4), 2002:
38. Druckman, James N., Dynamic approaches to studying parliamentary coalitions. Political Research Quarterly, No. 61 (3), 2008:
39. Druckman, James N., Martin, Lanny W., & Thies, Michael F., Influence without confidence: Upper chambers and government formation, Legislative Studies Quarterly, No. 30 (4), 2005:
40. Elias, A., Szocsik, E. & Zuber, C. I., Position, selective emphasis and framing: How parties deal with a second dimension in competition, Party Politics, No. 21 (6), 2015:
41. Fortunato, David, Konig, Thomas, & Proksch, Sven-Oliver, Government agenda-setting and bicameral conflict resolution, Political Research Quarterly, No. 66 (4), 2013:
42. G Palanithurai, Indian Polity : Myth & Reality, ISBN 81-85475-78-4, 1993
43. Gandhi M.K. : India of My Dreams :

44. Garner W.J.: Political Science nad Government 2nd Indian Edition :
45. Gehlot N.S., Current Trends in Indian Politics : 1998 : Deep & Deep Publication
46. Gibson, E. L. & Suarez-Cao, J., Federalized party systems and subnational party competition: Theory and an Empirical application to Argentina, Comparative Politics, No. 43 (1), 2010:
47. Grover U. Arora R., Development of Politics and Government in India: 1994-5 : Deep & Deep Publication
48. Grover U. Arora R., The Indian Presidency and working of Parliamentary Democracy : 1994 : Deep & Deep Publications
49. Grover U., Trends and Challenges to Indian Political System : 1990 : Deep & Deep Publications.
50. Grover V. : Indian Political System : Trends and Challenges : 1997 : Deep & Deep Publications
51. Grover V., Arora R., Constitutional Schemes and Political development in India : Towards Transfer of Power : 1994 : Deep & Deep Publication Ltd.
52. Grover V., Essay on Indian Government and Politics : 1989 : Deep and Deep Publications
53. Grover V., Federal System, Centre – State Relations and State Autonomy : 1997 : Deep & Deep Publications
54. Grover V., Indian Political System and Constitution Making : 1997 : Deep & Deep Publications New Challenges to Indian Politics : Gehlot N.S. : 2002 : Deep & Deep Publications
55. Grover V., The Constitution of India : 1999 : Deep & Deep Publications.
56. Grover V., The Constitution of India : 1999 : Deep & Deep Publications.
57. H.N. Sinha, The Development of Indian Polity, 6181 361102 Shree Publishers,
58. Hasan, Zoya(ed), Parties and party politics in India (New Delhi: Oxford University Press), 2002.
59. Hasan, Zoya, "Region and Nation in India's Political Transition" in Ian Copland and John Rickard (eds.), Federalism: Comparative perspectives From India and Australia, (New Delhi: Manohar), 1999:
60. Hasan, Zoya, Congress after Indira (New Delhi: Oxford University Press), 2012.
61. Huber, J.D., "Parliamentary Rules and Party Behavoir during Minority Governments" in W.C. Muller & K. Strom (eds.), Policy Office, or Votes? How

Political Parties in Western Europe Make Hard Choices(Cambridge: Cambridge University Press), 1999:

62. Immergut, E.M., The Swedish Constitution and Social Democratic Power: Measuring the Mechanical Effects of a Political Institution. Scandinavian Political Studies, No. 25, 2002:
63. Iyer V.R.K., Indian Federalism : Dialectics and Dynamics : 1993 : Deep & Deep Publication
64. J.C. Johri : Select World Constitution :
65. J.C.Johri : Select World Constitution :
66. J.D.B. Miller : Austrian Government and Politics :
67. J.L.Nehru : Discovery of India :
68. J.R.Mallory : The Structure of the Canadian Government :
69. James Bryce : The American Common Wealth : Volume I Chapter
70. Jeffery, C. & Hough, D., Regional elections in multi-level systems, European Urban and Regional Studies, No. 10 (3), 2003:
71. Jera : B.B. : Contradictions of Equal soverignities in India : An article in Indian Journal of Political Science : Vol. III no. I 1962
72. K. Hanu,manthaiya CAD Vol. II
73. K.B. Rao : Parliamentary democracy in India :
74. K.B. Rao : Parliamentry Democracy in India :
75. K.C. Wheare : Federal Government : 1953 :
76. K.C.Wheare : Federal Government Pg. 20, Green wood Press ISBN -978 – 03132270289, 10 Oct. 1980
77. K.C.Wheare : Modern Constitutions : London : Oxford University Press 1966
78. K.R.Bombwall : The Foundation of Indian Federalism:
79. Kailash K.K., 'Regional Parties in the 16th Lok Sabha Elections: Who Survived and Why?', Economic and Political Weekly, No. 49 (39), 2014:
80. Kailash K.K., and Balveer Arora, Federal Coalitions in India: Strategic Calculations and Revolving-door Partners. Studies in Indian Politics, No. 4 (1), 2016:
81. Kailash K.K., Institutionalizing a coalitional system and games within coalitions in India (1996-2014). Studies in Indian Politics, No. 2(2), 2014:

82. Kailash, K.K., Alliances and lessons of election 2009, Economic and Political Weekly, No. 44 (39), 2009:
83. Kailash, K.K., Competition and coalition formation in the new party system, In Sridharan, E. (Ed.), Coalition politics in India: Selected issues at the centre and the states, New Delhi: Academic Foundation, 2014:
84. Kailash, K.K., Middle game in coalition politics, Economic and Political Weekly, No. 42 (4), 2007:
85. Kumar P., Studies in Indian federalism : 1988 : Deep & Deep Publications.
86. Lane, Jan-Erik & Svante Ersson, The New Institutional Politics: Performance and Outcomes (London: Routledge), 2000.
87. Laver, Michael & Kenneth A., Shepsle, Making and Breaking Governments: Cabinets and Legislaturesin Parliamentary Democracies (Cambridge: Cambridge University Press, original edition 1996), 1999.
88. Laver, Michael & Norman Schofield, Bargaining theories and portfolio payoffs in European Coalition Governments 1945-1983, British Journal of Political Science, No. 15 (2), 1985:
89. Laver, Michael, & Norman Schofield, Multiparty Government: The Politics of Coalition in Europe (Ann Arbour: The University ofMichigan Press, original edition 1990), 1998.
90. Laver, Michael, Dynamic factors in government coalition formation, European Journal of Political Research, No. 2 (3), 1974:
91. Laver, Michael, Government Formation and Public Policy. PS: Political Science and Politics, No. 33 (1), 2000:
92. Leiserson, Michael, Factions and Coalitions in One-Party Japan: An Interpretation based on the Theory of Games, American Political Science Review, No. 62 (3), 1968:
93. Lijphart, Arend, Democracies: Patterns of Majoritarian and Consensus Government in Twenty-one Countries (New Haven and London: Yale University Press), 1984.
94. Linz, Juan, The Perils of Presidentialism, Scholor. Harvard. Edu/levitsky/files/1. 1 linz.pdf (accessed January,10,2016), 1990.

95. Loewenberg, Gerhard and Semuel c. Patterson 1979 compairing legislatures, Bosten Little Brown
96. Luebbert, Gregory M., A Theory of Government Formation, Comparative Political Studies, No. 17 (2), 1984:
97. Luebbert, Gregory M., Coalition Theory and Government Formation in Multiparty Democracies, Comparative Politics, No. 15 (2), 1983:
98. M.Olson : Democratic Legislative Institutions, A comparative view, M.E.Sharpe 1994
99. M.R. Bijju, Parliamentary Democracy and Political Change in India, ISBN 81-7391-283-1, 1999
100. Massetti, E. & Schakel, A.H., From class to region: How regionalist parties link (and subsume) left-right into centre-periphery politics, Party Politics, No. 21 (6), 2015:
101. Meny, Yves, "The Institutionalization of Leadership," in Josep M. Colomer (ed.), Political Institutions in Europe (London: Routledge), 1996:
102. Mershon, Carol, The Costs of Coalition Theories and Italian Governments, American Political Science Review, No. 90 (3), 1996:
103. Mohd. Yasin & Pradip K. Sengupta, Indian Politics : Processes, Issues and Trends, ISBN 81-7391-647-0, 2004
104. Mukherjee S., Political Science Annual 1992-99 Political Science Annual 1992-99 : : Deep & Deep Publications
105. Norman D. Palmer – The Indian Political System - Houghton Mifflin Company Boston – 1971
106. Pai, Sudha, "From One-Party Dominance to Multi-partyism: Regionalising Trends in the Development of the Indian Multi-Party System," In S. Bhatnagar and Pradeep Kumar (eds.), Some Issues in Contemporary Indian Politics: Essays in Honour of Professor Shanti Swarup (New Delhi: Ess Ess), 1997:
107. Pai, Sudha, Transformation of the Indian Party System: The 1996 Lok Sabha Elections, Asian Survey No. 36 (12), 1996:
108. Qureshi M.A., Indian Parliament : Powers, Privileges & Immunities : 1994 : Deep & Deep Publication

109. Rajput R.S., Dynamics of Democratic Politics in India Dynamics of Democratic Politics in India : : Deep & Deep Publications

110. Ricciuti, Roberto, Legislature Size, Bicameralism and Government Spending: Evidence from Democratic Countries. IUP Journal of Governance & Public Policy, No. 5 (1/2), 2010:

111. Riker, William H., The Theory of Political Coalitions (New Haven: Yale University Press), 1962.

112. Roller, E. & Van Houten, P., A national party in a regional party system: The PSC-PSOE in Catalonia, Regional & Federal Studies, No. 13 (3), 2003:

113. S.K. Chaube & Susheela Kaushik, Indian Democracy at the turns of Century, ISBN 81-7391-312-9, 1999

114. S.L. Shakdher – The Constitution and the Parliament in India - Published for the Lok Sabha Secretariat – 1976

115. S.S. Bhale Rao, The Second Chamber Its Role In Modern Legislatures Publisher – The Rajya Sabha Secretainat, New Delhi – Secretary General Rajya Sabha,

116. Sanghavi, Nagindas and Usha Thakkar, Regionalisation of Indian Politics, Economic and Political Weekly, No. 35 (7), 2000:

117. Schakel, Arjan H. and Wilfried Swenden, Rethinking Party System Nationalization in India (1952-2014), Governmnet and Opposition, Available on CJO 2016 doi: 10.1017/gov.2015.42, 2016.

118. Second chamber in Indian Parfliament : Role and Status of Rajya Sabha : राज्य सभा सचिवालय द्वारा प्रकाशित : 2009 :

119. Singh M.P., India's National Front and United Front Coalition Governments: A Phase in Federalized Governance, Asian Survey, No. 41 (2), 2001:

120. Sridharan, E., Coalition strategies and the BJP's expansion, 1989-2004, Commonwealth and Comparative Politics, No. 43 (2), 2005:

121. Sridharan, E., Electoral coalition in 2004 general elections: Theory and evidence, Economic and Political Weekly, No. 39 (51), 2004:

122. Sridharan, E., Principles, Power and Coalition Politics in India: Lessons from theory, comparison, and recent history, in Khanna, D.D., & Kueck, Gert W. (Eds), Principles, power and politics, New Delhi, Macmillan, 1999:

123. Sridharan, E., Why are multi-party minority governments viable in India? Theory and comparison, Commonwealth and Comparative Politics, No. 50 (3), 2012:

124. Strom Karre, Ian Budge, & Michael Laver, Constraints on Cabinet Formation in Parliamentary Democracies. American Journal of Political Science, No. 38 (2), 1994:

125. Strom, Kaare, A Behavioral Theory of Competitive Political Parties. American Journal of Political Science, No. 34 (2), 1990:

126. Strom, Kaare, Minority Government and Majority Rule (Cambridge: Cambridge University Press), 1990.

127. Tripathi, R.C., Emergence of Second Chamber in India, New Delhi: Rajya Sabha Secretariat, 2002.

128. Tripathi, R.C., Second Chambers: Bicameralism Today. New Delhi: Rajya Sabha Secretariat, 2002.

129. Tsebelis, George, Nested games: The cohesion of French electoral coalitions, British Journal of Political Science, No. 18 (2), 1988:

130. Tsebelis, George, Veto Players and Institutional Analysis, Governance, No. 13 (4), 2000:

131. Tsebelis, George, When do allies become rivals? Comparative Politics, No. 20 (2), 1998:

132. Varshney, Ashutosh, Is India Becoming More Democratic?, The Journal of Asian Studies. No. 59 (1), 2000:

133. Verney, Douglas V., From Quasi-federation to Quasi-confederacy? The Transformation of India’s Party System, Publius: The Journal of Federalism, No. 33 (4), 2003:

134. Verney, Douglas, “How has the Proliferation of Parties Affected the Indian Federation? A Comparative Approach”, in Zoya Hasan, E. Sridharan and R. Sudarshan (eds.), India’s Living Constitution: Ideas, Practices, and Controversies, (New Delhi: Permanent Black), 2004:

135. Volden, Craig, & Clifford J. Carrubba, The Formation of Oversized Coalitions in Parliamentary Democracies, American Journal of Political Science, No. 48 (3), 2004:

136. Warwick, Paul V., Government Survival in Parliamnetary Democracies (Cambridge: Cambridge University Press), 1994.
137. Warwick, Paul V., The Durability of Coalition Governments in Parliamentary Democracies, Comparative Political Studies, No. 11 (4), 1979:
138. Willian P. Moddox : The Political Basic of Federation : American Political Science Review : 35 : Dec. 1941
139. Wyatt, Andrew, The Limitations on Coalition Politics in India: The Case of Electoral Alliances in Uttar Pradesh, Journal of Commonwealth and Comparative Politics, No. 37 (2), 1999:
140. Yadav, Yogendra & Suhas Palshikar "Revisiting 'Third Electoral System': Mapping Electoral Trends in India, 2004-09", in Sandeep Shastri, K.C. Suri, and Yogendra Yadav, eds., Electoral Politics in Indian States: Lok Sabha Elections in 2004 and Beyond, New Delhi: Oxford University Press, 2009:
141. Yadav, Yogendra & Suhas Palshikar, From Hegemony to Convergence: Party System and Electoral Politics in the Indian States. Journal of Indian School of Political Economy No. 15 (1&2), 2003:
142. Yadav, Yogendra & Suhas Palshikar, Principal State Level Contents and Derivative National Choices: Electoral Trends in 2004-09. Economic and Political Weekly, No. 44 (6), 2009:
143. Yadav, Yogendra & Suhas Palshikar, Ten Theses on State Politics In India. Seminar No. 591 (November), 2008:
144. Yadav, Yogendra, "Understanding the Second Democratic Upsurge: Trends of Bahujan Participation in Electoral Politics in the 1990s" in Francine Frankel, Zoya Hasan, Rajeev Bhargava and Balveer Arora (eds.), Transforming India: Social and Political Dynamics of Democracy, New Delhi; Oxford University Press, 2000:
145. Yadav, Yogendra, Reconfiguration in Indian Politics: State Assembly Elections, 1993-95, Economic and Political Weekly, 1996:
146. Zenab Banu, Decline and Fall of Indian Politics , ISBN 81-7391-320-x, 199

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भारतीय शासन एवं राजनीति – डॉ० पुखराज जैन एवं डॉ० बी० एल० फाड़िया – साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा – 1998
2. भारतीय शासन प्रणाली – डॉ० वीरकेश्वर प्रसाद सिंह – ज्ञानदा प्रकाशन, पटना – 1970
3. भारतीय शासन और राजनीति – बी० बी० तायल – मयूर पेपरबैक्स – 1995
4. भारतीय शाासन एवं राजनीति – सुशीला कौशिक – मानव संसाधन विकास मंत्रालय – 1990
5. भारत का राजनीतिक एवं संवैधानिक विकास – हरीशचन्द्र शर्मा – कॉलेज बुक डिपो, जयपुर – 1968
6. भारतीय शासन एवं राजनीति का विकास – परमात्मा शरण – रस्तोगी एण्ड कम्पनी, मेरठ – 1970
7. भारतीय गणतन्त्र का संविधान – डॉ० महादेव प्रसाद शर्मा – किताब महल, इलाहाबाद – 1967
8. भारतीय संविधान की रूपरेखा – डॉ० कुमुद शर्मा – श्री पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली – 1988–89
9. भारत का संवैधानिक इतिहास – डॉ० भद्रदत्त शर्मा – शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा – 1981
10. भारतीय राजनीति और शासन – प्रो० हृदय नारायण सभरवाल, डॉ० रामलाल गुप्त – कमला प्रकाशन,कानपुर – 1982–83
11. भारत का संवैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास – डॉ० वीरकेश्वर प्रसाद सिंह – ज्ञानदा प्रकाशन, पटना –1966
12. भारत का संवैधानिक विकास – प्रो० हृदय नारायण सभरवाल, डॉ० रामलाल गुप्त – कमला प्रकाशन,कानपुर – 1976
13. भारतीय शासन एवं राजनीति – उमा दत्त पन्त – प्रकाश्न केन्द्र, लखनऊ – 1989
14. भारतीय गणतन्त्र का संविधान – सभरवाल एवं गुप्त – कमला प्रकाशन, कानपुर – 1977–78
15. तुलनात्मक राजनीति – डॉ० प्रभुदत्त शर्मा – कॉलेज बुक डिपो, जयपुर – 1979
16. भारतीय शासन एवं राजनीति – डब्ल्यू एम० मौरिसजोन्स हिन्दी रूपान्तरण हरिन्दर के० छाबड़ा – सुरजीत पब्लिकेशन – 1970
17. भारत का संवैधानिक विकास और भारतीय संविधान – पुखराज जैन – सरस्वती सदन, दिल्ली – 1973
18. भारतीय संविधान स्वरूप एवं व्यवहार – डॉ० रणजीत सिंह दरड़ा – राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर –1973
19. भारतीय शासन एवं राजनीति – जे० सी० जौहरी – स्टार्लिंग पब्लिकेशन
20. भारतीय राजनीति – जे० सी० जौहरी – स्टार्लिंग पब्लिकेशन
21. संविधान और संसद – श्यामलाल शकधर – रूपक पब्लिकेशन, नई दिल्ली – 1975
22. भारतीय संविधान व विकास – हरिहर प्रसाद राय – भारती भवन, पटना – 1967
23. भारतीय लोकजीवन और शासन व्यवस्था – प्रो० नेमिशरण मिततल – राजहंस प्रकाशन, मेरठ – 1959
24. भारत का संवैधानिक विकास – डॉ० रवीन्द्र नाथ मित्रा – लोक भारती प्रकाशक – 1966

25. भारत का संवैधानिक इतिहास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन – विद्याधर महाजन – एस० चन्द्र एण्ड कम्पनी – 1969
26. राष्ट्रीय आन्दोलन तथा भारतीय संविधान का विवेचन – आर० सी० अग्रवाल – एस० चन्द्र एण्ड कम्पनी – 1972
27. भारतीय संविधान व राष्ट्रीय आन्दोलन – दया प्रकाश रस्तोगी – राजहंस प्रकाशन, मेरठ – 1966
28. भारत का संवैधानिक इतिहास – आर० एन० सिंह – प्रकाशन केन्द्र, न्यू बिल्डिंग्स – 1970
29. भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास – डॉ० वीरकेश्वर प्रताप सिंह – ज्ञानदा प्रकाशन – 1971
30. भारतीय राजनीति ओर शासन – सभरवाल एवं गुप्त – जे० पी० फाइन आर्ट प्रेस, कानपुर – 1966
31. भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं भारतीय संविधान – डॉ० बी० ए० बाजपेयी – प्रकाश बुक डिपो, जयपुर – 1977–78
32. भारतीय संविधान का विकास तथा नवीन भारतीय संविधान – महावीर सिंह त्यागी – राजीव प्रकाशन, मेरठ – 1974
33. प्रमुख शासन पद्धतियां – परमात्मा शरण – रस्तोगी एण्ड कम्पनी – 1966
34. आधुनिक राजनीतिक संविधान – गुरूमुख निहाल सिंह व प्रभात कुमार मजूमदार – मैकमिलन एण्ड कम्पनी –1958
35. भारतीय संसद – श्याम लाल शकधर – नई दिल्ली – 1978
36. संसदीय प्रणाली तथा व्यवहार – कौल तथा शकधर
37. भारत का संवैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास डॉ० वीरकेश्वर प्रसाद सिंह – ज्ञानदा प्रकाशन, 1969
38. भारतीय संविधान और राजनीति एस० एन० जैन – राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1984
39. भारतीय राजनीति और सरकार – एल० बी० प्रसाद 7555 – 100 – 3 – 2006
40. भारतीय संसद – डॉ० वैदेही बुधालिया – नवराज प्रकाशन दिल्ली Shree Publishers
41. भारतीय शासन एवं राजनीति – डॉ० अनुभा कुमार – राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली – 2009
42. केन्द्र राज्य सम्बन्ध – के मैथ्यू कुरियन पी० एन० वर्गिस इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ रीजनल डेवलपमेंट स्टडीज कोट्टगम द्वारा प्रा, 1980 मैकमिलन इण्डियन लिमिटेड
43. ग्रेनविल ऑस्टिन; 'द इण्डियन कॉन्स्टीट्यूशन'
44. डी. डी. बसु – इन्टोडक्शन टू द कॉन्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया –
45. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह – भारतीय शासन व राजनीति –
46. डी. डी. बसु – इन्टोडक्शन टू द कॉन्स्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया –
47. डेनियल जे. ऐलजारा उद्धृत के. सी. जोहरी – तुलनात्मक राजनीति –
48. सी. बी. ग्ना – तुलनात्मक राजनीति व राजनीतिक संस्थायें –
49. डायसी – उद्धृत डॉ. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह – तुलनात्मक शासन और राजनीति
50. गार्नर – पोलिटिकल साइन्स एण्ड गवर्नमेन्ट –

शोध पत्रिकाऐं

1. South Asia Research Sage ID Code – j366 – 201 Imprint SIP No. of Issues – 2 Journal Code SAR Volume 2005
2. **Economic and Political Weekly,** Editor : C Ram Manohar Reddy, 321, A o Z, Industrial Estate, Ganpatrao Kadam Marg, Lower Parel, Mumbai, India 400013.
3. **Journal of the Indian School of Political Economy,** Indian School of Political Economy, Arthboth, 968/21-22, Senapati Bapat Road, Pune.
4. Madhya Pradesh Samajik Vigyan Anusandhan Journal (Hindi), Editor R.S. Gautam, Madhya Pradesh Institute of Social Sciences Research, 6 Bharatpuri Administrative Zone, Ujjain-456010.
5. **Indian Journal of Political Science,** Editor : Sanjeev Kumar Sharma, B-5, University campus, CCS University, Meerut-5.
6. **Bharatiya Rajniti Vigyan Shodh Patrika,** Editor : Sanjeev Kumar Sharma, B-5, University campus, CCS University, Meerut-5.
7. **Yojna,** Chief Editor : S.B. Sharan, Yojna Bhawan, Sansad Marg, New Delhi.
8. **Mainstream,** Editor : Website : Http://www.mainstreamweekly.net/
9. **Loktantra Sameeksha,** Institute of Constitutional and Parliamentary Studies, 18-21, Vittal Bhai Patel House, Rafi Marg, New Delhi 110001.
10. **Vikas Paricharcha,** Vyavharik Shodh avem Vikas Sansthan, Lucknow University, Lucknow.
11. **Vidhayani,** Shodh Sandharbha Vibhag, Madhya Pradesh Vidhan Sabha Sachivalaya, Vidhan Sabha, Bhopal.
12. **Lok Prashashan,** Indian Institute of Public Administration, Indraprastha, Ring Road, New Delhi.
13. **A Journal of Asia for Democracy and Development,** Editor : Dr. M.P. Modi, The council for peace, development and Cultural Unity, Modi Niwas, Jain Mandir, Morena-476001.
14. **Seminar http://www. India-seminar.com/**

UPJSSR, Vol. 9/No. 1/January-June/2018 ISSN: 0975-8852
Approved Serial No. : 48671

Uttar Pradesh Journal of Social Science Research

ARTICLES

श्रीमती दीप्ति चतुर्वेदी, भारतीय संघात्मक व्यवस्था का विकास – एक विश्लेषण 1

Associate Editors

Dr. G.S. Pandey
Associate Professor Rtd.:
Department of English
S.B.P.G. College, Sikandarpur
Ballia U.P. (India), Tel.: (+91)9919015273
E-mail: gspandey_ballia@rediffmail.com

Dr. Davendra Gaur
Associate Professor: Department of Political Science. D.S. College, Aligarh, U.P. (India)
Tel: (+91) 9412488028
e-mail:devendrak227@gmail.com

Dr. Rajesh Paliwal
Department of Political Science
D.N. College,
Fatehgarh, Farrukhabad (U.P.)
Tel: (+91) 9412545855

Dr. Rashmi Singh
Post Doctoral Fellow
Department of Economics
M.L. Sukhadia University,
Udaipur, Rajasthan, India
Tel: (+91) 9412842588
E-mail: rashmi16@gmail.com

Guidelines for Contributors given on the last page.
All Enquiries/Queries may kindly be addressed (as applicable):

All editorial and related matters to:

Dr. Rajeev Kumar
Sri Ram Vihar Colony,
Ballia, U.P. India-277001

Tel : +91-5498-240880
Mobile: 09415248731
e-mail: rajeev.csss@gmail.com

Advertisement/Subscription/General/ Miscellaneous to:

The Publisher
V. L. Media Solutions
B-33, Sainik Nagar, Uttam Nagar,
New Delhi, India-110059

Mobile: 8010207580
e-mail: vl.mediasolutions@gmail.com
web: www.vlmsjournals.in
www.vlmspublications.com

Copyright © Centre for Studies in Social Sciences, Ballia, U.P., India
No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted in any form or by any means, electronic, electrostatic, magnetic tape, mechanical, photocopying, recording, or otherwise without permission from the copyright holder.
Permission for other use: The copyright owner's consent does not extend to copying for general distribution, for promotions, for creating new works, or for resale. Specific written permission must be obtained from the publisher for such copying.
UPJSSR is available online.
UPJSSR is published bi-annually by the Centre for Studies in Social Sciences. For subcription rates, refer to the subscription form attached to the last page.
All correspondence should be addressed to, "Publication Division, Centre for Studies in Social Sciences, Sri Ram Vihar Colony, Ballia (U.P.) 277001-INDIA."

Uttar Pradesh Journal of Social Science Research is Published by Owner, Publisher and Printer Rashmi Singh, in association with VL Media Solutions, B-33, Sainik Nagar, Uttam Nagar , New Delhi-110059.

UPJSSR CSSS

Uttar Pradesh Journal of Social Science Research

Dr. Rajeev Kumar
Editor In Chief

Dr. Madhu Varshney
Exemplar Profile Editor

Dr. Alka Rani
Book Review Editor

CSSS

CENTRE FOR STUDIES IN SOCIAL SCIENCES
achieving academic excellence
Sri Ram Vihar Colony, Ballia (U.P.) 277001, India
www.satva.org.in

Uttar Pradesh Journal of Social Science Research is the Journal of the Centre for Studies in Social Sciences, Ballia, (U.P.), India, which is established by “Satva”, a society registered under the Societies Registration Act, 1860.

BOARD OF ADVISORS

Prof. A.F. Usmani
Former Chairman:
Department of Political Science
Aligarh Muslim University,
Aligarh. U.P. India

Prof. Z.A. Nizami
Former Chairman:
Department of Political Science
Jamia Millia University,
New Delhi, India

Prof. R.N. Tiwari
Retired Professor:
Department of Political Science.
Shree Ram College, New Delhi, India

Prof. Anju Kohli
Department of Economics
M.L. Sukhadia University,
Udaipur, Rajasthan, India

Prof. Farida Shah
Chairman : Department of Economics
M.L. Sukhadia University,
Udaipur, Rajasthan, India

Dr. Arun Prabha Chaudhary
Department of Economics
M.L. Sukhadia University,
Udaipur, Rajasthan, India

Prof. Sagarmal Jain
Director, Prachya Vidyapeeth
Dupata Road, Shazapur, M.P., India

Prof. Arun Chaturvedi
Former Chairman:
Department of Political Science
M.L. Sukhadia University,
Udaipur, Rajasthan, India

Dr. D.K. Singh
Eye Surgeon, Uma Devi Eye Hospital, Vaina
Near Sagarpali, Ballia,
U.P., India.

Prof. Mohd. Gulrez
Chairman: Department of West Asian
Studies, Aligarh Muslim University,
Aligarh, U.P., India

Dr. Mohd. Parvez
Department of Education
Aligarh Muslim University
Aligarh, U.P., India.

Dr. Y.C. Nigam
Former Head, Department of Political
Science, D.S.P.G. College,
Aligarh, U.P., India

Dr. G.N. Mathur
Department of History & Culture
Rajasthan Vidyapeeth,
Udaipur, Rajasthan, India.

Dr. Akhilesh Bisaria
Chairman, Kalptaru Superspeciality
Hospital, Udaipur, Rajasthan, India.

Dr. Satyendra Chaudhary
Hararari Govt College
Salumber, Udaipur

Dr. Waseem Ahmed
Reader, Department of Political Science
Aligarh Muslim University,
Aligarh, U.P., India

Prof. O.P. Mishra
Head, Department of Psychology
Shanti Kunj University
Haridwar, Uttarakhand, India

Prof. Neeta Bora Sharma
Department of Political Science
Kumaon University,
Nainital, Uttarakhand, India

Dr. A.B. Bhatnagar
Head, Department of Education
NREC P.G. College, Khurja,
Bulandshahr, U.P., India

Prof. K.K. Singh
Mahatma Gandhi International Hindi University,
Manas Temple Gandhi Hill,
Wardha(Maharashtra).India

Col. Sanjiv Kumar
M 1212, Aashiana Colony,
Lucknow, (U.P)

Dr. Surekha Pal
Circulation Services Coordinator
1 East Benton Street
Aurora, IL 60505, (U.S.A)

Dr. Sahdev Singh
Managing Director
Professional Development Center
59/235, Bung Lai Sawat,
Lam Luk Ka, Pathumthani 12150
Bangkok, THAILAND

Dr. Ramakant Tripathi
Department of Sanskrit
S.C.P.G, College,
Ballia,(U.P), India

Mr. Waliullah Sayeedi Falahi
President(UP East)
JAMAAT-E-ISLAMI HIND
Nizampur, Bharpurwa,
Gorakhpur, U.P., India

Dr. Gopal Prasad
Department of Political Science
D.D.U. Gorakhpur University,
Gorakhpur, U.P., India

Dr. B.L. Sah
Department of Political Science
Kumaon University,
Nainital, Uttarakhand, India

भारतीय संघात्मक व्यवस्था का विकास - एक विश्लेषण

श्रीमती दीप्ति चतुर्वेदी

सारांश

आधुनिक राजनीतिक प्रणालियों में संघात्मक व्यवस्था सर्वाधिक प्रचलित व प्रजातान्त्रिक मानी जाती है। यही कारण है कि समकालीन राजनीतिक व्यवस्थाओं का प्रवाह संघात्मक व्यवस्था की ओर है। संघात्मक व्यवस्था की स्वीकार्यता का एक महत्वपूर्ण कारण उक्त व्यवस्था के अन्तर्गत इकाईयों को संघ में प्रदत्त प्रतिनिधित्व है जिसके कारण इकाईयां अपने क्षेत्रीय चरित्र को कायम रखते हुये राष्ट्रीय शासन व्यवस्था में आसानी से समावेशित हो जाती हैं संघात्मकता भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का केन्द्रीय तत्व है जिसका विकास स्वतन्त्रता से कफी पहले मॉण्टेग्यू चेम्फोर्ड अधिनियम (1919) के साथ ही प्रारम्भ हो गया था। संविधान निर्माण की प्रक्रिया के अन्तर्गत संविधान सभा में इस विषय पर व्यापक चर्चा हुई थी कि भारतीय संघात्मक व्यवस्था का स्वरूप किस प्रकार का हो? तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में यह आवश्यक भी था कि संघवाद को भारतीय सन्दर्भों के अनुरूप अपनाया जाये। अंततरू कुछ एकात्मक तत्वों को समाहित करके संघवाद को एक नवीन स्वरूप के साथ भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में स्थान दिया। प्रस्तुत प्रपत्र भारतीय संघात्मक व्यवस्था के विकासक्रम का तथ्यात्मक विवेचन है।

लोकतन्त्र व संघवाद भारतीय संवैधानिक संरचना के प्रमुख संस्थान हैं। संघवाद केन्द्र व राज्यों के बीच शक्ति के वितरण को सुनिश्चित करता है, जबकि लोकतंत्र शक्ति के प्रयोग में जन भागीदारी को सुनिश्चित करता है।[1] भारत में स्वतन्त्रता के बाद से ही संघात्मक व्यवस्था को अपनाने के विषय में आम सहमति थी। संविधान सभा में संघात्मक व्यवस्था को अपनाने के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं था, परन्तु किस प्रकार की संघात्मक व्यवस्था को अपनाया जाये इस प्रश्न को लेकर कुछ तीव्र मतभेद अवश्य सामने आये।[2] अंततः राष्ट्र के भौगोलिक विस्तार, जनसंख्या तथा सामाजिक-आर्थिक विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुये, भारतीय मान्यता 'अनेकता में एकता' को कार्यान्वित करते हुये संघात्मक व्यवस्था को कुछ एकात्मक तत्वों के समावेश के साथ अपनाया गया। संविधान निर्माताओं ने भी स्वीकार किया कि भारतीय संविधान पूर्णतः संघात्मक संविधान की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता है।

"But strictly speaking and applying the test more closely we see that neither historical antecedents nor the socioeconomic condition nor even the essential federal principle in reality, exist in this constitution and we cannot call it at all a federal constitution in the strict sense."[3]

(परन्तु यदि कठोरता से कहें तथा नजदीक से परीक्षण करें तो हम देखते हैं कि वास्तव में न तो ऐतिहासिक प्रमाण है, न ही सामाजिक-आर्थिक दशायें, यहां तक कि आवश्यक संघीय सैद्धांतिक आधार भी इस संविधान में नहीं है और कठोर अर्थों में हम इसे संघीय संविधान बिल्कुल नहीं कह सकते।)

भारतीय संघात्मक व्यवस्था विकास क्रम में अपने मूल रूप से परिवर्तित होती रही है। इसके कुछ स्वाभाविक कारण रहे हैं जिनमें सर्वप्रमुख है केन्द्र-राज्य सम्बन्धों का तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक

व आर्थिक परिस्थितियों के अनुरूप परिभाषित किया जाना। केन्द्र राज्य सम्बन्ध राजनीतिक बाध्यताओं जैसे कि गठबन्धन सरकारों से प्रभावित होकर भी संघात्मक व्यवस्था के मूल स्वरूप में परिवर्तन का कारण बनते हैं।

भारत में संघीय विचारधारा का क्रमिक विकास ब्रिटिश शासनकाल में ही प्रारम्भ हो गया था। यद्यपि ब्रिटिश शासकों ने स्वहित के लिये भारत में विदेशी राज्य की सुरक्षा और दृढ़ता के दृष्टिकोण से एकात्मक व्यवस्था को अपनाया। यह व्यवस्था व्यवहारत: पूरे ब्रिटिश शासनकाल तक कायम रही। यहाँ तक की ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों को (यद्यपि दोनों एक ही भूखण्ड के अंग थे) एक राजनीतिक व्यवस्था के अन्तर्गत नहीं रखा गया। सरकारी तौर पर संघीय व्यवस्था का बीजारोपण लॉर्ड मेयो (1870) की विकेन्द्रीकरण की नीति में पाया जाता है। औपचारिक रूप से 1918 में सर्वप्रथम मांटेग्यू चेम्फ़ोर्ड रिपोर्ट ने अप्रत्यक्ष रूप से संघीय व्यवस्था के पक्ष में अपना मत प्रकट किया। उक्त रिपोर्ट में प्रस्तावित द्वैध शासन प्रणाली ने संघीय विचारधारा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

मांटेग्यू चेम्फ़ोर्ड, भारत शासन अधिनियम 1919 द्वारा राज्यों में द्वैध शासन की व्यवस्था की गई। यह भारत में उत्तरदायी सरकार का पहला आंशिक प्रयोग था। इस अधिनियम द्वारा प्रान्तों की व्यवस्थापिकाओं को सीमित आर्थिक अधिकार प्रदान किये गये। (पूर्व में 1861 में इन्हें विधायन सम्बन्धी अधिकार प्रदान किये गये थे) प्रान्तीय शासन को दो भागों में बांटा गया– हस्तांतरित विषयों के प्रशासन हेतु प्रान्तीय विधानमण्डल उत्तरदायी था, जबकि संरक्षित विषयों का प्रशासन गवर्नर के हाथ में रखा गया।[4] परन्तु केन्द्रीय स्तर पर संघात्मक व्यवस्था को पूर्णत: नकार दिया गया, यद्यपि 1919 के इस अधिनियम द्वारा अखिल भारतीय मामलों में वायसराय को परामर्श देने के लिये देशी राजाओं के एक नरेश मण्डल की स्थापना की गई, जिसे 'Chambers of Princes' का नाम दिया गया। साइमन कमीशन की रिपोर्ट में भी उक्त तथ्य पर बल दिया गया।5

भारतीय व्यवस्थापिका सभा के अध्यक्ष सर हेडरिक व्हाइट ने 1923 में संघीय व्यवस्था की स्थापना का सुझाव दिया। हैली ने संघात्मक प्रावधानों को नवजात भारतीय राजनैतिक व्यवस्था की समस्याओं का उपयुक्त समाधान माना। सर्वप्रथम 1930 में साइमन कमीशन ने प्रत्यक्ष रूप से संघ राज्य की स्थापना हेतु व्यवहारिक सुझाव दिये। चूँकि कमीशन की स्थापना एक संदिग्ध व विरोधी वातावरण में हुई थी अत: भारतीय जनमत ने इसके सुझावों को अस्वीकार कर दिया। नेहरु रिपोर्ट के अनुसार प्रस्तावित व्यवस्था पूर्णत: एकपक्षीय थी, साथ ही इसे प्रतिक्रियावादी और राष्ट्रीयता विरोधी माना गया। 1930 में गोलमेज सम्मेलन में आम सहमति बनने के बाद, 1931 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने स्पष्ट रूप से संघात्मक व्यवस्था का सर्मथन किया।[6] अंतत: संयुक्त संसदीय समिति ने संघात्मक व्यवस्था का सुझाव दिया, यद्यपि इसके साथ गंभीर संवैधानिक जटिलतायें संभावित थीं।

भारत शासन अधिनियम 1935 द्वारा संघात्मक तत्वों सहित एकात्मक राज्य की स्थापना का प्रयास किया गया। इस अधिनियम द्वारा एक सुनियोजित संघीय योजना प्रस्तावित की गई जिसका स्वरूप निम्न है।

1935 भारत शासन अधिनियम द्वारा प्रस्तावित संघीय योजना –

संगठन – 1935 ई. के अधिनियम द्वारा भारत के लिये एक संघीय व्यवस्था का प्रावधान किया गया था। इसमें 14 गवर्नर प्रान्त, 6 चीफ कमिश्नर प्रान्त व देशी रियासतें शामिल होनी थीं। ब्रिटिश भारत के प्रान्तों का शामिल होना अनिवार्य था, जबकि देशी रियासतों का शामिल होना ऐच्छिक संघीय इकाइयों को अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त होती ।

केन्द्र व राज्यों के बीच तथा राज्यों के पारस्परिक झगड़ों को सुलझाने के लिये एक संघीय न्यायालय की स्थापना की गई थी। संविधान को संशोधित करने की प्रक्रिया जटिल थी। संशोधन का अधिकार

केन्द्रीय विधानमण्डलों को नहीं दिया गया बल्कि यह अधिकार ब्रिटिश संसद ने अपने पास रखा।

भारतीय संघ की स्थापना के लिये कुछ विशेष शर्तें रखी गईं थी। पहली शर्त यह थी कि संसद के दोनों सदन सम्राट से प्रार्थना करें कि संघ की स्थापना की जाये। दूसरी शर्त यह थी कि जब इतनी भारतीय देशी रियासतों को विलयन की स्वीकृति दे दें कि उनकी जनसंख्या कुल रियासती प्रजा की जनसंख्या की आधी हो जाये और उच्च सदन में 52 स्थानों से अधिक स्थानों के अधिकारी हों, संघ की स्थापना शाही घोषणा द्वारा की जायेगी। संघ सरकार के दो अंग थे- संघीय कार्यपालिका और संघीय विधानमण्डल। ब्रिटेन का सम्राट संघीय कार्यपालिका का प्रधान होता, यद्यपि गर्वनर जनरल उसकी शक्तियों का वास्तविक प्रयोग करता। गर्वनर जनरल का अधिकार उन विषयों तक फैला हुआ था जो संघीय सूची में थे और जिन पर संघीय विधानमण्डल कानून बना सकता था। संघीय व्यवस्थापिका के दो सदन थे- राज्य सभा (Council of states) और संघीय सभा (Federal Assembly)। देशी रियासत संघीय सभाओं में 125 सदस्य और राज्य सभा में 104 सदस्य भेजती है। ब्रिटिश प्रान्त के प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार थी संघीय सभा 250 और राज्य सभा 1561 प्रान्तों के प्रतिनिधियों का चुनाव पृथक निर्वाचन प्रणाली के अनुसार होता था और भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों का नामांकन देशी रियासतों द्वारा होता था।

1935 ई. के अधिनियम में प्रस्तावित संघ योजना में कुछ ऐसी अनूठी विशेषतायें थी जो साधारण ात: अन्य संघों में नहीं पाई जाती है। उनमें निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं-

1. साधारणत: संघ की स्थापना कुछ स्वतन्त्र राज्यों के मिलने से होती है। भारत में संघ की स्थापना एकात्मक ब्रिटिश भारत को स्वायत्तशासी प्रान्तों में खण्डित कर तथा उनके साथ स्वतन्त्र देशी रियासतों को मिलाकर की गई थी।
2. संघ शासन की स्थापना विभिन्न स्वतन्त्र राज्यों के स्वैच्छिक समझौते द्वारा होती है, जो कि सुरक्षा, व्यापार, आर्थिक उन्नति आदि सामान्य उद्देश्यों पर आधारित होता है। 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत भारतीय संघ राज्यों की स्वेच्छा का परिणाम नहीं था, बल्कि राज्यों को इस हेतु बाध्य किया गया था।
3. प्रस्ताविक संघ की इकाइयों की स्थिति व प्रकृति एक समान नहीं थी। देशी रियासतों में निरंकुश शासन था जिसमें प्रजा को राजनीतिक अधिकार प्रापत नहीं थे। इन राज्यों के प्रतिनिधि देशी नरेशों द्वारा नामांकित होते। इसके विपरीत ब्रिटिश भारत की जनता को राजनीतिक अधिकार प्राप्त थे और वे अपने प्रतिनिधियों का चुनाव निम्न सदन में प्रत्यक्ष रूप से तथा उच्च सदन में अप्रत्यक्ष रूप से करते।
4. संघ राज्य के उच्च सदन में इकाइयों को समान प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। इस व्यवस्था को वर्तमान सभा के संगठन में भी अपनाया गया है, जिसमें इकाइयों को जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया गया है।
5. संघीय संविधान में संशोधन लाने के लिये कठिन तथा जटिल प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। यह अधिकार संघीय तथा प्रान्तीय विधानमण्डलों को दिया जाता है। 1935 ई. की संघ योजना के अन्तर्गत संवैधानिक संशोधन का अधिकार ब्रिटिश संसद में निहित था।
6. संघ में सम्मिलित होने के इच्छुक राज्यों को क्राउन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता था। इस कारण इन देशी रियासतों को संघ के बाहर भी संवैधानिक स्थिति प्राप्त रहती। दूसरी ओर ब्रिटिश भारत के प्रान्तों को क्राउन से सीधे संपर्क बनाये रखने के विशेषाधिकार से वंचित कर दिया था। इस प्रकार संघीय इकाइयों में कानूनी समानता नहीं थी।
7. साधारणत: संघ सरकार स्वतन्त्र व प्रभुत्व सम्पन्न होती है। प्रस्तावित संघ सरकार में इस गुण की

कमी थी। उसे भारत सचिव तथा गर्वनर जनरल के अधीन कार्य करना पड़ता था।

8. प्राय: सभी संघों में निचले सदन का प्रत्यक्ष चुनाव होता है तथा ऊपरी सदन का अप्रत्यक्ष। प्रस्तावित भारतीय संघ में संघीय सभा का चुनाव अप्रत्यक्ष रखा गया तथा ऊपरी सदन का प्रत्यक्ष। इसका मूल उद्देश्य लोकतन्त्रात्मक सदन को दुर्बल करना था।
9. संघीय संविधान की अवशिष्ट शक्तियाँ प्राय: संघ या इकाइयों में निहित कर दी जाती है, जबकि भारत में यह व्यवस्था की गई कि गर्वनर जनरल को इस बारे में अंतिम निर्णय करने का अधिकार होगा।

वस्तुत: विदेशी शासकों ने प्रस्तावित संघ द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवाद, भारतीय राष्ट्रवाद और देशी रियासतों के सामन्तवाद के बीच समझौता करने का प्रयास किया। परन्तु संघ सरकार का अधिकार क्षेत्र अलग-अलग इकाइयों में अलग-अलग था। यह एक मौलिक संघ विरोधी सिद्धान्त था। केन्द्र में द्वैध शासन की व्यवस्था भी संघीय विचारधारा के प्रतिकूल थी महत्वपूर्ण विभागों पर गवर्नर जनरल व उनके पार्षदों का अधिकार था जबकि महत्वहीन विषयों पर मन्त्रियों का हस्तांतरित विषयों पर ही पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना संभव थी।

नि:सन्देह तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टिगत रखते हुये भारत हेतु संघीय व्यवस्था की आवश्यकता थी, किन्तु इसकी अनूठी विषमताओं तथा त्रुटियों के कारण भारतीयों ने एक स्वर में इसे अस्वीकृत कर दिया। पं. नेहरु के अनुसार ह्अधिनियम में प्रान्तीय स्वायत्तता और संघीय ढाँचे की व्यवस्था की गई है। लेकिन इसमें इतने अधिक संरक्षण और नियन्त्रण थे कि देश की राजनीतिक और आर्थिक शक्ति ब्रिटिश सरकार के हाथों में केन्द्रित बनी रहेगी। संघीय ढाँचा ऐसा था कि उसके अन्तर्गत कोई भी प्रगति असंभव हो जाती यह इतना प्रतिक्रियावादी था कि इसमें स्वविकास का बीज तक नहीं था।[7] 1945 में सप्रू कमेटी द्वारा संघात्मक व्यवस्था की सिफ़ारिश की गई।[8] परन्तु जहाँ प्रगतिवादियों ने इसे स्वशासन के विरुद्ध एक कदम माना, वहीं प्रान्तों और देशी राज्यों ने इसमें सम्मिलित होने में हिचकिचाहट दिखाई। पं. नेहरू ने इस योजना का विरोध करते हुये लिखा संघात्मक योजना प्रगति में बाधक है। इसका ढाँचा प्रतिक्रियावादी है और यह ब्रिटिश सरकार, देशी राज्य, जमींदार व प्रतिक्रियावादी तत्वों के गठबन्धन को दृढ़ करेगा।

The federal structure was so envisaged as to make any real advance impossible, reactionary as the structure was sort of some kinds of revolutionary reaction. The act strengthened landlords and other reactionary elements in India.[9]

इस प्रकार संविधान निर्माताओं के समक्ष यह स्पष्ट था कि संघीय व्यवस्था को अपनाया जाना अनिवार्य था, परन्तु मूल प्रश्न यह था कि इसे किस रूप में अपनाया जाये। 1929 में बटल समिति के अनुसार- राजनीतिक दृष्टिकोण से दो भारत हैं, उन्हें एक सूत्र में जोड़ना राजनीतिज्ञों के सम्मुख प्रमुख समस्या थी।

Practically there are two India, The problem of statemanship is to hold them together[10]

स्वतन्त्रता के पश्चात् समस्त प्रान्तों व देशी राज्यों का विलयन साथ ही उनके प्रशासन का प्रजातन्त्रीकरण भी आवश्यक था। संघात्मक भारत के अन्तर्गत ही उन्हें विलीन किया जा सकता था, क्योंकि इसी व्यवस्था में राज्य की स्वायत्तता व राष्ट्र की एकता का समन्वय संभव था। अत: विलयन व एकीकरण की प्रक्रिया द्वारा देशी राज्यों को प्रान्तों की भांति भारतीय संघ में शामिल किया गया।

के.बी. राव के अनुसार- भारत मूलत: एवं स्वभावत: संघात्मक व्यवस्था हेतु उपयुक्त देश था।

India was basically and inherently a country fit for federal system[11] भारत विभिन्न धर्म, भाषा, जाति व संस्कृति से युक्त एक विशाल देश है, जिसे एकात्मक व्यवस्था के माध्यम से एक सूत्र में बांधना असंभव था। शासन की सुगमता के दृष्टिकोण से उसे विभिन्न स्वायत्तपूर्ण प्रशासनिक इकाइयों

में विभाजित करना अवश्यंभावी था। इस प्रकार विशाल आकार तथा विभिन्नतायें संघात्मक व्यवस्था हेतु निर्धारक तत्व बने। हृभारत की व्यापक विभिन्नता को देखते हुये भी इस व्यवस्था को अपरिहार्य माना गया।[12]

संघ निर्माण के साधारणतः दो तरीके हैं

1. सम्मिलन (Integration)
2. पृथक्करण (Disintegration)[13]

भारतीय संघ के निर्माण में दोनों पद्धतियों को अपनाया गया है। विभिन्न देशी राज्य सम्मिलन की प्रक्रिया द्वारा भारतीय संघ में शामिल हुये। इससे पूर्व इनका पृथक अस्तित्व था। वे स्वेच्छा से भारतीय संघ में शामिल हुये। दूसरी ओर ब्रिटिश भारत का स्वरूप एकात्मक था, जिसमें अनेक प्रान्त थे। इन प्रान्तों को संघ की अवयवी इकाई के रूप में मान्यता प्रदान की गई। पृथक्करण की प्रक्रिया द्वारा ब्रिटिश भारत के प्रान्त संघ के राज्य बन गये।

संविधान के प्रथम अनुच्छेद के अनुसार - Indian that is Bharat shall be a Union of States अर्थात 'भारत राज्यों का संघ है।' यद्यपि संविधान निर्माता राज्य संघ की स्थापना करना चाहते थे, फिर भी संघ शब्द के स्थान पर 'यूनियन' शब्द का प्रयोग किया गया। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार प्रान्तीय एकीकरण की आवश्यकता तथा राजनीतिक स्थायित्व ऐसे कारण हैं जिनके कारण संघवाद शब्द का प्रयोग संविधान में नहीं किया गया है।[14] संविधान निर्माता संघात्मक व्यवस्था को अपनाने के विरुद्ध नहीं थे। उनका मानना था कि संघवाद भारतीय संविधान की आत्मा के रूप में विद्यमान रहे इसके लिये यह अनिवार्य नहीं है कि यूनियन शब्द के स्थान पर फेडरेशन शब्द का प्रयोग किया जाये।

एक फुटनोट में ड्राफ्टिंग कमेटी ने यह स्वीकार किया है कि भारत को यूनियन का दर्जा देना गलत नहीं है। हालांकि संरचनात्मक दृष्टिकोण से संविधान संघात्मक ही रहेगा।[15] ऐसा संघवाद की प्रचलित परिभाषाओं (राज्य इकाइयों की स्वायत्तता) व नवजात प्रजातन्त्र के एकीकरण की अपरिहार्यता को ध्यान में रखकर किया गया था। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार यूनियन शब्द दो बातों की ओर संकेत करता है।[16]

1. भारतीय संघ इसके एककों में हुये समझौते का परिणाम नहीं है। एककों को संघ से पृथक होने का अधिकार नहीं है। ब्रिटिश भारत के प्रान्तों व देशी राज्यों को एकत्र कर भारतीय संघ की स्थापना की गई। परन्तु संघ के इन अवयवी एककों के बीच इस उद्देश्य से कोई समझौता नहीं हुआ, बल्कि एककों व संघ का निर्माण एक संविधान सभा ने संविधान द्वारा किया।

संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों के अतिरिक्त राज्यों को अन्य कोई अधिकार नहीं है। राज्यों को संघ से अलग होने या उसे समाप्त करने का अधिकार नहीं है। इसके विपरीत संयुक्त राज्य अमेरिका राज्यों के बीच समझौते का परिणाम है। डॉ. अम्बेडकर ने अमरीकी व भारतीय संघ की तुलना करते हुये कहा- अमेरिका में केन्द्र व राज्यों के बीच ढीला सम्बन्ध है जबकि भारत एक संगठन है, जिससे कोई अलग नहीं रह सकता है।[17]

2. भारतीय संघ राज्यों के बीच नहीं बल्कि जनता के बीच समझौते का परिणाम है। इसका आधार अवयवी एककों के बीच संप्रभुता नहीं बल्कि जनसंप्रभुता है। सरदार पटेल ने इस सम्बन्ध में कहा है कि भारतीय संविधान प्रजातन्त्रों व राजवंशों के मध्य एक गठबंधन नहीं बल्कि सार्वभौम जनता के मूलसिद्धान्त पर आधारित भारतीय जनता का एक संघ है। (The Indian Constitution did not form an alliance between democracies and dynasties, but a ready union of the Indian people build upon the basic concept of the sovereign people.')[18]

प्रस्तावना पर चर्चा करते समय 'संघ' शब्द पर पुनः विचार किया गया और अंततः इस शब्द को संविधान में शामिल करने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया गया। इस सम्बन्ध में मौलाना हसरत मौलानी ने एक संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत किया जिसके अनुसार 'सम्प्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य' (Sovereign Democratic Republic) के स्थान पर 'सम्प्रभु संघात्मक गणतन्त्र' (Sovereign Federal Republic) को शामिल किया जाये। यह प्रस्ताव लगभग बिना बहस के नकार दिया गया।

संविधान निर्माताओं ने 'यूनियन' शब्द कनाडा के संविधान से लिया है। डॉ. अम्बेडकर ने अपने वक्तव्य में कहा भी था- आप देखेंगे कि प्रारूप समिति ने संघ के स्थान पर यूनियन शब्द का प्रयोग किया है। यद्यपि नाम का कोई विशेष महत्व नहीं है फिर भी समिति ने 1867 ई. के ब्रिटिश उत्तरी अमरीका की प्रस्तावना की भाषा को आधार बनाया है। उनका यह विचार है कि भारत को यूनियन कहना अधिक उपयुक्त होगा, यद्यपि इसके संविधान का स्वरूप संघीय होगा।

It will be noticed that the committee has used that term 'Union", instead of Federation, Nothing much turns on the name but the committee has prefessed to follow the language, the preamble to the British North America act. 1867 and considered that there are advantages in describing India as a union, although it"s constitution may be federal in character.[19]

निःसन्देह संविधान निर्माता एक संघात्मक राज्य की स्थापना करना चाहते थे, परन्तु संघ के स्वरूप के सम्बन्ध में उनके विचारों में एकरूपता नहीं थी। संविधान के अंतिम वाचन के समय अनेक सदस्यों की यह शिकायत थी कि संघात्मक राष्ट्र के आदर्शों की अवहेलना करते हुये एक केन्द्रीकृत संघ की स्थापना की गई। (I like a strong united centre, much stronger than the centre we had created under the government of India act 1935).[20]

संविधान के लागू होने के समय से ही राज्यों का हमेशा यह आरोप रहा है कि उन्हें बहुत ही सीमित अधिकार दिये गये हैं। संविधान निर्मात्री सभा में भी कई सदस्यों ने केन्द्र-राज्यों के मध्यम सम्बन्ध में अपनी आपत्ति प्रकट करते हुये कहा था कि इससे भारतीय संघवाद का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा व राज्यों की स्थिति नगरपालिका के समान हो जायेगी। केन्द राज्य शक्ति विभाजन के आधार पर ही कुछ राजनीतिक विचारक भारतीय संविधान को के.सी. व्हीयर के मत से सहमत होते हुये भारतीय संघवाद को अर्द्धसंघीय बताते हैं।

India is the unitary state with subsidiary federal features rather than a federal state with subsidary unitary features.[21]

अपने इस कथन की औचित्यता को सिद्ध करने के लिये विचारक कुछ तत्वों का सहारा लेते हैं जैसे- केन्द्र को व्यापक अधिकार प्रदान किये गये हैं, केन्द्रीय संसद राज्यों की सीमाओं में एकपक्षीय रूप से परिवर्तन कर सकते हैं, केन्द्र का सैद्धान्तिक व समन्वयकारी प्राधिकार जिसे केन्द्र राज्य स्वायत्तता के क्षेत्र के किन्हीं खण्डों में प्रयोग कर सकता है और आपातकालीन स्थितियों के दौरान संघीय सम्बन्धों के वास्तव में समाप्त किये जाने की व्यवस्था है।[22]

भारतीय संविधान संघवाद के उन सभी आवश्यक तत्वों की पूर्ति करता है, जो किसी भी देश को संघीय कहलाने के लिये आवश्यक हैं। जैसे- एक लिखित व कठोर संविधान, संविधान की सर्वोच्चता, शक्तियों का बंटवारा, एक स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायालय व द्विसदनात्मक केन्द्रीय व्यवस्थापिका। यही कारण है कि

डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था।

भारतीय संविधान ने एक दोहरे शासन की व्यवस्था की है, जिनमें केन्द्र में संघ है व परिधि में राज्य हैं। दोनों को विशिष्ट शक्तियाँ प्राप्त हैं, जिनका प्रयोग संविधान द्वारा प्रदान किये गये क्षेत्र के अन्दर ही किया जा सकता है। संघ राज्यों का समुदाय नहीं है, जिनमें वे ढीले रूप में मिले हों और न ही वे संघ की सहायक संस्थायें हैं जो संघ से अपनी शक्तियाँ प्राप्त करती हों। संघ व राज्य दोनों का निर्माण संविधान द्वारा किया गया है और दोनों ही संविधान से अपनी शक्तियाँ प्रापत करते हैं। एक अपने क्षेत्र में दूसरे के अधीन नहीं है बल्कि एक की शक्ति दूसरे की शक्ति में सहायक हैं।[23]

भारतीय संघीय शासन की विश्व की अन्य संघात्मक व्यवस्थाओं से तुलना करने पर यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि भारतीय संघवाद क्षैतिज है, जिसमें सशक्त एकात्मक अभिनति है।

Here is a constitution which we say is a federal constitution, but in essence is almost a unitory constitution and I may call it instead of a federal constitution or a unitary

constitution a union constitution.[24]

(यहां एक ऐसा संविधान है जिसे हम एक संघात्मक संविधान कहते है परन्तु वास्तव में यह लगभग एकात्मक संविधान ही है और मैं उसे संघीय संविधान या एकात्मक संविधान नही बल्कि एक यूनियन संविधान कह सकता हूं।)

इस प्रकार सैद्धान्तिक तौर पर भारत के लिये एक ऐसे संघवाद का निर्माण किया गया, जिसमें कनाडा की तरह एक शक्तिशाली केन्द्र हो ताकि अखण्ड भारत का निर्माण किया जा सके, पर साथ ही संविधान निर्माता प्रान्तों को पर्याप्त स्वायत्तता देना चाहते थे। यही कारण है कि भारतीय संविधान में संघात्मक व एकात्मक दोनों प्रकार के तत्त्वों को स्थान दिया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. Garner W.J. ; Pol. Science and Government 2nd Indian Edition; Pg.-348
2. Jera B.B. ; Contradictions of Equal soverignities in India
   : An article in Indian Journal of Pol. Science
   : Vol III no.1 1962 pg.-71
3. K.B. Rao : Parliamentary Democracy in India : pg.-224
4. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह : भारतीय शासन व राजनीति, पृ.–54
5. The Report of the Indian Statutory Commission Vol. II pg.-15
6. Memorendum submitted by Gandhi, on the behalf of INC, at the round table conference 38th Oct. 1931
7. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह : भारतीय शासन व राजनीति, पृ.–69
8. De. J.R. op. cit pp 112-113 (Deepshikha)
9. J.L. Nehru : “Discovery of India' pg.-1
10. बटलर समिति (1930) as quoted in the white paper on Indian
11. K.B. Rao : Parliamentary democracy in India, pg.-262
12. Gandhi M.K. : India of My Dreams, pg.-20-30
13. वीरकेश्वर प्रसाद सिंह (‘भारतीय शासन व राजनीति’ पृ.–502
14. डॉ. भीमराव अम्बेडकर : Constituent Assembly debates Vol.III, pg.-43
15. Constitutent Assembly debates Vol.7 : pg. 399-404
16. CAD Vol VI pg.-43

17- Ambedkar ibid, pg.-33-44
18- Sardar Patel CAD vol.-V 161
19- CAD vol.-X – pp. 429-34
20- Ambedkar CAD Vol.-IX pg.-99
21- K.C. wheare ; Federal Govt. (London) 1963
22- K.R. Bombwall : The foundation of Indian Federalism, pg.-323
23- CAD-Vol VIII, p-33

24. K. Hanumanthaiya CAD-Vol-II pg.- 614-713

ABOUT THE AUTHOR

शोध छात्रा, कोटा विश्वविद्यालय

ISSN: 2349–820X, Vol. 5, No. 1

International Journal *of* Interdisciplinary Studies and Research

UGC Approved
Serial No.: 64805

VL MEDIA SOLUTIONS

CONTENTS

To Study the Freezing Scale of Teachers Between Hindi And English Medium Middle School In Bhilai Region

Dr. Smt. Nisha Shrivastava, J. Mrudula..........1

Social Networking: A Recent Trend in Education

Vinod Kumar Kanvaria &Bharti Nagpal..........6

Impact Of Media On Social, Economic And Political Fabric Of Democracy

Kajori Bhatnagar..........14

Arjun and Hamlet: Tragic Flaw across Time, Space and Genres

Dr. Rajiv Ranjan Dwivedi..........22

Tourism and its Commercial Benefits to the Economy of J&K

Raja Abdul Wahid Amin (JRF)..........28

Thematic mapping using Geodatabase structure (The Case Study: Jind City)

Kamaljit kaur..........38

R>

Deepti Chaturvedi..........49

Reforms in Rajya Sabha: Need of the Hour

Deepti Chaturvedi
Research Student

The upper house of Indian parliament has a unique position in the community of the upper houses of the world. It executes federal functions in a variety of ways yet it does not represent the federating units as a typical upper house does in federation, rather it reflects the partly federal and partly unitary nature of Indian political system . Rajya Sabha is structurally a unique edifice sufficiently commodious and accommodative to present a wide and colorful matrix of the nation.

The scheme of bicameralism was first incorporated in the Constitution of India Bill 1895. The history of the upper house of the Indian parliament can be traced from the first bicameral legislature in colonial India in 1919 as a consequence of the Montegu Chelmsford reforms . The council of states as it was called then , was made up of 60 members 34 of whom were Indian and elected by a narrow and elite group . There were no women in the council and the direct elections were conducted under a framework of communal franchise. Later in 1927 , the Swaraj Constitution proposed by the committee headed by Motilal Nehru advocated a legislature with two chambers for independent India. The Government of India Act 1935 strengthened this institution by making it a permanent body where one third of it's member retire by rotation. The idea behind making it a permanent body is to ensure continuity in policy. On 23rd Aug. 1954 the chair person of then Rajya Sabha , Dr. Sarvapalli Radhakrishnan , announced that thenceforth the council of states would be kbm [1]

If we go through the constituent assembly debates , it can be clearly observed that Rajya Sabha was conceptualized as a review and reflective chamber , Gopalaswami Ayangar termed it as " The most we expect from the second chamber is to hold dignified debates on important issues and to delay legislation which might be the outcome of the passion of the moment"[2]

Loknath Mishra described it as "a sobering house , a revising chamber , a house standing for quality and the members will be exercising their rights to be heard on the merits of what they say , for their sobriety and knowledge of special problems , quantity that is their number is not much of moment"[3]

Clearly much elitism was present in such a conception of the house. Another argument in favour of the Rajya Sabha was the federal character of India , that in turn responsible for constituting Rajya Sabha as a federal chamber. For instance Naziruddin Ahmad was to say " Then again we have to consider the entry of the states into the federation , and if we have

this in mind a second chamber would be an absolute necessity , without a second chamber it would be difficult to fit in the representatives of the states in the scheme of things"[4]

It is evidently clear from the debates that founding fathers wanted Rajya Sabha to be.

a) A small house as compared with the popularly elected house.

b) House representing the units of the union

c) A body elected differently from the lower house

d) A chamber where expert opinion is available through nomination

When it comes to the functions the two houses of Indian Parliament were constituted with sharp differences . The council of ministers is collectively responsible to Lok Sabha and not to Rajya Sabha . Any bill can become law only after passing through both the houses but money bill can only be introduced in Lok Sabha . Rajya Sabha can put forward it's recommendations but cannot amend it. The national budget , finance bill and demand for grants of various ministries can be discussed but not voted in Rajya Sabha . However a constitution amendment bill needs approval of both the houses.

Rajya Sabha has two exclusive powers. It can with the support of two third of it's members delist a subject under the exclusive state list and declare it to be of national importance , empowering parliament to legislate on it[5] and it can create one or more new all India services.[6]

The rationale behind a bicameral system was to safeguard against the possible misuse of the lower house by parties with an absolute majority. Both the houses have been complementing each other from a long time , but during the last two decades the relation between the two houses is exposing new dimensions. With political battle lines drawn between major political parties , the upper house has become hindrance to the speedy legislative process that the country urgently requires. It is true that dissent is an essential part of any democracy , however when opposition brings parliament in a deadlock situation using the upper house , it basically disobeys the will of the electorate and give rise to the question that

"the time has come to either abolish the upper house of parliament or bring total reformation in its election procedure and functions"

With the elections for the president and vice president and the government's shocking defeat on the amendments to the bill for National Commission for Backward Classes the Rajya Sabha has made more than it's share in headlines. Again recently when the GST Bill failed to make it's way through the Rajya Sabha , the Finance minister Arun Jaitley reacted on the role of Rajya Sabha stating it is the time to evaluate if an "indirectly elected " upper house can halt reforms approved by directly elected lower house. Reason behind this statement made by the finance minister can be easily understood , when with an absolute majority in Lok Sabha BJP faces uncomfortable questions in the Rajya Sabha where it is in a minority.

Here I would like to quote B.J. Panda who says that one good reason of having bicameral legislation is the significance of Checks and Balances in a democracy. But Indian

Parliament is caught in a logjam of far too many checks and not enough balances.[7]

Also we should not forget the statement of prof. Shibban Lal Saxena against a bicameral legislature ,"in this motion we have been asked to vote for two houses , the lower house and the upper house. I wish to point out that our experience has been that the upper house acts as a clog in the wheel of progress. I think that everywhere in the world the experience about upper house has been the same. It has always acted as a sort of hindrance to quick progress."

Shri Vankaiah Naidu , chair person of Rajya Sabha himself recalled the statement made by Shri Shibbon Lal Saxena when in 245th session of Rajya Sabha he urged Rajya Sabha members not to become the clog in the wheel of progress of the country , he also stated that "are we making Nehru's worst fear come true" reminding that in 1936 when Pt. Jawaher Lal Nehru who headed the Union Constitution Committee for reporting on the structure and function of future legislature of the country had feared that a second chamber will check any forward tendencies of the lower house and would be reactionary.[8]

It shows that voices against Rajya Sabha are not new , what is new is the different character shown by Rajya Sabha. To understand it more clearly we need to go through the following table[9]

	LOK SABHA					RAJYA SABHA				
Sessions	Available hours	Productive Hours	Time Lost	Productive time as % of available time	Time lost as % of available time	Available hours	Productive Hours	Time Lost	Productive time as % of available time	Time lost as % of available time
Budget 2009	156	162.05	-6.05	104%	-4%	130	147.45	-17.45	113%	-13%
Winter 2009	126	105.50	20.50	84%	16%	115	101.75	13.25	88%	12%
Budget 2010	192	137.93	54.07	72%	28%	160	129.88	30.12	81%	19%
Monsoon 2010	156	136.08	19.92	87%	13%	130	120.58	9.42	93%	7%
Winter 2010	138	7.62	130.38	6%	94%	115	2.78	112.22	2%	98%
Budget 2011	138	116.63	21.37	85%	15%	115	80.39	34.61	70%	30%
Monsoon 2011	156	104.20	51.80	67%	33%	130	81.40	48.60	63%	37%
Winter 2011	144	85.00	59.00	59%	41%	120	74.40	45.60	62%	38%
Budget 2012	210	187.15	22.85	89%	11%	175	164.33	10.67	94%	6%
Monsoon 2012	114	24.42	89.58	21%	79%	95	26.60	68.40	28%	72%
Winter 2012	120	63.85	56.15	53%	47%	100	58.03	41.97	58%	42%
Budget 2013	192	94.90	97.10	49%	51%	160	83.43	76.57	52%	48%
Monsoon 2013	126	73.13	52.87	58%	42%	125	99.55	25.45	80%	20%
Winter 2013	60	4.48	55.52	7%	93%	50	11.40	38.60	23%	77%
Winter 2013-2014	72	15.09	56.91	21%	79%	60	16.53	43.47	28%	72%
Budget 2014	162	167.23	-5.23	103%	-3%	135	142.38	-7.38	105%	-5%
Winter 2014	132	129.70	2.30	98%	2%	130	76.57	53.43	59%	41%
Budget 2015	201	246.02	-45.02	122%	-22%	179.5	181.18	-1.68	101%	-1%
Monsoon 2015	102.00	47.05	54.95	46%	54%	100.5	9.03	91.47	9%	91%
Winter 2015	114.00	115.82	-1.82	102%	-2%	112.0	57.0	55.0	50%	50%
Budget 2016	38.90	42.98	-4.08	108%	-8%	35.98	31.53	6.5	90%	10%
Data updated as of 3rd March										

The table clearly highlights the two basic facts . First , the time lost in disruptions is continuously increasing in both the houses and second more surprising is that time lost in Rajya Sabha is at times more than Lok Sabha , showing that both the houses of Indian Parliament are adapting similar legislative behavior with time despite the fact that both are constituted in entirely different manner.

Now the question is that what is actually causing this change in legislative behavior of Rajya Sabha , which was not supposed to be party political. Party politics has come in the way of federal assertions in Rajya Sabha. Further the dichotometics and antinomics in the interest of regional parties of various states as well as between the interest of individual states and the larger interest of India is proven irreconcilable.

Removal of domicile criteria , introduction of open ballot10has actually linked Rajya

Sabha with uncertainty in Indian political system . These elections are fought like battles now where all sort of allegations and counter allegations regarding various types of corruption are imposed and finally the MPs selected for Rajya Sabha are putting forward the political agenda of their party keeping state interest aside.

This all is not in accordance with the will of the founding fathers of our constitution also it is creating imbalance in our own political system and that is why a question is being frequently asked …..Is the Rajya Sabha necessary today. Two major arguments are given against Rajya Sabha . The first one suggests that since Lok Sabha is already representing federal units sufficiently hence we do not need a federal chamber separately . The recent reversal on the land acquisition ordinance is an example of this federal character of the Lok Sabha in practice. second argument charges that Rajya Sabha has become heaven for losers in elections or crony capitalists.

Practically talking it is virtually impossible to abolish the Rajya Sabha without adopting a new Indian constitution as bicameralism is interpreted as a part of "basic structure" of the Indian constitution therefore more practical solution is to reform Rajya Sabha.

One useful reform step would be to have members of the Rajya Sabha be directly elected by the citizens of a state. We can get similar example from United States of America. Initially US Senate was also a body that was indirectly elected from state legislature (same as Rajya Sabha) , but in 1913 the constitution was amended to make senators directly elected by the public of each state. This made senators more inclined towards public interest. In the same manner to reduce cronyism and patronage appointment we can have direct elections for Rajya Sabha. This will make them more accountable for their respective states. When prof K.T. Shah bought this idea in front of constituent assembly , Rohini Kumar Chaudhary countered it with the argument " that if there are direct elections then people with special knowledge might not be elected"[11] . to some extent this problem can be resolved by prescribing minimum qualification for the members of Rajya Sabha. Herman Finer says "a member needs sensitiveness to life , difficulties , aspirations and future emerging pastures of the world outside the legislature. He needs not perfect knowledge but knowledge to challenge and criticize the executive and the officials"[12] . The idea of direct elections can be combined with the process of functional representation Lakshminaryan Sahu was in favour to that[13] . He said it can succeed in India if tried along with the panel system.

It was also supported by N. Goplaswamy Ayangar who moved an amendment proposing that 25 members in the second chamber should be selected through functional committees or panels as in Irish constitution. He also suggested 5 functional panels based on different streams of life.[14] K.T. Shah also suggested for a 75 member committee comprising people from different walks of life to suggest upper chamber on legislative measures. He was supported by R.K. Sidhwa.[15] Constitutional lawyer M.L. Singhvi feels that "a greater emphasis on the functional principle would make the Rajya Sabha a more effective second chamber in the pluralistic perspective of state"[16] . During the process of making of the constitution this idea was rejected but no after 70 years we need to rethink on it to get an element of sociological representation in the upper house.

To have equal representation for each state (same as Canada , USA , Australia and many

other federations_) can be another important reform so that large states do not dominate the proceedings in the house. In the constituent assembly debates Loknath Mishra had moved for adopting the truly federal principle of equal representation to the states . He suggested for 3 members from each state. K.T. Shah also favoured the principle but wanted five units for each states[17] .Although keeping in mind the wide disparity in population , area , culture equal distribution of seats is not possible like USA. But we can workout the plan of dividing states into two or three categories and allocation of seats can be done on the basis of these categories. Off course each category should get minimum number of seats so that none of the unit is left from representation.

As far as the reforms in terms of functions are concerned we should not forget what Ayyangar said in the constituent assembly " the most that we except the second chamber to do is perhaps to hold dignified debates on important issuse and delay legislation which may be the outcome of passions of the moment until the passions have subsided….and we shell take care to provide in the constitution that whenever on any important matter , especially matters related to finance , there is a conflict between the house of people and the council of states , it is the view of the house of people that shall prevail"[18] . This clearly explains what Rajya sabha is supposed to do. In this contexts B.J. Panda suggests to reduce the power of Rajya sabha in such a way such that it would still have the ability to slow down the passage of bills but can't indefinitely block the legislation.

India has much to learn from the parliaments of Europe and Australia where if the bill is rejected twice in the upper house the joint sitting is held where bill is passed by absolute majority. Moreover the upper house in Europe as well as in Canada rarely threaten the primacy of the main legislatures and often serve to give voice to people.

Here we should also recall the structural reforms suggested in a report " disruptions in the Indian Parliament " by Vidhi Centre for Legal policy. It says

* The MPs who are elected by members of state legislatures , there ought to be limitation that at least one half of them must be persons of eminence , not belonging to any political party
* The Rajya Sabha must be restored to its original function of espousing state interests at the federal level.
* New MPs should be equipped with proper guidance on the exact methods of intervention that are permissible in parliament that do not involve interruptions
* It also suggests for the reduction of salary for suspended members and says that live telecast must be discontinued when disruptions becomes excessive.

To conclude it is advisable to take a new approach for restructuring Rajya Sabha on the basis of more non political patterns , representing popular support as well as functional representation and limited nomination. This will help in making the functioning of Rajya Sabha more effective. Also if Rajya Sabha continues to perform with its ethics intact there is no real threat to its existence in the near or distant future.

REFRENCES AND REPORTS

1. Rajya sabha debates (RSD) 23 Aug 1954 C 36-7
2. CAD vol iv pg 876
3. CAD vol VII pg. 1209

4. CAD vol IV pg 876
5. Article 249
6. Article 312
7. B.J.Panda Article “check and Balance” Nov 26 2015 The Times of India
8. Indian Express Apr. 6 2018
9. The PRS blog
10. constitution. amendment 2003
11. CAD Vol VII pp 1195 – 1213
12. Finer Herman “Theory and Practice of Modern Government “ pg 386
13. CAD Vol IV pp 1203-4
14. Second Chamber of India Parliament , N. K. Trikha
15. CAD Vol VII pp 1195-1213
16. S.S. Bhalerao (ed) “The Second Chamber” p 265
17. CAD Vo VII pg 1195 – 1213
18 "Time to rethink the role of rajya sabha" : Livemint : 27/04/2018